क़ब्ज़ या कोष्ठबद्धता

लेखक

डाक्टर बालेश्वर प्रसाद सिंह
डाइरेक्टर 'प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह'
३०, नाई का बाग,
प्रयाग

प्रकाशक
लीडर प्रेस, इलाहाबाद ।

वक्तव्य

इन दिनों शायद ही कोई ऐसा हो जो क़ब्जियत के कारण दुख नहीं भोगता। चाहे बालक हो या युवा, विद्यार्थी हो या नौकरी पेशा, वकील हो या व्यापारी, सभी इसके चगुल मे फँसते हैं और अपनी तनदुरुस्ती को खोते हैं। जिसे देखो मुर्झाया चेहरा लिये हुए अपने कष्ट के बारे में सोचता है या पेट ठीक रखने के लिए चूर्ण, गोलियाँ और जुलाब की शरण लेता है। सचमुच कोष्ठबद्धता की समस्या मनुष्य मात्र के सामने प्रबल रूप धारण किए खड़ी है और उसका स्वास्थ्य खराब कर रही है। उससे लड़ने के लिए हम गलत उपायों को काम मे लाते हैं और पहले से भी अधिक दुख भोगते हैं। इस छोटी सी पुस्तिका में कोष्ठबद्धता के कारणों और उसके दूर करने के उपायों पर विचार किया जायगा।

कुछ समय पहले अथवा जब हमारी सभ्यता शहरों में नहीं बसी थी क़ब्जियत की शिकायत इस भयानक रूप में नहीं पाई जाती थी। पेट मे फोड़ा हो जाना (Cancer) जिसमे मनुष्य कष्ट से मरता है और जो सिर्फ क़ब्जियत से ही होता है, बेतरह बढ रहा है। भारतवर्ष क्या सारे ससार में यह रोग फैल रहा है। डाक्टर फ्रैंकलिन मार्टिन, जो अमेरिका के सरजस् कालेज के सभापति थे, कहते हैं कि सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे फी छ आदमियों में एक आदमी पेट के फोड़ो से मरता है। डाक्टर अरबथनॉट लेन का कहना है कि सभ्य संसार में आठ

आदमी के पीछे एक आदमी पेट के फोड़े की बीमारी से मरता है। इस बीमारी के होने का खास कारण कोष्ठबद्धता ही है। सिर्फ इसी बीमारी की नहीं वरन् सारी बीमारियों की जड़ पेट की खराबी ही है। डाक्टर अरवथनाट लेन का कहना है कि जाड़ा, बुखार इत्यादि अनेक प्रकार के भयंकर रोग इसी से उत्पन्न होते हैं। इतना ही नहीं, जो डाक्टर अपराधियों और उनसे किये गए अपराधों (criminals and crimes) से परिचित हैं, वे कहते हैं कि मनुष्य बहुत ज्यादा अपराध कोष्ठबद्धता की हालत में ही करता है। वास्तव में इससे परेशान आदमी की मानसिक-शक्ति (will power) कम हो जाती है और वह उचित अनुचित का ठीक विचार नहीं कर सकता। क्या ऐसी बीमारी को जो हमारी सभ्यता और जीवन के आनंद का शत्रु है बिना किसी रोक टोक के बढ़ने दिया जाय या इसको जड़ से उखाड़ कर फेंकने का प्रयत्न किया जाय? यदि हम किसी भी शत्रु या बीमारी से मुक़ाबला करना चाहते हैं तो उसके स्वभाव से अच्छी तरह परिचित होने की कोशिश करते हैं। कोष्ठबद्धता से भी युद्ध करने के लिए, उसका स्थान, कारण और किन उपायों से वह दूर की जा सकती है इत्यादि बातों का जानना बहुत ही आवश्यक है। इसीलिए इस छोटी सी पुस्तिका में पहले उदर (पेट) की रचना, पाचन क्रिया, भोजन का वर्गीकरण, कोष्ठबद्धता के विविध कारण इत्यादि बातें पाठकों को बताई जायँगी और इनके बाद कोष्ठबद्धता को दूर करने के उपाय कहे जावेंगे।

विषय-सूची

उदर की रचना

हमारे उदर (पेट) मे कई प्रकार की नलियाँ हैं । जब हम भोजन करते हैं तो खाया हुआ पदार्थ एक नली के द्वारा भीतर चला जाता है और जब वह पच जाता है और रासायनिक क्रियाओं से शरीर को जितना रस भोजन से मिलना चाहिये मिल जाता है तो उसका बचा हुआ बेकार भाग मलद्वार से शरीर के बाहर हो जाता है। यह नली जिसे अन्नमार्ग कह सकते हैं बहुत लम्बी होती है । यह मुँह के पास से लेकर मलद्वार तक ३० फीट के लगभग लम्बी है। मामूली तरह से यह नली सात भागों में बाँटी जा सकती है (१) मुँह (Mouth) (२) अन्नप्रणाली (Oesophagus), (३) आमाशय (Stomach), (४) छोटी आँत या क्षुद्रांत्र (Small intestines) (५) बड़ी आँत या बृहदंत्र (Colon or large intestines) (६) बड़ी आँत का अन्तिम भाग या मलाशय (Rectum) (७) और मलद्वार (Anal canal)।

भोजन पहिले पहल मुँह से ही लिया जाता है। यहाँ लार (Saliva) से मिलकर इसमें रासायनिक तब्दीलियाँ होती हैं। भोजन को पूरा पूरा पचने के लिए उसे पूर्ण रूप से थूक या लार से मिलना चाहिये। मुँह के पिछले भाग से मिली हुई अन्नप्रणाली है। इसकी लम्बाई १० इंच के लगभग है। यह गले और छाती में होती हुई उदर में पहुँचती है और आमाशय में जा मिलती है।

आमाशय आकार म थैली जैसा और बीच में कुछ ज्यादा चौडा होता है। इस थैली में भोजन कुछ देर तक ठहरता है। आँतें इसी आमाशय मे मिली होती हैं। यह उदर के शेष भाग मे गेंडली मारे पडी रहती हैं। आँतों की लम्बाई २७-२७ फीट के लगभग है। इनके ऊपर का भाग पतला और नीचे का भाग चौडा होता है। पहले भाग की लम्बाई २२ या २३ फीट के क़रीब है और चौडे भाग की लम्बाई ५ फीट के लगभग होती है। पतला भाग छोटी आँत (क्षुद्रान्त्र) कहलाती है और चौड़ा भाग बडी आँत (बृहदन्त्र)।

बडी आँतों के सात हिस्से हैं (१) अन्त्र पुट (Cecum), (२) उद्गामी बृहदन्त्र (Ascending colon), (३) अनुप्रस्थ बृहदन्त्र (Transverse colon), (४) अधोगामी बृहदन्त्र (Descending colon), (५) श्रोणिगा बृहदन्त्र (Sigmoid), (६) मलाशय (Rectum) और (७) मलद्वार (Anal canal)। अन्त्रपुट के पास यह बडी आँत ज्यादा चौडी है। धीरे धीरे इसकी चौड़ाई कम होती जाती है। मलाशय के पास इसकी चौड़ाई बहुत कम हो जाती है। बड़ी आँत छोटी आँत को घेरे हुए है। अन्त्रपुट से बडी आँत शुरू होती है। यह शेष आँतों से ज्यादा चौड़ी और दाहिने जघे की हडडी के गढे में पडी है। इसी से मिली हुई एक छोटी सी नली है, जिसे उपान्त्र (Appendix) कहते हैं। उद्गामी बृहदन्त्र अन्त्रपुट से शुरू होता है और उदर की दाहिनी ओर होकर ऊपर जाता है। यह यकृत (Liver) के नीचे होकर एक-व-एक बाई ओर घूम कर प्लीहा

(Spleen) के पास पहुँच जाता है। यह अनुप्रस्थ बृहदंत्र कहलाता है। इसके बाद ही वह नीचे की ओर चल पडता है और बाई जाघ की हड्डी के पास पहुँच जाता है। इस भाग को अधोगामी बृहदंत्र कहते हैं। इसके बाद श्रोणिगा बृहदन्त्र शुरू होता है। यह बाई जाघ की हड्डो के पास स्थित है। इसमे दो गाठें बन गई हैं। इससे मिला हुआ मलाशय (Rectum) है। मलाशय और मलद्वार (Anal canal) के पास आते आते बृहदन्त्र की चौडाई बहुत कम हो जाती है। मलद्वार दो गोल मास पेशियों से घिरा है। इन्हा मासपेशियों के ढीला होने और सिकुड़ने से मल शरीर के बाहर निकलता या निलकलने से रुकता है।

बडी आँत का काम

बडी आँत का खास काम छोटी आँतों से खाद्य पदार्थ को लेकर शरीर के बाहर निकालना है। भोजन बड़ी आँत मे आने के पहिले ही प्राय पच जाता है और जितना रस भोजन से शरीर को मिलना चाहिये मिल जाता है। जो पदार्थ बड़ी आँत में आते हैं वे ये हैं —विशेषत बिना पचा हुआ भोजन, पचे भोजन का बेकार भाग, यकृतीय पदार्थ और कीटाणु जो छोटी आँत के पिछले हिस्से में उत्पन्न होता है। जलमय पदार्थ बडी आँत में सूख जाता है और बाकी पदार्थ अन्त्र से होकर शरीर के बाहर निकल जाता है। इन पदार्थो को शरीर से बाहर निकालने के लिए आँतो में अनेक प्रकार की चालें होती हैं। उनमें

से एक चाल मासतन्तुओं का ढीला होना और खिंचना है। इसको अगरेजी में (Peristaltic action) कहते हैं। मासतन्तुओं का ढीला होना और तनना आँतों के नीचे की ओर बहुत तेजी से होता है। मासतन्तुओं के खिंचने से भोजन बहुत दब जाता है और ढाले हिस्से में आ जाता है। इसके बाद ही ढीला हुआ भाग तनता है, जिसके कारण भोजन और भी आगे बढ़ जाता है। इस तरह भोजन धीरे धीरे आँतों की एक ओर से दूसरी ओर तक जाता है। भोजन का जलमय पदार्थ यद्यपि अधिकतर छोटी आँत मे ही खत्म हो जाता है तो भी उसका छठा अश बड़ी आँत और अन्नपुट में सूखने के लिए रह जाता है। इन भागों में सुखाने वाली गिल्टिया बहुत प्रमाण में पाई जाती हैं। परन्तु सुखाने के काम को आसान करने के लिए भोजन का हर एक भाग इन गिल्टियों के पास आता है। इस काम को पूरा करने के लिए मासतन्तुओं का ढीला होना और तनना आँतों की ओर न होकर ठीक उलटा ही होता है। इसका अगरेजी में (Anti peristalsis) कहते हैं। इस तरह दो प्रकार की क्रियायें जो एक दूसरे के विरुद्ध हैं, भोजन को आँतो में आगे और पीछे फेंकती हैं, जिससे भोजन का आवश्यक सूखना पूरा होता है।

अब आँतों में एक तीसरी क्रिया होती है जिससे भोजन का प्रत्येक भाग विलोया जाता है और आँतों की दीवारों के पास सूखने के लिए लाया जाता है। इस क्रिया को पेन्डुलम चाल (Pendulum activity) कहते हैं। इन क्रियाओं से भोजन
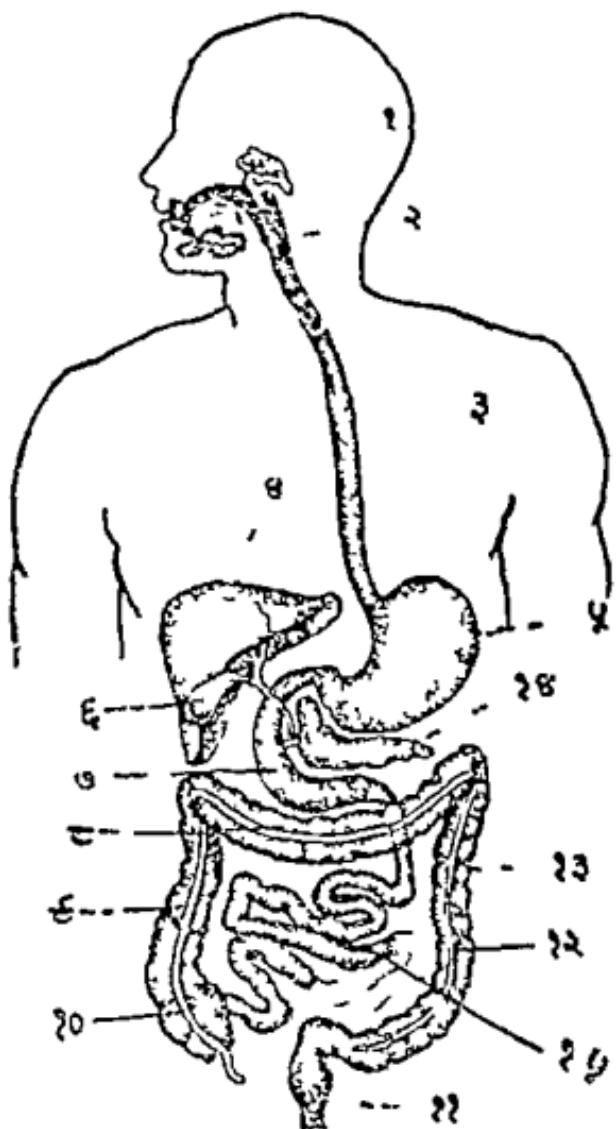
(१) मुख (Mouth),
(२) श्वास प्रणाली,
(३) अन्न प्रणाली,
(४) यकृत (Liver),
(५) आमाशय (Stomach),
(६) पित्ता (Gall bladder),
(७) छोटी आँतें (Small intestines),
(८) अनुप्रस्थ बृहदन्त्र (Transverse colon),
(९) ऊर्ध्वगामी बृहदन्त्र (Ascending colon),
(१०) अन्धपुट (Cecum)
(११ मलद्वार (Anal canal),
(१) श्रोणिगत बृहदन्त्र (Sigmoid)
(१३) अधोगामी बृहदन्त्र (Descending colon),
(१४) लुबलुबा (Pancreas),
(१५) छोटी आँतें ।

टुकडे टुकडे होकर फिर भी एक साथ हो जाता है। इस तरह नये नये पदार्थ हर समय सुखाने वाली गिल्टियों के सामने लाये जाते हैं।

तनदुरुस्ती की हालत में ये तीन प्रकार की क्रियायें एक साथ ही होती हैं जिससे अन्नपुट और उद्गामी वृहदन्त्र का काम अच्छा तरह जारी रहता है। खराब अवस्था म ये क्रियायें अच्छी नहीं होन पाती, जिससे अन्न आँत म जमा होता और सड़ता है। इसके सडने में भयङ्कर विप उत्पन्न होता है और धीरे धीरे शरीर में ही यह सूख या खिंच जाता है, जिससे अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। जब भोजन अनुप्रस्थ वृहदन्त्र में पहुँच जाता है तो उसका गाढापन ज्यादा बढ जाता है, जिससे सिर्फ एक ही क्रिया, तन्तुओं के ढीला होने और खिंचने से भोजन आँतों में आगे बढ़ता जाता है। धीरे से यह शेप आँतों से मल को लेकर श्रोणिगा वृहदन्त्र और मलाशय में जमा कर देता है। यह बेकार पदार्थ अन्नपुट से श्रोणिगा वृहदन्त्र (Pelvic loop) तक लगभग छ घन्टे म पहुँचता है। यहाँ आकर लगभग छ घन्टे से आठ घन्टे तक ठहरता है।

जब श्रोणिगा वृहदन्त्र खाली रहता है तो वह सिमिट कर मलाशय के अग्रभाग पर पड़ा रहता है। यह धीरे धीरे भरता है और उदर में टेढा-मेढ़ा खड़ा हो जाता है। जब यह काफी भर जाता है और इससे मल को बाहर निकलने की जरूरत पड़ती है तब अधोगामी वृहदन्त्र म मासतन्तुओं का ढीला होना और खिंचना बहुत वेग से होता है जिससे मल नीचे को आ जाता

है। श्रोणिगा वृहदन्त्र भी तनता है, जिससे मल का कुछ भाग मलशय में जाता है। यहाँ आकर यह ज्ञानतन्तुओं को उभाड़ता है जिससे मलद्वार के मासतन्तु ढीले पड़ जाते हैं, मलद्वार खुल जाता है, और मल मलाशय के बाहर हो जाता है।

आँतों से बाहर निकलने में उदर के मासतन्तुओं के तनने या संकुचित होने से बड़ी मदद मिलती है। हृदयपटल (diaphragm) एक मेहराबदार मासतन्तु है जो सीने और पेट के बीच में स्थित है। यह आँतों को ऊपर से दबाती है। पेट (उदर) के अन्य मासतन्तु भी इस दबाव में भाग लेते हैं। इस बाहरी दबाव से आतों की चाल में बहुत मदद मिलती है और इनके अच्छे कार्य के लिए यह बहुत ही आवश्यक है।

आतों की ठीक क्रिया न होने से मल के बाहर निकलने में कठिनाई होती है। इसी कठिनाई की अवस्था को क़ब्ज़ या कोष्ठबद्धता कहते हैं। आगे चलकर कुछ कसरतें बताई गई हैं, जिनसे ये क्रियायें ठीक हो जाती हैं। इन कसरतों का इन क्रियाओं से घनिष्ट सम्बन्ध है, इसलिए उदर की रचना और क्रियाओं को अच्छी तरह समझना चाहिये।

भोजन

भोजन म नीचे लिखे पदार्थ होते हैं —

(१)—पुत्तनक, (२) तैलयुक्त पदार्थ, (३) कर्बोज, (४) नमक और (५) जल। इन सब चीजों के अतिरिक्त भोजन के आवश्यकीय पदार्थ विटामिन्स भी हैं।

रासायनिक क्रिया से पता चला है कि अमुक भोजन मे कौन कितना पदार्थ है। जुदा जुदा भोजन पदार्थों म बहुत भेद है। किसी मे प्रोटीन बहुत ज्यादा है तो तैल बहुत कम और किसी में यदि तैल बहुत ज्यादा है तो कर्बोज बिलकुल ही कम है। दूध ही एक ऐसा पदार्थ है जो भोजन की सब जरूरियात को पूरा करता है, यद्यपि इसमें भी लोहे का नमक नहीं है। यही कारण है कि मनुष्य केवल दूध पीकर ही रह सकता है।

पुत्तनक—यह अनेक प्रकार का होता है। पुत्तनक से ही नाइट्रोजन मिलता है, जो शरीर के लिए बहुत ही आवश्यक है इससे लाखों नये सेल्स (Cells) बनते हैं। इस लिए प्रोटीन शरीर बनाने का मुख्य पदार्थ है। यह हरएक जीवित पदार्थ म पाया जाता है और हर एक पौधे और पशु में मौजूद है।

विशेष पुत्तनक वाले भोजन ये हैं—दही, छाछ, मक्खन, मास, मछली, पत्ते वाली भाजी, आटा जिससे चोकर नहीं अलग किया गया हो, दाल, हर एक प्रकार का फल आदि।

तैल पदार्थ—जिससे हम अपने शरीर के लिए गर्मी पाते हैं या जिससे काम करने की शक्ति मिलती है उनमें तैल पदार्थ एक मुख्य चीज़ है। ज्यादा तेल वाले पदार्थ ये हैं —मक्खन, घी, चर्बी, हर प्रकार का तैल आदि।

कर्बोज—यह भोजन का मुख्य भाग है। इसमें सभी प्रकार के श्वेतसार (Starch) और शक्कर मिली है। यह इन्धन का काम करता है। यदि हम पाँचों प्रकार के पदार्थ प्रोटीन, तैल पदार्थ, कर्बोज, खनिज लवण और विटामिन्स उचित परिमाण में खायें तो पाचन क्रिया बड़ी ही उत्तम होती है। पर यदि कर्बोज ज्यादा परिमाण में हो तो आँत में वायु उत्पन्न होती है और मल भी ज्यादा होता है। मल का ज्यादा होना खराब है।

कर्बोज में सेलुलोज़ (Cellulose) होता है। यह हर प्रकार की भाजी में मिला होता है। इसको भाजी का रेशा कह सकते हैं। इस पर आन्तरिक रसों का कुछ भी असर नहीं होता और यह ठीक उसी हालत मे शरीर के बाहर हो जाता है। भोजन में ऐसे पदार्थों का होना बहुत आवश्यक है। इसलिए जिसको कोष्ठबद्धता की बीमारी है उसको पत्तेदार भाजी अधिक खाना चाहिये। विशेषत: कच्ची भाजी सैलेड इत्यादि के रूप में उनके लिए बड़ी ही लाभदायक होती है। कुछ फल भी ऐसे हैं, जिनका असर आतों पर बडा ही अच्छा होता है, जैसे अजीर, मुनक्का। इसके खाने से पेट साफ़ होता है। ऐसे अनेक फल हैं जिनका असर आतो पर हलके जुलाब का सा होता है। हर मनुष्य को अपने लिए ऐसे फलों को चुन निकालना चाहिये।

नमक—हमारे शरीर में २० प्रकार के लवण हैं। कोई क्षार उत्पन्न करता है और कोई अम्ल। इन दो प्रकार के नमकों का अपन परिमाण में होना बहुत ही आवश्यक है। रक्त में अम्ल और क्षार के घट बढ होने से ही हम बीमार होते हैं। यदि रक्त की *प्रतिक्रिया थोडी भी अम्ल होती है तो हम तुरन्त ही* बीमार हो जाते हैं और थोड़ी और अधिक अम्ल प्रतिक्रिया होने से मनुष्य मर जाता है।

हरे शाक, कन्दमूल और फल में क्षार उत्पन्न करने वाले पदार्थ होते हे और अम्ल उत्पन्न करने वाले पदार्थ बहुत ही कम होते हैं। मास, हर प्रकार की दाल, बादाम, मूंगफली इत्यादि में अम्ल उत्पन्न करने वाले पदार्थ बहुत होते हैं और क्षार उत्पन्न करने वाल कम। इसलिए इन दोनों प्रकार के पदार्थों को मिलाकर खाना आवश्यक है।

विटामिन्स—भोजन में विटामिन्स का कौन सा भाग है यह पता लगाना बहुत ही कठिन है, पर यह बात जरूरी है कि यदि भोजन में विटामिन्स न रहें तो शरीर का बढ़ना, पुष्ट होना और सुरक्षित रहना असम्भव है। ये खाद्य पदार्थ को बहुत ज्यादह गरम करने या चक्की में पीसनेमें नष्ट हो जाते हैं। इसलिए बहुत ज्यादा उबाले हुए दूध, घी, महीन आँटा या छांटे हुए चावला के विटामिन्स नष्ट हो जाते हैं। विटामिन्स पाँच प्रकार के होते हैं, जो यों हैं —

विटामिन नम्बर १—यह तैल पदार्थ में मिला होता है और

चर्बी, दूध, मक्खन, मछली का तेल, हरी भाजी और मछली में पाया जाता है। यदि यह भोजन मे न मिला हुआ हो तो शरीर का बढना रुक जाता है।

विटामिन नम्बर २—यह जल मे मिला होता है। यह ताजा फल, हरी भाजी और अकुरित बीज मे पाया जाता है। इसके भोजन में नहीं रहने से एक बीमारी होती है जिससे दाँत के मसूढे फूल जाते हैं और उनसे खून निकलता है, पॉव सूज जाते हैं और उनमे दर्द होता है। मनुष्य या जानवर कभी कभी इससे मर भी जाते हैं। इस रोग मे नीबू या सतरा का रस रोगी को बहुत लाभ पहुँचाता है।

विटामिन नम्बर ३—यह भी पानी के साथ मिला होता है।

विटामिन नम्बर ४—यह तैल पदार्थों से मिला होता है। यह चर्बी या कुछ फलों में खास कर फल के ऊपरी भाग के पीलापन मे होता है। यह सूर्य की किरण में भी होता है।

विटामिन नम्बर ५—यदि यह भोजन में न हो तो जनन क्रिया नहीं हो सकती।

अन्न, फल और भाजी में सभी प्रकार के विटामिन्स होते हैं। मनुष्य के भोजन के लिए बहुत ही आवश्यक और उपयोगी हैं। रासायनिक बनावट मे एक भाग दूसरे भाग से जुटा है। पचने में एक भाग दूसरे भाग को सहायता देता है। गेहूँ के बाहरी हिस्से, चोकर में, जिसे हम फेंक देते हैं, नमक, विटामिन्स और रेशे बहुत मात्रा में होते हैं। ये सब भोजन के आवश्यक पदार्थ

हैं। यदि चोकर आटा से न हटाया जाय तो कोष्ठबद्धता न होने पाये।

मासाहार—डाक्टर इ०एच० टीपर साहब का, जिन्होंने अपने जीवन का ज्यादा भाग अफ्रीका के एक जाति विशेष के मनुष्यों के साथ बिताया है, कहना है कि इस जाति में पेट के फोड़े जो मुख्यत कोष्ठबद्धता से ही होते हैं नहीं होते। यह जाति मुख्यत शाकाहारी है। यह मछली या मास कभी कभी खा लेती है, लेकिन मास की मात्रा तो नहीं के ही बराबर है। डाक्टर टीपर का कहना है कि मनुष्य लाचारी से मास खाने लगा है। इसके समर्थन में वे कहते हैं कि हिन्टरलैन्ड के मध्य में जहाँ जमीन उपजाऊ नहीं है वहा के रहने वाले मासाहारी और बिलकुल जगली हैं। वहा पेट के फोडे की बीमारी बहुत है। यही जाति जो उपजाऊ जमीन में रहती है शाकाहारी है और इसमें पेट के फोड़े नहीं होते परन्तु इसी जाति में जो समुद्र के किनारे रहती और सभ्यता में आगे बढ़ी है, जहा मास आदि बर्फ से सुरक्षित करके खाने के लिए रक्खा जाता है, वहा पेट के फोड़े बहुत होते हैं। डाक्टर टीपर का कहना है कि मास और उससे सबध रखने वाले पेट के फोड़े का हिसाब साथ ही साथ है। इस लिए कोष्ठबद्धता की हालत में मासाहार उचित नहीं है।

नोट —भोजन पर विस्तृत ज्ञान के लिए मेरी पुस्तक देखिये जो 'स्वास्थ्य ग्रथमाला' के अन्तर्गत 'जीवनसखा' कार्यालय २०, बाई का बाग, इलाहाबाद से प्राप्य है।

पेट की सफाई और एनिमा का प्रयोग

भोजन-प्रणाली और आंत—

मेरा शरीर कई हिस्सों में बँटा है। इसका मुख्य अग भोजन-प्रणाली (alimentary canal) है। यह प्रणाली एक खोखली नाली की तरह है, जिसका विस्तार मुह से लेकर गुदा-द्वार तक है। इसकी लम्बाई लगभग २७ फीट है। पाठकों की सुविधा के लिए मैं इस प्रणाली को तीन हिस्सों में विभाजित करता हूँ। पहला हिस्सा मुँह से लेकर पेट की थैली तक, दूसरा हिस्सा छोटी आँत (पेट के बाद से बडी आँत तक) और तीसरा हिस्सा बडी आँत है। बड़ी आँत दाहिनी तरफ कमर की हड्डी के पास से शुरू होती है और ऊपर की ओर जाकर यकृत (liver जिगर) से प्लिहा (spleen तिल्ली) की ओर जाती है। वहाँ से नीचे की ओर जाकर वह कमर की बाईं हड्डी के पास से मल-द्वार तक पहुँचती है। इसकी लम्बाई लगभग साढे पाँच फ़ीट है।

भोजन का पचना और पाखाना होना—

भोजन पहले पहल मुँह से पेट में आता है। पेट में पाचन-क्रिया शुरू हो जाती है। पेट से भोजन छोटी आँतों में आता है। भोजन का पूरा पाचन छोटी आँत मे ही होता है। छोटी आँतें ही पचे खाद्य पदार्थ से रस खींच लेती हैं और यह रस रक्त-

हैं। यदि चोकर आटा से न हटाया जाय तो कोष्ठबद्धता न होने पाये।

मांसाहार—डाक्टर इ०एच० टीपर साहब का, जिन्होंने अपने जीवन का ज्यादा भाग अफ्रीका के एक जाति विशेष के मनुष्यों के साथ बिताया है, कहना है कि इस जाति में पेट के फोड़े जो मुख्यतः कोष्ठबद्धता से ही होते हैं नहीं होते। यह जाति मुख्यतः शाकाहारी है। यह मछली या मांस कभी कभी खा लेती है, लेकिन मांस की मात्रा तो नहीं के ही बराबर है। डाक्टर टीपर का कहना है कि मनुष्य लाचारी से मांस खाने लगा है। इसके समर्थन में वे कहते हैं कि हिन्टरलैन्ड के मध्य में जहाँ जमीन उपजाऊ नहीं है वहां के रहने वाले मांसाहारी और बिलकुल जंगली हैं। वहां पेट के फोड़े की बीमारी बहुत है। यही जाति जो उपजाऊ जमीन में रहती है शाकाहारी है और इसमें पेट के फोड़े नहीं होते परन्तु इसी जाति में जो समुद्र के किनारे रहती और सभ्यता में आगे बढ़ी है, जहां मांस आदि बर्फ से सुरक्षित करके खाने के लिए रक्खा जाता है, वहां पेट के फोड़े बहुत होते हैं। डाक्टर टीपर का कहना है कि मांस और उससे सबंध रखने वाले पेट के फोड़े का हिसाब साथ ही साथ है। इस लिए कोष्ठबद्धता की हालत में मांसाहार उचित नहीं है।

नोट —भोजन पर विस्तृत ज्ञान के लिए मेरी पुस्तक देखिये जो 'स्वास्थ्य ग्रंथमाला' के अन्तर्गत 'जीवनसखा' कार्यालय ३०, बाई का बाग, इलाहाबाद से प्राप्य है।

पेट को सफाई और एनिमा का प्रयोग

भोजन-प्रणाली और आंत—

मेरा शरीर कई हिस्सों में बँटा है। इसका मुख्य अग भोजन-प्रणाली (alimentary canal) है। यह प्रणाली एक खोखली नाली की तरह है, जिसका विस्तार मुह से लेकर गुदा-द्वार तक है। इसकी लम्बाई लगभग ०७ फीट है। पाठकों की सुविधा के लए मैं इस प्रणाली को तीन हिस्सों में विभाजित करता हूँ। पहला हिस्सा मुँह से लेकर पेट की थैली तक, दूसरा हिस्सा छोटी आँत (पेट के बाद से बडी आँत तक) और तीसरा हिस्सा बडी आँत है। बड़ी आँत दाहिनी तरफ कमर की हड्डी के पास से शुरू होती है और ऊपर की ओर जाकर यकृत (liver जिगर) से प्लिहा (spleen तिल्ली) की ओर जाती है। वहाँ से नीचे की ओर जाकर वह कमर की बाई हड्डी के पास से मल-द्वार तक पहुँचती है। इसकी लम्बाई लगभग साढे पाँच फीट है।

भोजन का पचना और पाखाना होना—

भोजन पहले पहल मुँह से पेट में आता है। पेट में पाचन-क्रिया शुरू हो जाती है। पेट से भोजन छोटी आँतों में आता है। भोजन का पूरा पाचन छोटी आँत मे ही होता है। छोटी आँतें ही पचे खाद्य पदार्थ से रस खींच लेती हैं और यह रस रक्त-

सस्थान मे भेज दिया जाता है। भोजन का बचा-बचाया अंश जो प्राय सब रस के निकल जाने के बाद शरीर के किसी काम का नहीं है बड़ी आँत मे आ जाता है। अगर कुछ रस बच रहता है तो बड़ी आँत उसे सोख लेती है और तब उस बचे हुए अश को बाहर निकाल देती है।

यही अश मल (पाखाना) है। यह शरीर के किसी काम का नहीं है और इसका बाहर निकल जाना ही शरीर के लिए हित कर है।

कब्ज या कोष्ठबद्धता और रोग—

यह स्वाभाविक नियम है कि जो कुछ भी खाया जाता है अपने समय पर पच कर और शरीर को आवश्यक रस देकर मल-रूप में शरीर से बाहर हो जाता है। अनेक कारणों मे भोजन का बचा-बचाया यह बेकार भाग बड़ी आँत में नियमित समय से अधिक देर तक ठहरने लगता है। मल के बाहर निकलने मे इसी विलम्ब को कब्ज या कोष्ठबद्धता कहते हैं। अगर बड़ी आँत म यह बेकार पदार्थ ज्यादा देर ठहरा, तो वहाँ सड़ने लगता है और उसके सड़ने के कारण अनेक विषमय कीटाणु उसमें उत्पन्न होते हैं। यों यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी कि ससार में जितने भ रोग हैं वे प्राय इसी एक कारण—अपच तथा कोष्ठबद्धता— से उत्पन्न होते हैं। विलायत के मशहूर डाक्टर सर आरबथनॉट लन ने अपनी पुस्तक 'The Sewage System of the Body म करीब पचासों क़िस्म की बीमारियों का एक मात्र कारण कोष्ठ

बद्धता को ही बताया है। जब यह सच है कि अधिकतर बीमारियों का एक-मात्र कारण आँत के अन्दर का विकार ही है तो इन रोगों का सच्चा इलाज पेट, या यों कहिये, आँत को सफाई ही होगी। हमारी बड़ी आँत ठीक वैसी ही है जैसी कि शहर की नाली। यदि नाली की सफाई नित्य अच्छी तरह हो जाती है तो शहर मे बीमारी नहीं फैलती, पर इस नाली मे गदगी के बने रहने से शहर म अनेक प्रकार के रोग फैल जाते हैं। पाठक अब समझ गये होंगे कि बड़ी आँत को साफ रखने की कितनी आवश्यकता है।

सफाई के ढग —

आँत की सफाई मुख्य दो प्रकार से हो सकती है—(१) औषधियों के प्रयोग से और (२) गुदा-मार्ग-द्वारा पानी ऊपर चढ़ाने के अनेक ढगों से, जो आगे चल कर बताए जायँगे।

औषधियो का प्रयोग अर्थात् कड़ा या हलके जुलाब का प्रयोग ठीक नहीं है। औषधियों मे स्वत कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो पेट की सफाई कर सके। वह तो शरीर के लिए विजातीय पदार्थ हो जाती है। शरीर इस विजातीय पदार्थ को अपनी सारी शक्ति के द्वारा निकालने का यत्न करता है। इसी प्रयत्न में आँत से मल भी बाहर होता है। ये दवाइयाँ आँत में उत्तेजना और जलन पैदा करती हैं, इसी से इनका असर होता है। पर बार बार जलन और उत्तेजना होने से आँतें कमजोर पड जाती हैं और अपना नियमित कार्य नहीं कर सकतीं। जब वे अपना काम अच्छी तरह नहीं कर सकतीं तो पाठक स्वय ही समझ लें कि इसका फल क्या होगा?

जिस कारण को दूर करने के लिए दवा दी गई, वह घटने क बजाय बढ़ती ही गई। इसलिए दवाओं से पेट की सफ़ाई नहीं करनी चाहिये।

अब आँत से मल निकालने का सिर्फ़ एक ही उपाय रह गया। वह है गुदा मार्ग द्वारा पानी चढ़ाना, अर्थात् शरीर-रूपी शहर की नाली को धो देना। यह अनेक प्रकार से होता है, और इसके यत्र भी अनेक हैं। (१) योग शास्त्र की षट् क्रियाओं में मुख्य वस्ति क्रिया है। यह जन साधारण के लिए कठिन है और चिकित्सा के रूप में नहीं लाई जा सकती। कारण कि इसके लिए खास अभ्यास की ज़रूरत है, जिसमें कम से कम छः महीने लगते हैं। (२) दूसरी व्यवस्था यत्र द्वारा आँत में पानी चढ़ाने की है। पुरानी वस्ति क्रिया का यही नवीन रूप है। आज कल इसे एनिमा लेना कहते हैं।

एनिमा का गुण और यत्र—

एनिमा यत्र अनेक प्रकार के हैं और इनसे आँत में पानी चढ़ाया जा सकता है। इस तरह पानी चढ़ा कर आँत को धोना आँत की सफ़ाई का सर्वोत्तम उपाय है। इससे दो तीन लाभ होते हैं। (अ) बिना किसी प्रकार की उत्तेजना और जलन के आँत की सफ़ाई हो जाती है। (ब) जल के प्रयोग से आँत की स्नायु-शक्ति बढ़ती है, जिससे उसकी काम करने की शक्ति भी बढ़ती है। यह प्राकृतिक चिकित्सकों को अच्छी तरह मालूम है कि जल के प्रयोग से शक्ति बढ़ती है और वे इसी

कारण अपनी चिकित्सा-प्रणाली मे जल के प्रयोग को महत्व-पूर्ण स्थान देते हैं।

एनिमा के यन्त्र सवा रुपये से लेकर दो हजार रुपये तक के मिलते हैं, पर मेरा तो विचार है कि सर्वसाधारण के लिए सवा या डेढ दो रुपये वाला यन्त्र, जो दीवार से कील के सहारे लटका दिया जाता है, जिसमें रबड की एक नली लगी रहती है और जिसके अग्र भाग को गुदा मार्ग में रखकर पानी ऊपर चढाया जाता है, अत्यन्त सरल और लाभदायक है। एक दूसरा यन्त्र ऐसा भी होता है, जिसमें वर्त्तन नहीं होता। वह रबर की एक नली भर रहती है, जिसके बीच में एक पोली (खोखली) गेंद सी रहती है। इस नली के एक सिरे को गुदा मार्ग मे रखते हैं और दूसरे सिरे को लोटे में। गेंद को बार बार दबाने से पानी ऊपर चढता है। इसके दाम भी दो-ढाई रुपये हैं। पहला यन्त्र ज्यादा अच्छा है।

एक ही यन्त्र सभी लोगों के काम का हो सकता है। उसी यन्त्र से छ: महीने के बच्चे से लेकर १०० साल के वयोवृद्ध मनुष्य तक को एनिमा दिया जा सकता है।

पानी का अन्दाज—

पानी का परिमाण अलबत्ता अलग अलग होगा। छ: महीने के बच्चे के पेट में दो छटाँक से पाव भर तक पानी चढ़ा सकते हैं। एक वर्ष से लेकर छ: वर्ष तक के बच्चे के पेट मे पाव भर से लेकर आध सेर तक पानी चढाते हैं। बच्चे का आध सेर तक

पानी चढाते हैं। छ वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक के बच्चे को आध सेर से लेकर १ सेर तक पानी चढाते हैं। उससे बड़े अर्थात् १२ से लेकर ज्यादा उम्र वालों को १ सेर से लेकर २ सेर तक पानी चढा सकते हैं। २५-३० वर्षवालों के पेट में ढाई तीन सेर तक पानी चढाया जा सकता है। पानी की मात्रा धीरे धीरे बढाना चाहिये।

एनिमा के पानी में क्या मिलाया जाय ?

कुछ डाक्टर एनिमा के पानी में रेंड़ी का तेल, साबुन की झाग, ग्लेसरीन इत्यादि पदार्थ मिलाते हैं। उनका यह कहना है कि इन चीजों के मिलाने से आँत बहुत अच्छी तरह साफ हो जाती है। लेकिन इस पर विचार कर देखिये। सिर्फ साबुन मिलाने की ही बात को लीजिये। यह प्रति दिन का अनुभव है कि बदन में लगा हुआ साबुन आप ही आप नहीं छूटता। उसे कई बार पानी से धोने की जरूरत पड़ती है। यह आसानी से समझा जा सकता है कि आँत में लगा हुआ साबुन एक ही बार में क्यों कर साफ हो जायगा। दूसरे पदार्थ भी आँत में अनावश्यक उत्तेजना पैदा करते हैं। इस उत्तेजना से धीरे धीरे आँतें कमजोर हो जाती हैं।

एनिमा का प्रयोग—

एनिमा के लिए जितना भी पानी तैयार करना है उसको जरा गरम कर लें। शरीर के ताप के बराबर गर्मी होना आवश्यक है। एनिमा के [illegible] को अच्छी तरह साफ करें और रबर की

नली इत्यादि को भी अच्छी तरह गरम पानी से साफ कर ले। तैयार जल को एनिमा के वरतन मे डाल दें। वहुत अच्छा हो अगर एक नीवू का रस निचोड़ कर एनिमा के पानी में कपडे के सहारे छान लिया जाय। इसका असर आगे चल कर वहुत अच्छा होता है। अब एनिमा के वरतन को, जिस जगह या तख्त पर लेटकर एनिमा लेना है, उससे चार फ़ीट ऊँचा दीवार से (कील के द्वारा) लटका दें। अगर वेंच या तख्त पर लेटना हो तो उसके उस सिरे को जिस तरफ पैर हो और ऊँचे पर एनिमा का वरतन लटकता हो आधा फ़ुट ऊँचा कर दें। वेंच या तख्त के नीचे पैताने की ओर दो दो ईंट लगा सकते हैं। अब जिसको एनिमा देना हो उसको इसी वेंच या तख्त पर चित्त लेटा दें। कहने की जरूरत नहीं कि सर कुछ नीचा होगा और पैर एनिमा की ओर ऊँचा। पैरों को मोड रखना चाहिये। अब रवर की नाली के अग्रभाग को खोल दें जिससे कुछ पानी के निकल जाने से अन्दर की हवा निकल जायगी, फिर उसको वद कर उसम थोडा वेसलीन या घी मलकर गुदा मार्ग के अन्दर लगभग दो इच तक प्रवेश करा दें और पानी को आँत मे चढ़ने दें। कभी कभी तो पानी वडी आसानी से आँत में चढ जाता है, पर कभी कभी कुछ कठिनाई होती है। कभी जरा सा पानी चढने के वाद ही पेट में दर्द शुरू होता है और ऐसा मालूम होता है कि अब पानी नहीं रोका जा सकेगा। इस हालत में नाली के अग्रभाग को थोडी देर के लिए वन्द कर देना चाहिये, जिससे पानी का चढ़ना वन्द हो जाय। कुछ ही देर में पेट का दर्द वद हो जायगा। दर्द वद होन

पर फिर पानी को आँत में चढ़ने देना चाहिये। इसी तरह धीरे धीरे जितना पानी चढ़ाना हो आँत में चढने दीजिये। पानी को आँत मे इसी अवस्था में कुछ देर तक रोक रखना चाहिये। अब पेट की हल्की मालिश करें। इस के बाद टट्टी जाना चाहिये। पहले पानी रोकना कठिन होगा, पर अभ्यास से १०-१५ मिनट तक पानी रोका जा सकता है। पानी रोक रखने से मल फूल कर बाहर निकल आता है और एनिमा की आदत भी नहीं पड़ती। पानी चढ़ाने के बाद तुरन्त ही पाखाने जाने से बिलकुल मल भी नहीं निकलता और एनिमा की आदत पड़ जाने का डर रहता है। पर आदत तभी पड सकती है जब कि तीन-चार महीने लगातार एनिमा लिया जाय। बताई विधि के अनुसार एनिमा लेने में पेट की अच्छी सफाई हो जायगी और आदत भी नहीं पड़ेगी। यदि बेंच या तख्त न हो तो जमीन पर दरी, कम्बल या चटाइ बिछा कर मरीज को उसी पर चित्त लिटा कर उसकी कमर के नीचे तकिया रख सकते हैं, जिससे उसका सर कुछ नीचा हो जाय।

एनिमा स्वयं भी लिया जा सकता है। यदि किसी कारण चित्त न लटा जा सके तो दाहिनी करवट लेट कर भी एनिमा ले सकते हैं। पर चित्त लेटना और सर को कुछ नीचा करना ज्यादा अच्छा है।

एनिमा के प्रयोग के बारे में हिदायतें—

(१) एनिमा वैसे हर रोज नहीं लेना चाहिये, पर उपवास में या केवल फलों का रस पीकर या फल खाकर रहने के दिनों में

हर रोज लेना चाहिये। पूरे उपवास में तीन चार दिनो तक दोनों समय एनिमा लेना चाहिये।

(२) जिस की आत में बहुत दिनों के विकार सूखकर चिमट गये हैं उसे पहले दो-तीन दिनों तक एनिमा लेने से मल नहीं निकलता। ऐसी हालत मे एनिमा लेना बद नहीं करना चाहिये।

(३) तीव्र (नये) रोगों मे उपवास के साथ एनिमा का प्रयोग जरूरी है। एक दो दिन के उपवास और एनिमा के प्रयोग से ९० फी सदी से ज्यादा रोग जाते रहेंगे।

(४) पुराने (जीर्ण) रोगों में तीन चार सप्ताह के फलाहार, शाकाहार और बीच-बीच के दो-तीन दिन के उपवास के साथ एनिमा के नियमित प्रयोग से ७५ फी सदी पुराने रोग आसानी से जाते रहगे। 'भोजन और रोग निवारण' लेख को जो 'जावनसखा'* में प्रकाशित हुआ है, पढने से रोगों में उचित आहार के सबध म बहुत कुछ मालूम हो जायगा।

(५) एनिमा लेने के बाद आध घटे तक लेट कर आराम करना चाहिये।

(६) एनिमा लेने के बाद भरसक एक घटे तक कुछ खाना नहीं चाहिये।

(७) साधारणत तनदुरुस्ती को बनाए रखने या उन्नत करने

---

* यह मासिक पत्र ३०, बाइ का बाग, इलाहाबाद स तीन रुपये वार्षिक चन्दे दने स मिल सकता है। एक प्रति का दाम ।=) है।

के लिए प्रति वर्ष या छः महीने बाद तीन दिन का उपवास श्रौ एनिमा प्रयोग बहुत लाभदायक है। इन तीन दिनों के बाद चार पाँच दिन तक केवल फल और पत्तीदार भाजियों को खाकर रहना बहुत अच्छा होगा। ऐसा करने वाले बहुत दिनों तक सुख रहकर जीवन व्यतीत करेंगे।

पाचन-क्रिया

जो भी हम खाते हैं वह मुँह में जाता है। थूक या लार में मिलने से उसमें रासायनिक तब्दीलियाँ होती हैं। भोजन के श्वेतसार (Starch) को यह शक्कर में बदल देता है। यदि भोजन का हर एक भाग थूक से नहा मिलेगा तो उसके सम्पूर्ण श्वेतसार पदार्थ का शक्कर नहीं बन सकता। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि भोजन खूब चबाया जाय जिससे वह छोटे से छोटे भागों में बँट कर लार से मिल जाय। इससे भोजन में जितना भी श्वेतसार है वह शक्कर में परिवर्तित हो जायगा। दूसरी बात यह है कि भोजन खूब चबाने से आमाशय का भी काम बहुत आसान हो जाता है। नहीं तो भोजन को टुकड़े टुकड़े कर पचाने मे आमाशय और छोटी आँतों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है। इसके लिए यह याद रखना चाहिये कि दाँत मुँह में होते हैं पेट में नहीं। यदि इनको इस प्रकार का परिश्रम बहुत ज्यादा करना पड़ता है तो ये कुछ दिनों के बाद काम करना बद कर देते हैं जिससे बदहज्मी, पित्त की खराबी, आमाशय और छोटे आँतों की अनेक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।

लार से मिला हुआ और चबाया हुआ भोजन अन्न प्रणाली से होकर आमाशय म पहुँचता है। भोजन के आमाशय में पहुँचने पर आमाशयिक रस बनना शुरू होता है। रस तैयार

होने म आधा घटा लगता है। यह रस हाइड्रोक्लोरिक (Hydro-chloric) अम्ल रस है। जब तक यह अम्ल रस भोजन से नहीं मिलता तब तक लार अपना काम करता रहता है, अर्थात् श्वेतसार से शक्कर बनता रहता है। जब भोजन आमाशयिक रस से मिलता है तो उसका असर अम्ल हो जाता है। अम्ल होते ही लार का असर जाता रहता है।

दूध जैसे ही आमाशय में पहुँचता है वह अम्ल से मिलता है। आमाशयिक रस से मिलते ही दूध जम जाता है अर्थात् फट जाता है। दूध का आमाशय में पहुँच कर फट जाना स्वाभाविक है। जमने के बाद यह उसी प्रकार पचता है जैसे कि और दूसरे पदार्थ पचते हैं।

आमाशयिक रस में पेप्सिन नामक एक पदार्थ है, जो अम्ल के साथ मिलकर प्रोटीन का विश्लेषण करता है, अर्थात् उस के टुकड़े टुकड़े कर देता है और तब उसमें एक नया पदार्थ बनता है जो अधिकतर घुलनेवाला होता है। सम्पूर्ण प्रोटीनों का विश्लेषण आमाशय में ही नहीं होता, अधपचे प्रोटीन अंत में पहुँचते हैं और वहाँ पच कर रक्त में मिल जाते हैं। आमाशयिक रस मिलने से तैल युक्त पदार्थ से प्रोटीन अलग हो जाता है और तैल बिंदु अलग। इसके अलावा तैल में और कोई विशेष तबदीली नहीं होती।

भोजन के ३० मिनिट से कई घंटे तक आमाशय में रहने के बाद उसका बहुत सा भाग छोटी आँतों में प्रवेश करता है। छोप

से एक रस निकलता है। नलिया आकर इसमें मिलती हैं। यकृत और पित्ताशय से रस आकर भोजन मे मिल जाता है। यह रस चार होता है। तैल पदार्थ को पचाने के लिए इस रस का होना आवश्यक है। यदि यह बहुत परिमाण मे नहीं होता तो तैल का अधिकाश भाग शरीर के बाहर होता है। आँतों में इसके रहने से भोज्य पदार्थों का सड़ाव कम होता है। यदि आँतों में पित्त बहुत कम पहुँच पाता है तो मल बहुत ही बदबूदार होता है। अब दूसरा रस जो क्लोम (Pancreas) से आता है पाचन क्रिया के लिए बहुत ही लाभदायक और आवश्यक है। इस रस का प्रभाव प्रोटीन, श्वेतसार और तैल पदार्थ पर होता है।

भोजन विशेषत छोटी आँतों में ही पचता है। जो कुछ पचने से बचता है वही आँत में चला जाता है। यहाँ भोजन के पहुचने के समय उसमे ९०% जल होता है।

इससे सहज ही में जाना जा सकता है कि भोजन का जल विशेषत बड़ी आँत में ही सूखता है और जो कुछ पचने को बाक़ी रहता है वह यहाँ पचता है। ऊपर लिखा जा चुका है कि भोजन का अधिकाश भाग छोटी आँत मे ही पचता है इसलिए अपच की बीमारी विशेषत छोटी आँतों की ही है। कोष्ठबद्धता खास कर बड़ी आँत की बीमारी है। विशेषत कोष्ठबद्धता और अपच दोनों साथ ही होते हैं। कोष्ठबद्धता बिना अपच के भी रह सकता है। जैसे कि एक सुस्वस्थ मनुष्य केवल दूध ही भोजन लेता है। इस हालत में दूध का ज्यादा भाग शरीर में मिल जाता है और इसका थोड़ा

सा हिस्सा शरीर से बाहर निकलने के लिए रह जाता है। इस थोडे पदार्थ से आंतों का काम सुचारु रूप से नहीं चल सकता और इससे कोष्टबद्धता होना अनिवार्य है।

कोष्ठबद्धता के स्थान विशेषत अन्नपुट (Cecum), श्रोणिगा बृहदंत्र (Pelvic loop) और मलाशय हैं। यों तो सारा बृहदंत्र ही कोष्ठबद्धता का स्थान है।

ज्ञान-तन्तु की कमजोरी

जब श्रोणिगा बृहदन्त्र मल से भर जाता है और मल को शरीर से बाहर फेंकने की जरूरत पडती है तब श्रोणिगा बृहदन्त्र तनता है और मल का कुछ हिस्सा मलाशय में आता है। यह मलाशय को फैला देता है। इसका असर ज्ञान-तन्तुओं पर पडता है, जिससे उदर के मास-तन्तु तनते हैं और मल द्वार के मास-तन्तु ढीले पड जाते हैं। इससे मल शरीर के बाहर हो जाता है। जब यह काम पूरा हो जाता है तो मलाशय के मास-तन्तु फिर भी खिच जाते हैं और मल त्याग का काम पूरा हो जाता है।

इन बातों से साफ़ पता चलता है कि आतों की चाल ज्ञान-तन्तुओं पर निर्भर है। ज्ञान तन्तुओ का अच्छी हालत म होना बहुत जरूरी है। यदि ये कमजोर होंगे तो कोष्ठबद्धता अनिवार्य है।

हमारी पीठ से जो ज्ञान तन्तु निकलती हैं वे ही आँतों मे भी जाती हैं और आँतों को सचालित करती हैं। इनमें किसी प्रकार की खराबी आजाने से आँतों को चाल सुचारु नहीं रहती जिससे कोष्ठबद्धता होती है।

मलाशय म मल जमा हो जाने से उस स्थान के ज्ञान-तन्तुओं ही के कारण हमको मल त्यागने की इच्छा होती है। यदि इस अवस्था में मलत्याग नहीं किया जाय तो ज्ञान-तन्तु बार बार

जो एक पौधे को जल बिना होती है। शरीर जल की इस कमी को रक्त से पूरा करना चाहेगा, जिससे शरीर के और रसों के सूखने का डर है।

कम जल पीने से भी कोष्ठबद्धता होने का डर रहता है। कारण कि मल में काफ़ी जल नहीं रहने से मल सूख कर कड़ा हो जाता है और बड़ी कठिनाई से शरीर के बाहर निकलता है। इसलिए पानी पीने में कमी नहीं होनी चाहिये। कम से कम ६ ग्लास अर्थात् ढाई तीन सेर पानी तो रोज पीना ही चाहिये। एक या दो ग्लास सोकर उठने के बाद, एक ग्लास सोते समय और तीन ग्लास बीच में किसी समय। जल पर्याप्त मात्रा में सेवन करने से कोष्ठबद्धता जाती रहेगी और पाचन क्रिया भी खूब अच्छी तरह होगी।

पीने के पदार्थों में शुद्ध जल सर्वोत्तम है। इसके ज़रा ज्यादा पी जाने से बहुत हानि का भय नहीं है। पर सोडावाटर, लमोनेड या बियर इत्यादि पीने से बहुत हानि हो सकती है और इन सब चीज़ों की आदत नहीं डालनी चाहिये।

यह डाक्टरों ने पता लगाया है कि विशेष ठंडे जल पीने से पाचन क्रिया रुक जाती है। एक ग्लास बर्फ घुला हुआ या बर्फ के ऐसा ठंडा जल पीने से आधे घंटे तक पाचन क्रिया रुक जाती है। इस लिए बर्फ, बर्फ मिला हुआ पानी, लेमोनेड, सोडा या बर्फ दिया हुआ शरबत नहीं पीना चाहिये।

बहुत पानी पीने से भी हानि हो जाती है।

बैठने उठने का ढग

गाँव या जगल के रहने वालों की, जिनको अपने जीवन-निर्वाह के लिए कठिन परिश्रम करना पडता है, बैठने, खड़े होने और चलने की विधि सरल और प्राकृतिक होती है। न तो उनकी छाती बहुत ज्यादा निकली होती है, जैसी कि हुक्म के इतजार करने वाले एक सिपाही की, और न बिलकुल धँसी होती है। दोनों हालतें अप्राकृतिक हैं और इनसे बहुत सी खराबियाँ होती हैं। पहली हालत में सीने की हड्डियाँ ऊपर को खिंची रहती हैं। नीचे नहीं आने से जितनी श्वास फेफड़े से बाहर निकलनी चाहिये उतनी नहीं निकल पाती और जब ज्यादा श्वास नहीं निकल पायेगी तो फेफडों के अन्दर काफी हवा नहीं जा सकती। श्वास अधिक परिमाण में नहीं लेने से खून पूर्णतया ओपजन (Oxygen) स युक्त नहीं हो सकता। पाठक जानते होंगे कि ओपजन पर ही जीवन निर्भर करता है। ओपजन न मिलने से एक क्षण भी जीवित रहना असम्भव है।

फिर छाती धँसी रहने से पेट की मासपेशियाँ ढीली रहती हैं और छाती नीचे दबी अर्थात् चौडी होती है। इस हालत में हृदय पटल (Diaphragm) अपने स्थान से नीचे रहता है। सीने का दबाव आँत और उदर के दूसरे अगों पर पडने के कारण और उदर की मासपेशियो के ढीली पड जाने से उदर के यन्त्र नीचे

खिसकने लगते हैं। यह हालत कुछ दिन तक रहने से वे मास पेशियाँ, जो इन यन्त्रों को छाती से उदर म लटका कर रखती हैं, कमजोर पड जाती हैं, जिससे ये यन्त्र और भी नीचे खिसक जाते हैं। आँत के नीचे खिसकने के कारण और मासपेशियों के कमजोर हो जाने से आत की चाल भी कमजोर पड़ जाती है और मल आँत में ही जमा होने लगता है। इसी अवस्था को कोष्ठ-बद्धता कहते हैं।

दूसरी बात यह है कि सीने का दबाव आँत के ऊपर पडने स आत का रास्ता छोटा पड़ जाता है, जिससे जितना मल बाहर निकलना चाहिये नहीं निकलता है। आँत की अकर्मण्यता स, जहाँ उसके कोने बनते हैं वहाँ आत अपनी थैला से सट जाती है। मामूली तौर पर इससे कोई हानि नहीं होती पर आँत क ज्यादा सट जाने से काट छाँट के सिवाय और कोई दूसरा उपाय लागू नहीं होता। इन बातों से पता चलता है कि हमार ठीक ठीक न बैठने, उठन और चलने से कितनी खराबियाँ होती हैं। हमारे शरीर की शक्ल बदल जाती है, जिसस हमारे स्वास्थ्य का भी हानि पहुँचती है।

चित्त की अवस्था

ऐसा देखने में आया है कि जो मनुष्य सदा प्रसन्न चित्त रहते हैं उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। इसमें प्राकृतिक नियम ही प्रधान है। जिस प्राकृतिक दशा में हम रहेंगे वैसी ही हमारे शरीर की अवस्था होगी और प्रकृति की हालतों को बदलने से हमारे शरीर में भी तब्दीलियाँ आ जायँगी। इन तब्दीलियों से हमारा जीवन बहुत छोटा हो जाता है। डाक्टर अरन्थनॉटलेन ने इस सिद्धान्त को मानते हुए एक उपमा दी है जिसका साराश नीचे दिया जाता है। सभी मनुष्य की पीठ की गुठलियाँ अलग हैं पर वैसे मनुष्य की गुठलियाँ एक हो जाती हैं जो हमेशा अपनी पीठ पर बोझा ढोया करता है, जिससे उसकी आयु भी बहुत कम हो जाती है।

उदास और चिन्तित रहने के लिए मनुष्य नहीं बनाया गया है। बच्चे जो संसार में फँसे नहीं हैं, कभी भी उदास होना नहीं जानते। वे सदा ही खुश और हँसते रहते हैं। वे प्रकृति के बिलकुल पास हैं। जैसे जैसे उनकी आयु बढ़ती जाती है उनमें अस्वाभाविकता आती है। इसमें उनका दोष ही क्या है। हमारी शिक्षा प्रणाली ऐसी है कि उन्हें खराब कर देती है। लड़के कुछ बड़े हो जाते हैं तो हम कहना शुरू करते हैं कि 'लड़को, देखो अब तुम बच्चे नहीं हो कि दिन रात खेला ही करोगे, अब तुम

बडे हुये, तुम्हें गम्भीर होना चाहिये और खेलना छोड़ देना चाहिये'। इस तरह लडकों में हम अस्वाभाविकता ले आते हैं, जिससे वे लडके होते हुए भी बूढे बन जाते हैं। यही कारण है कि हमारी देश की औसत आयु दिन प्रति दिन कम होती जाती है।

जो मनुष्य बच्चा बन के रहेगा उसकी आयु अवश्य बढेगी। आपको मालूम होना चाहिये कि शिक्षक प्रायः दूसरे आदमियों से ज्यादा दिन जीते हैं। इसका यही कारण है कि उनका सम्बध बच्चों से रहता है, जिसका असर उन पर भी पडता है। पर जो शिक्षक हमेशा घोडे की तरह मुँह बनाये रहते हैं वे कदापि स्वस्थ और दीर्घजीवी नहीं हो सकते। मैं तो कहूगा कि हर उमरवाले आदमी को फिर से लड़का बन जाना चाहिये। उन्हें लड़कों की तरह उछलना, कूदना, हंसना और खेलना चाहिये जिसमे नये जीवन का पुनः सचार होगा। जो आदमी अपने को बड़ा कहता और बच्चों के साथ नहीं मिलना चाहता या बच्चों की तरह दिल खोल कर हसना या खेलना नहीं जानता या किसी प्रकार का व्यायाम नहीं करता उसका शरीर अवश्य ही जड़ हो जायगा। शरीर की जडता से मनुष्य समय के पहले ही बूढा हो जाता है और उसकी अकाल मृत्यु होती है।

हमारे शरीर मे बहुत से ऐसे कीटाणु हैं जो बाहर के कीटाणुओं से युद्ध करते हैं। यदि ये बलवान होते हैं तो बाहर वाले कीटाणुओं को परास्त करते हैं और मार डालते हैं। कमजोर होने पर ये स्वयं ही मारे जाते हैं और तब बाहर वाले कीटाणु

हमारे शरीर को अपना घर बना लेते हैं, जिससे हमारा शरीर अनेक प्रकार की बीमारियों का घर बन जाता है। हमारे शरीर के कीटाणुओं की शक्ति हमारे मन पर निर्भर है। जब हमारा मन प्रसन्न रहता है, चिन्ताओं से दूर रहता है, तो इन कीटाणुओं की शक्ति बढ जाती है और ये अपनी पूरी शक्ति से बाहर के कीटाणुओं से लडते और उन पर विजय प्राप्त करते है। डाक्टर मनरो ने इस सिद्धान्त के ऊपर एक बडी पुस्तक (Autosuggestive therapy) लिखी है। उनका कहना है कि हमारे शरीर के कीटाणुओं में अद्भुत शक्ति है। सिर्फ इनको सचालन करने की आवश्यकता है। वे कहते हैं कि यदि मनुष्य अपने शरीर के ऊपर ५ मिनट भी प्रति दिन ध्यान दे तो वह सदा ही सुस्वस्थ रह सकता है। बीमार होने पर बीमारी को भी इसी प्रकार दूर किया जा सकता है। सचमुच इससे बहुत लोगो को लाभ हुआ है। पाठकों को मालूम है कि हमारी आँतें ज्ञान तन्तुओं के अधीन हैं। चित्त की चचलता और चिन्ता के कारण ज्ञान-तन्तु अपना काम अच्छी तरह नहीं कर सकतीं। इनकी अकर्मण्यता से कोष्ठबद्धता हो जाती है।

इसलिए प्रत्येक मनुष्य को हँसना, खेलना और हर अवस्था में प्रसन्नचित्त रहना चाहिये। यदि वह ऐसे ही समाज मे रहे, जहाँ वह स्वच्छदतापूर्वक हँस, बोल और खेल सकता है, जहा अनेक प्रकार के मनोविनोद की सामग्रियाँ उपस्थित हैं तो वह अवश्य ही कोष्ठबद्धता से बचा हुआ और इसलिए स्वस्थ रहेगा।

कोष्ठबद्धता को दूर करना

पहले के अध्यायों में दी गई बातों को एकत्रित करने से कोष्ठबद्धता के इतने कारण हो सकते हैं —

(१) अनुचित भोजन और भोजन के गलत तरीके (२) आधुनिक जीवन, जिसमें अधिकतर बैठा रहना पड़ता है (३) उदर के मांसतन्तुओं की कमजोरी से आँतों के मांसतन्तुओं की कमजोरी, (४) ज्ञानतन्तुओं की कमजोरी, (५) गलत उठने बैठने, चलने और सोने की रीति, (६) कम जल पीना और (७) चिन्ता।

पिछले अध्यायों में इन सबके बारे में विस्तार के साथ कहा गया है। यहाँ पर इनमें से मुख्य तीन विषयों के बारे में और कुछ कहा जायगा। आशा है कि नीचे दी हुई बातों के अनुसार काम करने से कोष्ठबद्धता अवश्य दूर होगी।

चिन्ता—सबसे पहले चिन्ता को ही दूर करने की आवश्यकता है। कोष्ठबद्धता के कारण चित्त सदैव ही अप्रसन्न और चिन्तित रहता है, जीवन भार सा मालूम होता है, किसी भी काम में मन नहीं लगता और रोगी बराबर अपनी अवस्था पर सग्लानि सोचता रहता है। कहने की [illegible] नहीं कि [illegible] करने से कोष्ठबद्धता दूर होने के बदले [illegible] जाती [illegible] सोचने में एक विचित्र शक्ति है। हम [illegible] ते।

ही हो जाते हैं। इसलिए पहले अपने विचारों को ठीक करना चाहिये।

कोष्टबद्धता की हालत म यह स्वाभाविक है कि चित्त दुखी रहे, क्योंकि शरीर का मल बाहर न निकलने से उसका असर मस्तिष्क पर होता है। फिर भी निराशा जनक विचारो को छोडना पड़ेगा। समझो और सोचो कि ससार मे कोई ऐसी कठिनाई नहीं चाहे वह रोग हो या और कुछ, जो दूर न हो सके। व्यर्थ चिन्ता को छोड कर सही उपायों का प्रयोग करना ही बुद्धिमानी है। इसलिए दुखी करने वाले विचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान न दो। इतना ही नहीं, सोचो कि तुम अच्छे हो रहे हो और शीघ्र ही बिल्कुल अच्छे हो जाओगे। ऐसा सोचने के लिए निश्चित समय चाहिये। सब से अच्छे समय तीन हैं —(१) रात में सोने से पहिले, (२) सुबह मे सोकर उठने के बाद और (३) यदि हो सके तो दोपहर में। सोने मे पहिले बिस्तर पर लेटे लेटे सोचो कि तुम्हारी पाचन क्रिया बिल्कुल ठीक है, तुम्हारी आँतें इत्यादि अपना अपना काम ठीक तरह करती हैं, तुम्हारे शरीर मे प्रतिदिन मल त्याग ठीक तरह हो जाता है और इसमें तुम दिन प्रतिदिन उन्नति कर रहे हो, इत्यादि इत्यादि। इसी तरह सुबह भी सोकर उठने के पहले सोचो और तब कुछ कसरत करो, जो कि आगे बतलाई गई हैं, फिर पाखाने जाओ। दोपहर में भी इसी तरह सोचो। इस तरह सोचने के लिए कोई विशेष स्थान नहीं चाहिये। जहाँ हो वहा सोच सकते हो, लेकिन चित्त एकाग्र कर सोचना चाहिये। साथ ही ध्यान रहे कि

सोचने या चिन्ता नहा बना रानी चाहिये। कुछ ही दिना क अभ्यास से देखोगे कि तुम्हारी अवस्था में बहुत कुछ अन्तर हो गया है और तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होता जा रहा है। इस तरह सोचने के साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि तुम साधारणत हर समय प्रसन्नचित्त रहो और कोष्ठबद्धता क खयाल और उससे पैदा हुए दु खों को अपने मन में आने ही न दो।

जल—'जल' के अध्याय में बताया जा चुका है कि काफी मात्रा में जल पीना आवश्यक है, नहीं तो मल सूख जाता है। यह भी कहा गया है कि सुबह २ ग्लास जल पिओ। प्रात काल जल पीना बहुत ही लाभदायक है। इससे केवल कोष्ठबद्धता ही नहीं बल्कि पाचन सबधी सभी रोग दूर हो जाते हैं और मनुष्य स्वस्थ और दीर्घायु होता है।

यदि बिस्तरे से उठ कर ही सूर्योदय के बहुत पहिले जल पिया जाय, तो प्रात काल का जलपान बहुत लाभदायक है। इसी को ऊष पान कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह जल्दी सो जाय और ६ से ८ घटे तक, जैसी आवश्यकता हो, निश्चिन्त सोकर सूर्योदय के बहुत पहले उठ जाय। उठते ही वह आँखो म और चहर पर ठढ जल के छींटे दे और फिर केवल जल से दाँत और मुँह धोकर बहुत धीरे धीरे १ या अगर ग्लास छोटा हुआ तो डेढ या दो ग्लास पानी पी जाय। इसके बाद वह थोड़ी देर के लिए इधर उधर टहले और अगले अध्याय में बताए हुए कसरतों को करे। जल पीने और कसरत करने के बाद पाखाना है

कि पाखाना जरूर ही साफ होगा और यदि दो तीन दिन ऐसा न भी हो तो इसके बाद ही होने लगेगा।

प्रश्न यह है कि जल पीने के कितनी देर बाद शौच के लिए जाना चाहिये। साधारण तौर से सब के लिए एक ही समय निश्चित करना कठिन है। किसी किसी के लिए जल पीने के बाद तुरन्त ही शौच जाना अच्छा होता है, किसी को आध घंटे बाद शौच जाने से पाखाना साफ होता है और किसी को सिर्फ १५ मिनट ही ठहरना होता है। तीन चार दिन के अनुभव से तुम्हें स्वय पता चल जायगा कि तुम्हारे लिए कितने समय का अन्तर आवश्यक है। जिनकी कोष्ठबद्धता विकट रूप धारण किए है उन्हें तो कुछ देर लगेगी ही और उनके लिए यह लाभदायक होगा कि वे जल पीने के बाद कसरत करके शौच जायँ। इसमे कोई सदेह नहीं कि जल का प्रयोग बहुत गुणकारी होगा।

जल के सबध में यह भी याद रखना चाहिये कि खाते समय अधिक जल पीने से पाचन-क्रिया में रुकावट होती है, क्योंकि जल मे पचानेवाले रस पतले हो जाते हैं और उनका पूरा पूरा प्रभाव नहीं हो पाता। यदि खाते समय बिल्कुल नहीं लेकिन खाने के १ घंटे बाद इच्छा भर जल पिया जाय तो पाचन भी अच्छा हो और मल के आँतों द्वारा निकलने में बहुत आसानी हो।

जल जब कभी पिओ धीरे धीरे पिओ बल्कि स्वाद लेकर पिओ। यदि समय अधिक लगे तो कुछ परवाह नहीं।

भोजन—भोजन के अन्दर विविध पदार्थों के बारे में पहले

सोचने का चिन्ता नहीं बना लेनी चाहिये। कुछ ही दिनों के अभ्यास से देखोगे कि तुम्हारी अवस्था में बहुत कुछ अन्तर हो गया है और तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होता जा रहा है। इस तरह सोचने के साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि तुम साधारणतः हर समय प्रसन्नचित्त रहो और कोष्ठबद्धता के खयाल और उससे पैदा हुए दुखों को अपने मन में आने ही न दो।

जल—'जल' के अध्याय में बताया जा चुका है कि काफी मात्रा में जल पीना आवश्यक है, नहीं तो मल सूख जाता है। यह भी कहा गया है कि सुबह २ ग्लास जल पिओ। प्रातःकाल जल पीना बहुत ही लाभदायक है। इससे केवल कोष्ठबद्धता ही नहीं बल्कि पाचन सम्बंधी सभी रोग दूर हो जाते हैं और मनुष्य स्वस्थ और दीर्घायु होता है।

यदि बिस्तरे से उठ कर ही सूर्योदय के बहुत पहिले जल पिया जाय, तो प्रातःकाल का जलपान बहुत लाभदायक है। इसी को उषःपान कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह जल्दी सो जाय और ६ से ८ घंटे तक, जैसी आवश्यकता हो, निश्चिन्त सोकर सूर्योदय के बहुत पहले उठ जाय। उठते ही वह आँखों में और चेहरे पर ठंढे जल के छींटे दे और फिर केवल जल से दाँत और मुँह धोकर बहुत धीरे धीरे १ या अगर ग्लास छोटा हुआ तो डेढ़ या दो ग्लास पानी पी जाय। इसके बाद वह थोड़ी देर के लिए इधर उधर टहले और अगले अध्याय में बताये हुए कसरतों को करे। जल पीने और कसरत करने के बाद आशा है

कि पाखाना जरूर ही साफ होगा और यदि दो तीन दिन ऐसा न भी हो तो इसके बाद ही होने लगेगा।

प्रश्न यह है कि जल पीने के कितनी देर बाद शौच के लिए जाना चाहिये। साधारण तौर से सब के लिए एक ही समय निश्चित करना कठिन है। किसी किसी के लिए जल पीने के बाद तुरन्त ही शौच जाना अच्छा होता है, किसी को आध घंटे बाद शौच जाने से पाखाना साफ होता है और किसी को सिर्फ १५ मिनट ही ठहरना होता है। तीन चार दिन के अनुभव से तुम्हें स्वयं पता चल जायगा कि तुम्हारे लिए कितने समय का अन्तर आवश्यक है। जिनकी कोष्ठबद्धता विकट रूप धारण किए है उन्हें तो कुछ देर लगेगी ही और उनके लिए यह लाभदायक होगा कि वे जल पीने के बाद कसरत करके शौच जायँ। इसमे कोई संदेह नहीं कि जल का प्रयोग बहुत गुणकारी होगा।

जल के संबंध मे यह भी याद रखना चाहिये कि खाते समय अधिक जल पीने से पाचन क्रिया में रुकावट होती है, क्योंकि जल मे पचानेवाले रस पतले हो जाते हैं और उनका पूरा पूरा प्रभाव नहीं हो पाता। यदि खाते समय बिल्कुल नहीं लेकिन खाने के १ घंटे बाद इच्छा भर जल पिया जाय तो पाचन भी अच्छा हो और मल के आँतो द्वारा निकलने मे बहुत आसानी हो।

जल जब कभी पिओ धीरे धीरे पिओ बल्कि स्वाद लेकर पिओ। यदि समय अधिक लगे तो कुछ परवाह नहीं।

भोजन—भोजन के अन्दर विविध पदार्थों के बारे में पहले

कहा जा चुका है। फिर भी अपने अनुभव से पता लगाना होगा कि तुम्हारे लिए कौन सा भोजन उपयोगी और हितकर है और कौन हानिकारक। कुछ पदार्थ तो ऐसे हैं जिनको कुछ दिना के लिए तुम्हें छोड देना पड़ेगा, जैसे उड़द की दाल, अधिक आलू और गोभी, अरवी, बडा इत्यादि। चोकरयुक्त आटे की रोटी, थोड़ी मात्रा में चावल, मूँग या अरहर की दाल, सभी तरह के हरे शाक, विशेष कर पालक, परवल, भिंडी, लौकी, पपीता, दूध, मठा, थोडी मात्रा में घी इत्यादि कोष्ठबद्धता के रोगी को लाभ पहुँचाते हैं। दही मल बाँधता है। किसी किसी को उससे कोष्ठबद्धता हो जाती है और किसी को लाभ भी होता है। मठे की, विशेषकर गाय के मठे की, जितनी भी प्रशसा की जाय थोडी होगी। भोजन के बाद थोडा सा मठा पी जाना बहुत अच्छा है। हरे और सूखे फल, विशेष कर सतरे, अगूर, थोड़ी मात्रा मे अमरूद, किसमिस, अजीर कोष्ठबद्धता को दूर करते हैं। दूसरे दूसरे फलों से भी लाभ होता है, पर शायद एक केले से कोष्ठबद्धता और भी बढ जायगा और अधिक आम खाने से या तो कब्ज होगा या पतले दस्त आयेंगे। आम के बाद दूध पीना बहुत ही लाभदायक है। जैसा ऊपर कहा गया है, अपने अनुभव से जान लो कि कौन कौन पदार्थ तुम्हारे लिए अच्छे हैं। बहुत दिनों तक इस तरह सोचने की आवश्यकता नहीं होगी। यदि तुमने नियम-पूर्वक रहकर कोष्ठबद्धता दूर कर दी और अपनी पाचक शक्ति प्रबल कर ली तो फिर जो खाओगे पच जायगा और टट्टी खुल कर होगी।

भोजन के सबंध मे और भी कई जरूरी बातें हैं। भोजन के लिए निश्चित समय होना चाहिये और बिना भूख के यदि अमृत भी हो तो उसे नहीं छूना चाहिये। सुबह को अधिक मात्रा मे किया हुआ नाश्ता और रात में बहुत देर में किया भोजन अच्छी तरह नही पच पाते और पेट को खराब करते हैं। हल्का नाश्ता और पेट भर भोजन के बीच मे भी कम से कम तीन घंटे का अन्तर होना चाहिये। यह देखकर कि कितनी देर म तुम्हें भूख लगती है अपने नाश्ते और भोजन का समय निश्चित करलो। आजकल हम लोग ऐसा करते हैं कि घडी में समय देखकर भोजन के लिए बैठ जाते हैं। यदि भूख न भी मालूम होती हो पर १० बज गये हों तो भोजन कर लेना हमें आवश्यक मालूम होता है। कहने की आवश्यकता नहा कि भोजन की सच्ची घडी समय वाली घडी नहा बल्कि भूख है। हम लोग जीने के लिए खाते हैं न कि खाने के लिए जीते हैं, इसलिए जब शरीर को भोजन की आवश्यकता हो तभी उसको भोजन देना चाहिये। माना कि तुम्हें १० बजे दफ्तर या स्कूल पहुँच जाना है, इसलिए ९ बजे ही खाना चाहिये। यदि ऐसा है तो ६ बजे ही कुछ हल्का नाश्ता कर लो और यदि ६ बजे नाश्ता करने से ९ बजे भूख न लगती हो तो ६ बजे का नाश्ता छोड दो, उसे विष समझो। वह शरीर के अन्दर जाकर तुम्हें स्वस्थ और बलवान बनाने के बदले रोगी और दुर्बल बनायेगा। इसलिए अपने अनुभव से लाभ उठाओ और अपने शरीर के आवश्यकतानुसार उसे उचित समय पर उचित भोजन दो। शरीर के साथ एक विशेष बात यह है कि थोड़े ही दिनों

के सिखाने से वह सीख जाता है और तुम्हारी आज्ञाओं का वशवर्त्ती हो जाता है। इसलिए शरीर को सिखाओ। ऐसा करने में उसे अनुचित रूप से मत दबाओ। दबाना बुरा है। उसमें लाभ के साथ हानि भी होती है और इच्छायें ज्यों की त्यों बनी रह जाती हैं। तुम शान्ति-पूर्वक सोचो और समझो फिर तो तुम्हारी समस्या आसानी से हल होने लगेगी और यदि एकबार तुम्हारा शरीर सीख जायगा तो वह तुम्हारी इच्छाओं के अनुकूल और उचित समय पर ही भोजन, आराम इत्यादि माँगेगा।

आवश्यकता से अधिक खाना बुरा है। अधिकांश मनुष्य इतना खाते हैं कि खाने के बाद फुर्ती और प्रसन्नता मालूम होने के बदले उन्हें आलस्य और ग्लानि मालूम होती है। उनका शरीर बोझ सा प्रतीत होता है और वे अकर्मण्य हो कर सो जाना चाहते हैं। सब से अधिक खेद तो यह है कि जानवर भी ऐसा नहीं करते पर हम लोग करते हैं। इसलिए भोजन करने के कारण और आवश्यकता को समझ कर अन्दाज से खाना खाओ। यदि आवश्यकता से अधिक खाने की इच्छा हो तो मनु भगवान का यह कथन अपने मन में दुहराओ —

अनारोग्यं अनायुष्यं अस्वर्ग्यंचातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत् परिवर्जयेत्॥

'अति भोजन करना आरोग्यता, दीर्घायु और स्वर्गीय (दिव्य) भाव के प्रतिकूल है। यह पुण्य के प्रतिकूल और लोकाचार के विरुद्ध है। इसलिए उसे छोड़ देना चाहिये।' बस, इतना ही

खाओ कि पेट न फूले, आलस्य न मालूम हो और फिर तीन चार घंटे के बाद भूख लग आये।

ऊपर दी हुई हिदायतों के साथ साथ यह भी जरूरी है कि प्रत्येक ग्रास को अच्छी तरह कुचल और चबाकर गले के नीचे उतारो। दाँत इसीलिए हैं कि भोजन को कुचल कर उसे पचने के योग्य बनाया जाय और जब तक वह मुँह में रहे उसका स्वाद भी लिया जाय। यदि निगलने से पहले भोजन को मुँह में चबाने की जरूरत न रहती तो दाँत मुँह में होने के बदले आँतों में होते और जब दाँत आँतों या पेट के अन्दर न होकर मुँह के ही अन्दर हैं तो उन से भोजन कुचलने और चबाने का काम जरूर लेना चाहिये। इसलिए जो कुछ भी खाओ खूब चबाकर खाओ। चबाते समय मुँह बजाना या चेहरे की आकृति बिगाड़ना नहीं चाहिये। मुँह बन्द कर भोजन को अच्छी तरह चबाओ और उसे गले के नीचे उतारो जब वह बिल्कुल पानी हो जाय। यह बहुत जरूरी है। ऐसा करने से तुम्हारे खाने की मात्रा अनायास ही यथेष्ट हो जायगी, क्योंकि पूरा पूरा चबाने के कारण आवश्यकता से अधिक खाने के लिए समय ही न मिलेगा, और जो कुछ खाओगे वह शीघ्र ही और अच्छी तरह पच जायगा। चबाकर खाने वाले का मल ठीक मात्रा में बँधकर शरीर से निकलता है। जो अच्छी तरह चबाकर भोजन करता है उसको पाचन सम्बधी रोग होते ही नहीं।

बस, यदि कोष्ठबद्धता को दूर करना चाहते हो तो सब से पहले चिन्ता को दूर करो और प्रसन्न तथा निश्चिन्त रहो, जल

के सिखाने में वह सीख जाता है और तुम्हारी आज्ञाओं का वशवर्त्ती हो जाता है। इसलिए शरीर को सिखाओ। ऐसा करने में उसे अनुचित रूप से मत दबाओ। दबाना बुरा है। उससे लाभ के साथ हानि भी होती है और इच्छायें ज्यों की त्यों बना रह जाती हैं। तुम शान्ति-पूर्वक सोचो और समझो फिर तो तुम्हारी समस्या आसानी से हल होने लगेगी और यदि एकबार तुम्हारा शरीर सीख जायगा तो वह तुम्हारी इच्छाओं के अनुकूल और उचित समय पर ही भोजन, आराम इत्यादि माँगेगा।

आवश्यकता से अधिक खाना बुरा है। अधिकांश मनुष्य इतना खाते हैं कि खाने के बाद फुर्ती और प्रसन्नता मालूम होने के बदले उन्हें आलस्य और ग्लानि मालूम होती है। उनका शरीर बोझ सा प्रतीत होता है और वे अकर्मण्य हो कर सो जाना चाहते हैं। सब से अधिक खेद तो यह है कि जानवर भी ऐसा नहीं करते पर हम लोग करते हैं। इसलिए भोजन करने के कारण और आवश्यकता को समझ कर अन्दाज से खाना खाओ। यदि आवश्यकता से अधिक खाने की इच्छा हो तो मनु भगवान का यह कथन अपने मन में दुहराओ —

अनारोग्यं अनायुष्यं अस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत् परिवर्जयेत्॥

'अति भोजन करना आरोग्यता, दीर्घायु और स्वर्गीय (दिव्य) भाव से प्रतिकूल है। वह पुण्य से प्रतिकूल और लोकाचार के विरुद्ध है। इसलिए उसे छोड़ देना चाहिये।' बस, इतना ही

खाओ कि पेट न फूले, आलस्य न मालूम हो और फिर तीन चार घटे के बाद भूख लग आये।

ऊपर दी हुई हिदायतो के साथ साथ यह भी जरूरी है कि प्रत्येक ग्रास को अच्छी तरह कुचल और चबाकर गले के नीचे उतारो। दाँत इसीलिए हैं कि भोजन को कुचल कर उसे पचने के योग्य बनाया जाय और जब तक वह मुँह मे रहे उसका स्वाद भी लिया जाय। यदि निगलने से पहले भोजन को मुँह मे चबाने की जरूरत न रहती तो दाँत मुँह मे होने के बदले आँतों में होते और जब दाँत आँतों या पेट के अन्दर न होकर मुँह के ही अन्दर हैं तो उन से भोजन कुचलने और चबाने का काम जरूर लेना चाहिये। इसलिए जो कुछ भी खाओ खूब चबाकर खाओ। चबाते समय मुँह बजाना या चेहरे की आकृति बिगाडना नहीं चाहिये। मुँह बन्द कर भोजन को अच्छी तरह चबाओ और उसे गले के नीचे उतारो जब वह बिलकुल पानी हो जाय। यह बहुत जरूरी है। ऐसा करने से तुम्हारे खाने की मात्रा अनायास ही यथेष्ट हो जायगी, क्योंकि पूरा पूरा चबाने के कारण आवश्यकता से अधिक खाने के लिए समय ही न मिलेगा, और जो कुछ खाओगे वह शीघ्र ही और अच्छी तरह पच जायगा। चबाकर खाने वाले का मल ठीक मात्रा में बँधकर शरीर से निकलता है। जो अच्छी तरह चबाकर भोजन करता है उसको पाचन सबधी रोग होते ही नहीं।

बस, यदि कोष्ठबद्धता को दूर करना चाहते हो तो सब से पहले चिन्ता को दूर करो और प्रसन्न तथा निश्चिन्त रहो, जल

बिस्तर से उठते ही एक ग्लास ठंडा पानी पी लो और नाच
नी हुई कसरत करो।

कसरत नं० १

(१) पैर की एड़ी को थोड़ा अलग कर खड़े हो जाओ। घुटना से थोड़ा झुककर दोनों हाथों को घुटनों से थोड़ा ऊपर ले जाओ और तब उन्हें पीछे ले जाकर एक को दूसरे से पकड़ लो। अब अन्दर की मांसपेशियों को संकुचित करो और अपनी छाती को

जितना हो सके ऊपर की ओर उठाने की कोशिश करो। इस तरह ८-१० बार कर लेने के १५-२० मिनट के बाद पाखाने जाओ।

पाठक यदि इस क्रिया का अभ्यास करेंगे तो स्वय उनको पता चलेगा कि इससे पेट कितनी अच्छी तरह साफ होता है।

यदि इससे पूरी सफ़ाई न हुई तो पाठक को नीचे दिया हुआ अभ्यास करना चाहिये।

तीन ग्लास पीने लायक गरम पानी ले लो। इसम थोडा नमक छोड़ दो। नमक ज्यादा न हो, नहीं तो क़ै हो जायगी। एक ग्लास गरम पानी लेकर पीलो और ऊपर वाली क्रिया को ८-१० बार करो। १० मिनट ठहर कर एक ग्लास और गरम पानी पीलो और उसी क्रिया को फिर ८-१० बार करो।

यह क्रिया ठीक हल्के जुलाब का काम करेगी। ३-४ घटे के बाद पेट बिल्कुल साफ़ हो जायगा। यहाँ तक कि इस क्रिया से छोटी और बड़ी अर्थात् पूरी आँत की सफ़ाई हो जाती है।

जिन पाठको को नौलि (आगे देखो) आती हो उनको ऊपर दी हुई क्रिया को न कर केवल गरम पानी पीकर ५ ६ बार नौलि करना चाहिये। १० मिनट के बाद फिर गरम पानी पीकर ५ ६ बार नौलि करना चाहिये। इस तरह तीन बार करना चाहिये। नौलि करने से विशेष फ़ायदा होता है।

(२) कुर्सी या ज़मीन पर ही सीधे बैठ जाओ। फिर उदर के नीचे के मास तन्तुओ को सकुचित करो और बड़ी आँत के बारे म सोचो। ऐसा सोचो कि मल दाहिनी ओर से बाँई ओर को जा रहा है और मलाशय म जमा हो रहा है। जितनी देर तक व्यायाम

किया जायगा उतनी देर तक उदर के मांसतन्तु संकुचित रहेंगे। श्वास स्वाभाविक रीति से चलती रहेगी। यह व्यायाम मलत्याग के पहिले किया जाना चाहिये। तीन मिनट से शुरू करना चाहिये। हफ्ते में एक मिनट बढ़ा सकते हैं। इस तरह बढ़ा कर इसे १ मिनट तक कर सकते हैं।

इस क्रिया से आँत की चाल में बहुत सहायता मिलती है। कुछ दिन अभ्यास करने से पाठक को स्वयं पता चलेगा कि यह कितनी लाभदायक है। यह क्रिया यदि नित्य प्रति की जाय तो कोष्ठबद्धता जाती रहेगी और नये जीवन का अनुभव होगा।

पद्मासन नं० ३

(३) वज्रासन - वज्रासन को समतल भूमि या तखत पर बैठकर करना चाहिये एक स्वच्छ आसन हो तो अच्छा होगा। इसे मल त्याग के पहले या बाद कर सकते हैं।

सीधे खड़े हो जाओ, पैर के पंजों को मिला लो, घुटने टेक कर जमीन पर बैठ जाओ, दोनों घुटने मिले होंगे, पैर की तलियाँ भीतर की ओर होंगी और एड़ी ऊपर और बाहर की ओर। अब पैर की तलियों पर इस तरह बैठो कि एड़ियाँ बाहर निकल जायँ, दोनों हाथों को घुटनों पर लाओ, तलियाँ नीचे की ओर होंगी, पीठ सीधी होगी और सिर सामने होगा। आखें बन्द कर सकते हैं। समय—१ मिनट से १० मिनट तक, हफ्ते में एक मिनट बढा सकते हैं।

मैं पहिले बता चुका हूँ कि ठीक ठीक नहीं बैठने, खड़ा होने और चलने से कितनी खराबियाँ होती हैं। यह मेरा अपना और दूसरों का भी अनुभव है कि जिनकी बैठने, खड़ा होने और चलने की आदत खराब होचुकी है उनको यदि कितनी बार भी कहा जाय वे तुरन्त ही अपने ढग पर आ जाते हैं। इसलिए उनको इस तरह थोड़ी देर तक बैठना चाहिये जिससे ठीक ठीक बैठने, खड़े होने और चलने की आदत पड़ जाय। वज्रासन बड़ा ही उत्तम आसन है।

इस आसन पर बैठने से आंत की क्रिया स्वतन्त्रता पूर्वक होती है जिससे पाचन क्रिया भी पूरी पूरी होती है।

किया जायगा उतनी देर तक उदर के मासतन्तु सकुचित रहेंगे। श्वास स्वाभाविक रीति से चलती रहेगी। यह व्यायाम मल-त्याग के पहिले किया जाना चाहिये। तीन मिनट से शुरू करना चाहिये। हफ्ते में एक मिनट बढा सकते हैं। इस तरह बढा कर इसे १० मिनट तक कर सकते हैं।

इस क्रिया से आँत की चाल में बहुत सहायता मिलता है। कुछ दिन अभ्यास करने से पाठक को स्वय पता चलेगा कि यह कितनी लाभदायक है। यह क्रिया यदि नित्य प्रति की जाय तो कोष्ठबद्धता जाती रहेगी और नये जीवन का अनुभव होगा।

कसरत न० ३

(५) एक तख्ता, ६ फ़ीट लम्बा और एक फ़ीट चौडा, लेलो। तख्ते के एक सिरे को कुर्सी पर रक्खो और दूसरे को ज़मीन पर, इसको इस तरह रक्खो कि तख़ते और ज़मीन के बीच ३०° का कोण बने। तख्ते पर पीठ के सहारे लेट जाओ, सिर ज़मीन पर होगा और पैर ऊपर। हाथों को नाभी के ऊपर रक्खो। इस अवस्था में पेट को भीतर खीचो। यदि हृदय कमजोर हो तो यह न करके एक कम्बल या दरी को लपेट कर पीठ के नीचे डाल दो। इस प्रकार ५ मिनट से १५ मिनट तक लेट सकते हैं। हफ़्ते में २ मिनट बढा सकते हैं।

इससे उदर के हिस्से जो गलत ढग से बैठने, खडा होने और चलने से या और दूसरे कारणों से नीचे खिसक जाते हैं और जिससे आँत की चाल स्वतन्त्रता पूर्वक नहीं होती, पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से खिंच कर अपनी पुरानी अवस्था पर आ जाते हैं। यदि यह व्यायाम कुछ दिन तक किया जाय तो हालत बहुत कुछ सुधर सकती है।

तख़ता नहीं रहने पर न० ५ को दीवार के सहारे कर सकते हैं। यहाँ ज़मीन और शरीर के बीच ४५° का कोण बनेगा। दीवार से समकोण बनाते हुए लेट जावो। पैरों को मोड कर ऊपर लाओ और कमर को दीवार के पास ले जाओ। अब पैरों को दीवार पर रखकर कमर को उठाओ, पैरो को दीवार के ऊपर थोड़ा और ले जाओ, दोनों हाथों से कमर को सहारा दो। शरीर एक सीधी रेखा में होगा।
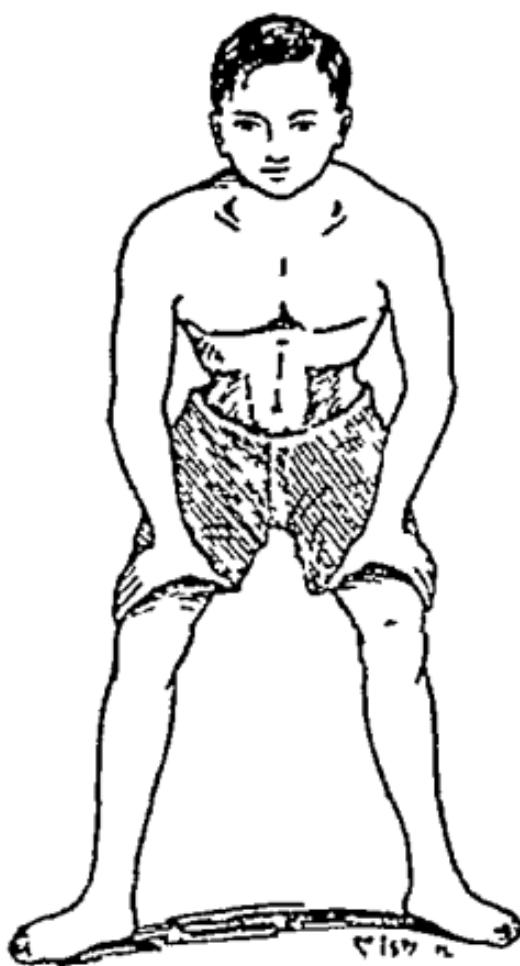
(४) पाँवों के बीच चौबीस इंच का अन्तर रक्खो घुटनों से थोड़ा आगे की ओर झुको और दोनों हाथों को जाँघों पर

कसरत नं० ४

लाओ। पेट को सकुचित कर साँस बाहर निकालो, पसलियों को ऊपर उठाओ और बीच की नली बाहर निकालो। यही नौलि है।

(६) तखत पर या बिस्तरे पर पीठ के बल सीधा लेट जाओ। हाथों को बगल में लाओ, अब श्वास को बाहर निकाल कर बार बार पेट को भीतर करो अर्थात् एक ही श्वास में उदर को पसलिया के नीचे समेटो और फिर पहली अवस्था मे ले जाओ। एक ही श्वास में इसे बार बार करो। इस क्रिया को अग्निसार कहते हैं।

इस क्रिया से उदर के अग प्रत्यग का व्यायाम हो जाता है, भूख खूब लगती है और पेट भी साफ़ होता है। इस क्रिया को लेटकर, खडे होकर या बैठ कर कर सकते हैं। एक समय सिर्फ १५ २० बार करना चाहिये। भोजन के तीन घटे बाद इस व्यायाम को करे और इस क्रिया के कम से कम आध घटे बाद भोजन करे। इस व्यायाम को एक एक घटे के बाद भी कर सकते हैं। यहाँ तक कि दफ़्तर में कुर्सी पर बैठे बैठे बिना किसी के जाने ही किया जा सकता है। यह व्यायाम बहुत ही उपयोगी है।

कसरत नं० ४

कसरत नं० ११
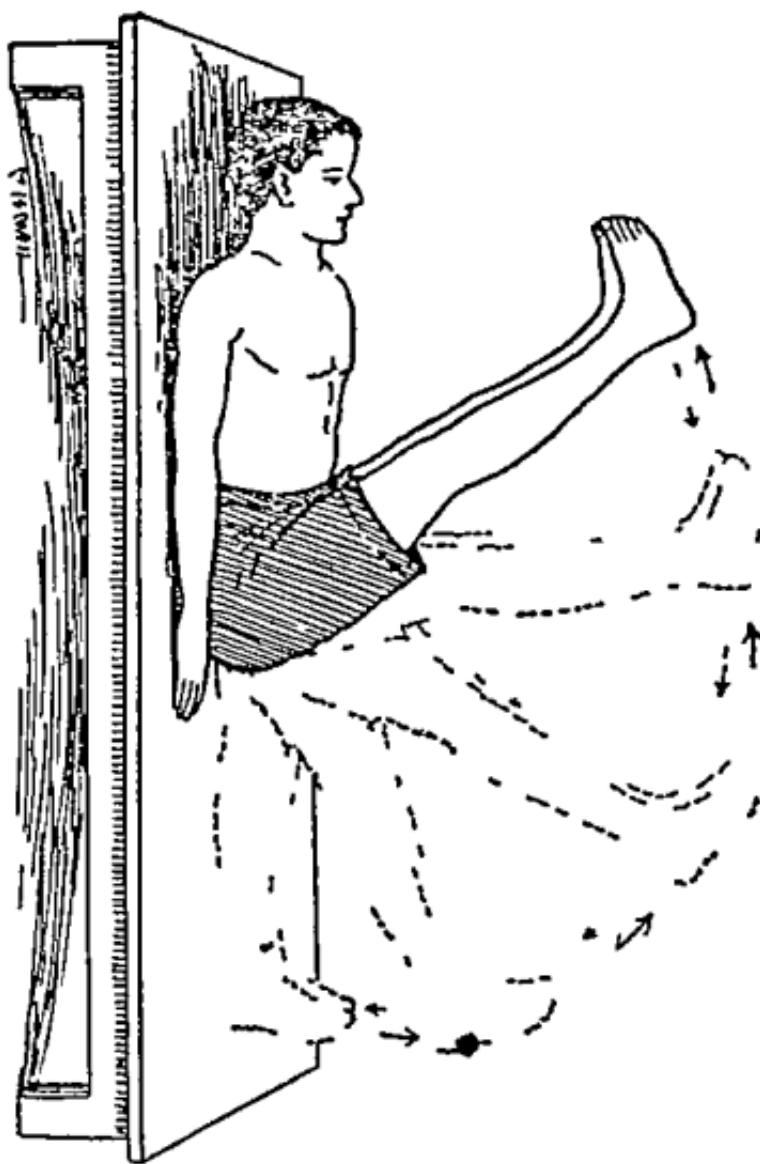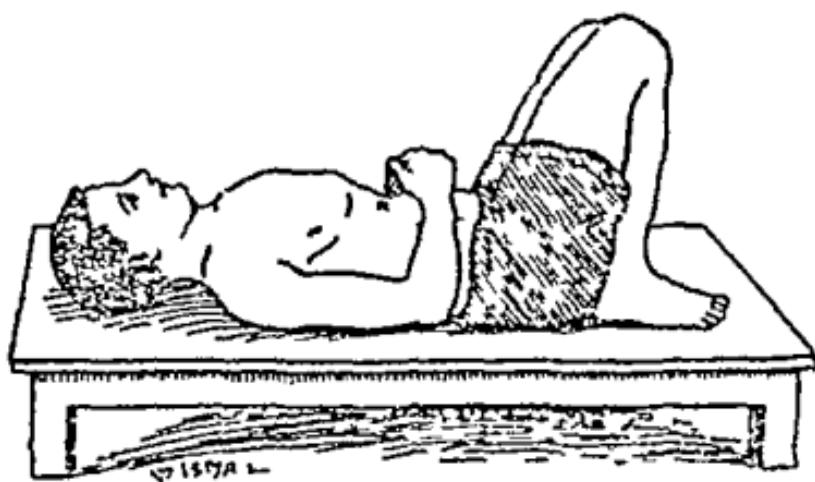
कसरत नं० ७

(७) जमीन पर या तख्ते पर सीधे लेट जावो। दोनों पैर घुटने से मुड़े होंगे। फिर एक टेनिस खेलन की गेंद या काठ का गोला ले लो। इसको दाहिनी जघास्थि के पास उदर पर रक्खो, फिर गेंद को दबाकर बड़ी आँत के चारों ओर ले जाओ। इस क्रिया म उदर की मासपेशियाँ ढीली होंगी।

इस क्रिया से भी आँत की चाल म सहायता मिलती है।

(८) नं० ७ की अवस्था में लेटकर गेंद के बजाय दोनों हाथों का अँगुलियों मे पसलियों के नीचे यकृत और प्लीहा के स्थान को बार बार दबाओ और छोड़ो। यह यकृत और प्लीहा के लिए बड़ा ही उत्तम व्यायाम है।

(९) अब लेटे ही लेटे और घुटने को मोड़े हुए, दाहिने हाथ की अगुलियों के सिरओं से घड़ी की सुई की चाल की तरह, जिस प्रकार चित्र मे दिया है, दबा कर घुमाओ। इसी तरह अंगु

कसरत न० १३ (च)

कसरत नं १३ (च)

कसरत नं० १२

(११) सीधे तख्त पर या जमीन पर सीधा पीठ के बल लेट जाओ, हाथ दोनों बगल में होंगे। दोनों पैरों को साथ और सीधा रखते हुए ३०° ऊपर ले आओ और कुछ देर रोको, इसके बाद ६०° पर ले जाओ और रोको इसी तरह धीरे धीरे ९०°, और फिर १२०° पर ले जाओ। इसके बाद जिस प्रकार ऊपर गये थे उसी प्रकार पैरों को रोकते हुए नीचे आ जाओ।

(१२) अब सीधे लेट कर दोनों पैरों को घुटने से मोड कर एड़ी को जाघों के पास लाओ। अब एड़ी पर भार देकर कमर को ऊपर जितना उठा सकते हो उठाओ और नीचे जमीन पर ले जाओ। इस तरह १५-२० बार करो।

(१३) जमीन पर या तख्ते पर लेट जाओ। पैरों को घुटनों से मोड कर पेट पर लाओ। घुटनों को हाथों से पकड कर उठो और नीचे जाओ। इस तरह १०—१५ बार करो।

ऊपर के दिये हुए व्यायाम उदर की मांसपेशियों के लिए बहुत अच्छे हैं। विशेष कसरतों के लिए देखें 'योगासन' जो शीघ्र ही स्वास्थ्यपुस्तक भंडार, ३, बाई का बाग, इलाहाबाद से ॥) में मिल सकेगी।

कसरत नं० १०

(१०) बेंच पर या कुर्सी पर बैठ जाओ। पैर सीधे लटकते हों, अब छोटी फुटबाल अथवा दूसरी कोई चीज़ (लकड़ी का गोला भी काम में लाया जा सकता है) उदर के बिचले भाग में रक्खो। दोनों घुटने मिले होंगे। अब सीने को सीधा रखते हुए घुटनों के पास लाने का प्रयत्न करो। इसमें आँतों पर दबाव पड़ता है जिससे खून का सचार विशेष होता है और वे बलवान होते हैं।

(११) सीधे तख़्त पर या ज़मीन पर सीधा पीठ के बल लेट जाओ, हाथ दोनों बगल में होंगे। दोनो पैरों को साथ और सीधा रखते हुए ३०° ऊपर ले जाओ और कुछ देर रोको, इसके बाद ६०° पर ले जाओ और रोको इसी तरह धीरे धीरे ९०°, और फिर १२०° पर ले जाओ। इसके बाद जिस प्रकार ऊपर गये थे उसी प्रकार पैरों को रोकते हुए नीचे आ जाओ।

(१२) अब सीधे लेट कर दोनों पैरो।को घुटने से मोड कर एडी को जाघों के पास लाओ। अब एडी पर भार देकर कमर को ऊपर जितना उठा सकते हो उठाओ और नीचे ज़मीन पर ले जाओ। इस तरह ८५-२० बार करो।

(१३) ज़मीन पर या तख्ते पर लेट जाओ। पैरो को घुटनों से मोड कर पेट पर लाओ। घुटनों को हाथों से पकड़ कर उठो और नीचे जाओ। इस तरह १०—१५ बार करो।

ऊपर के दिये हुए व्यायाम उदर की मासपेशियो के लिए बहुत अच्छे हैं। विशेष कसरतों के लिए देखें योगासन' जो शीघ्र ही स्वास्थ्यपुस्तक भंडार, ३ , बाई का बाग, इलाहाबाद से ॥) में मिल सकेगी।

सस्ता साहित्य मण्डल
सर्वोदय साहित्यमाला तिरानवेवाँ ग्रन्थ

[लोक साहित्य माला दसवीं पुस्तक]

[९३ · १०]
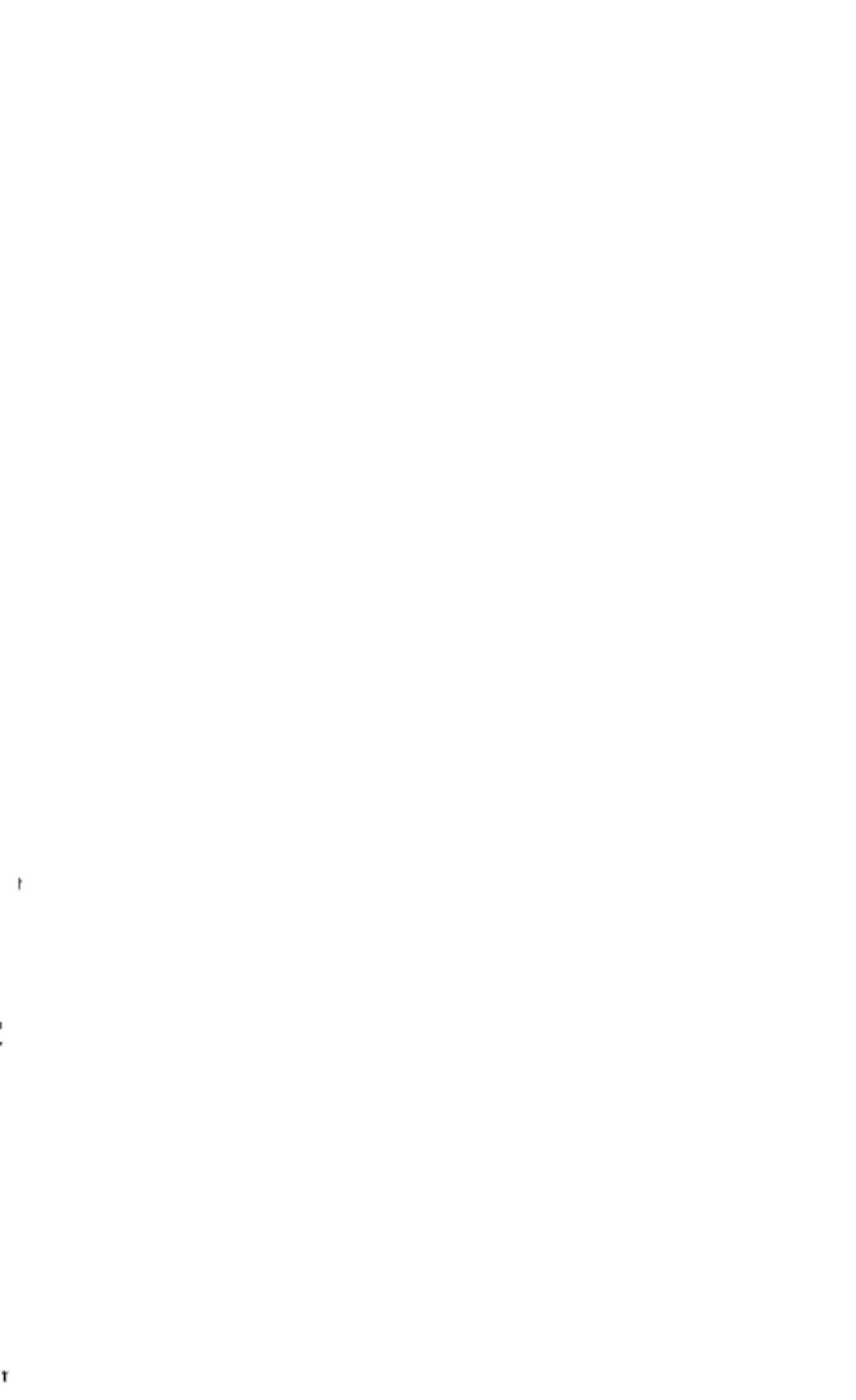
हमारे गाँव और किसान

लेखक
चौधरी मुख़त्यारसिंह

सम्पादक
कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
शाखायें—दिल्ली लखनऊ इन्दौर

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।

संस्करण
जनवरी १९४० २०००
मूल्य
आठ आना

मुद्रक,
एम० एन० डुलल,
फडरल ट्रेड प्रेस,
नया बाज़ार, दिल्ली।

भूमिका

मुझे बडा हर्ष । कि यह पुस्तक मेरी दोनों अंग्रेजी पुस्तकों—'Rural India' और 'Agrarian Relief' के आधार पर लिखी जाकर पाठकों के सामने रक्खी जा रही है। प्राय सभी भावों का, जो मेरी उपरोक्त दोनों पुस्तकों में दरशाये गये हैं, इस पुस्तक में समावेश है। मुझे यह देख कर बड़ी प्रसन्नता होती है

आज सभी सरकारें इस बात का उद्योग कर रही हैं कि किसी न किसी प्रकार किसान की उपस्थित असन्तोषजनक अवस्था को सुधारा जाय। परन्तु कार्य कर्ताओं के सामने किसान की सच्ची अवस्था का चित्र तथा उसको बदलने के तरीकों का पूरा पूरा ब्योरा न होने से पूरी सफलता नहीं हो रही है। मैंने इस अभाव को पूरा करने के लिए ऊपर की दोनों पुस्तकों को लिखा था। पहिली पुस्तक में किसान की अवस्था और उसको अच्छा बनाने के उपायो का वर्णन था और दूसरी पुस्तक में अन्य देशों ने किन किन तरीकों से काम लिया है, यह लिखा गया था। इस पुस्तक में दोनों पुस्तकों के भावों को एक स्थान पर ले आया गया है और जो आंकडे पुस्तक के पुराने होजाने से पुराने होगये थे, उनको ठीक कर दिया गया है। मुझे आशा है कि हिन्दी जानने वाले पाठक इस पुस्तक को अपनायगे और पुस्तक का खूब प्रचार हो सकेगा।

यह कार्य मेरे लिए असम्भव था, यदि मेरे मित्र श्री कृष्णचन्द्र जी विद्यालकार पुस्तक को तैयार करने और दोनों पुस्तकों के भावों को एक स्थानपर ले आने का कार्य न करते। मैंने पुस्तक की सामग्री तथा प्रूफ देखने का कार्य किया है। यद्यपि

कहीं कहीं ऐसी बातें लिखी गई हैं, जिनसे मैं सहमत नहीं हूँ तथापि उससे पुस्तक की शोभा कुछ बढ़ती ही है। मत भेद तो दुनिया में रहेंगे ही और ऐसे बड़े विषय पर तो मत भेदों का होना स्वाभाविक ही है। मैं अपने मित्र श्री कृष्णचन्द्रजी का इस परिश्रम के लिए बड़ा आभारी हूँ, यदि वह इतना परिश्रम न करते तो इस पुस्तक का पाठकों के हाथों तक पहुँचना असम्भव था। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक में मेरे भाव जनता तक पहुँचेंगे, और व उन भावों का न केवल मनन करेंगे, प्रत्युत उन्हें कार्य में परिणत कर किसान की अवस्था को उत्तम बनाने का प्रयत्न करेंगे। मैं अपने तथा अपने मित्र के परिश्रम को सफल समझूंगा, यदि मेरा दृष्टिकोण सरकार तथा जनता तक पहुँच कर किसान की अवस्था सुधारने में सहायक हो सके।

हरौला (मेरठ) —मुख्त्यारसिंह

प्राक्कथन

इस पुस्तक के योग्य लेखक ने इसका प्राक्कथन लिखने के लिए मुझे कहकर मेरा सम्मान ही किया है। मैंने यह सारी पुस्तक प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ी है और मैं यह निस्सकोच कह सकता हूँ कि यह बहुत विद्वतापूर्ण और प्रामाणिक पुस्तक है। सबसे पहले स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी ने पिछली सदी के पूर्वार्ध में भारतीय किसान की दरिद्रता और उसके सुधार की आवश्य कता की ओर देश का ध्यान खीचा था। उसके बाद भारतीय किसान के सम्बन्ध में बहुत सा साहित्य निकला है। यह पुस्तक उस साहित्य में अपना एक खास स्थान रखती है।

लेखक खुद एक काश्तकार हैं, उससे उन्हें बहुत बडी सुविधा हुई है। वह काश्तकारों ही में पैदा हुए और उन्हीं में उनका पालन-पोषण हुआ। इसलिए उन्हें छोटे-छोटे किसानों व जमीदारों, दोनों में रहने सहने और मिलने-जुलने का समय मिला। किसानों की तकलीफों को उन्होंने अपनी तकलीफ समझा और उनकी चिन्ताओं व दिक्कतों को अपनी चिन्ता व दिक्कत माना। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उनके हृदय में किसानों की दिन प्रति-दिन गिरती हुई हालत को देखकर वेदना उत्पन्न हो और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इस पुस्तक में उन्होंने किसानों के बारे में अपनी सब वेदना उडेल दी हो।

लेकिन इस पुस्तक के लखक निराशावादी नहीं हैं। यद्यपि स्थिति अत्यन्त निराशाजनक है फिर भी वह कभी असहायता या दीनता का भाव अपने दिल में नहीं लाते। वह उद्योग पर विश्वास करते हैं, भाग्य पर नहीं। उन्होंने अपन किसान बन्धुओं की

ग़रीबी के मूल कारणों का अध्ययन करने में अपनी उम्र के बहुत से साल गुजार दिये हैं। किसानो की समस्या का उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान था ही। उस ज्ञान को उन्होंने विदेशी और देशी विद्वानों द्वारा लिखे एतद्विषयक बहुत अधिक साहित्य को पढ़कर और भी बढ़ा लिया है। उन्होंने बहुत ध्यान से यह अध्ययन किया है कि पिछले दशकों में दूसरे मुल्कों ने किस तरह साइंस व सरकारों की सहायता से खेती-बारी के बारे में तरक्की की है। अपने विशाल अध्ययन, चिन्तन और अनुभव के परिणामस्वरूप लेखक ने कुछ ऐसे उपाय भी बताये हैं, जिन पर उन्हें पूर्ण विश्वास है कि उनसे किसान की हालत बहुत सुधर जायगी।

इस पुस्तक के अध्ययन से मालूम हो जायगा कि इन तमाम उपायों का निरूपण करने का एकमात्र उद्देश्य लेखक के दिल में भारतीय किसान की अवस्था को सुधारना है। सिर्फ इसी उद्देश्य को सामने रखकर लेखक ने उन सामान्य प्रश्नों पर भी विचार किया है, जिनका किसान की आर्थिक समृद्धि या अवनति से सीधा सम्बन्ध है, जैसे—मुद्रा, विनिमय, बैंक दर, और सरकारी खर्च की नीति। लेखक ने देश का खर्चीला शासन प्रबन्ध, सेना पर भारी व्यय आदि राजनैतिक प्रश्नों को जान-बूझ कर अलग रक्खा है, यद्यपि इन बातों का भी किसान की स्थिति पर निस्सन्देह भारी प्रभाव पड़ता है।

लेखक जिन निष्कर्षों पर पहुँचा है उनके लिए बहुत से कारण भी उसने पाठकों के सामने दिये हैं। प्रत्येक विषय की प्रतिपादन शैली इतनी अधिक वैज्ञानिक और विचारपूर्ण है कि ज्यों ज्यों पाठक आगे पढ़ता जाता है, उसकी दिलचस्पी भी बढ़ती जाती है। और जब वह पुस्तक के अन्तिम अध्याय तक पहुँचता है तब वह यह मान सकता है कि किसान के दृष्टिकोण से इस पुस्तक में रक्खी गई सिफारिशें ही वर्तमान परिस्थितियों

और आशाओं को देखते हुए सबसे अधिक उपयुक्त हैं।

सम्भव है कि इस पुस्तक के पाठक लेखक की किसी सम्मति से सहमत न हों, फिर भी हरएक पाठक इससे तो अवश्य सहमत होगा कि लेखक ने हिन्दुस्तानी किसान की गरीबी की समस्या पर क्रियात्मक और सर्वांगीण दृष्टिकोण से विचार करके देश की बहुत बड़ी सेवा की है। मुझे पूरी आशा है कि किसान के मामले को इतने जोरों के साथ सामने रखने का यह परिणाम तो जरूर होगा कि किसान की उन्नति करने के राष्ट्रव्यापी आन्दोलन के प्रति लोकमत जाग्रत हो जायगा। किसान की उन्नति के लिए जिन तरीकों का निर्देश लेखक ने किया है उन पर और दूसरे अनुभवी तथा विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट तरीकों पर अमल करके किसान के सुधारने का आन्दोलन भी सारे देश में जोर पकड़ जायगा। आज का समय ऐसे आन्दोलन के लिए बहुत उपयुक्त दीखता है। दुखित किसान की गिरती हुई हालत देखकर इस समय सर्वसाधारण जनता का दिल बहुत बेचैन हो रहा है। उसकी हालत सुधारने की अनेक प्रकार की चर्चाएं आजकल चल रही हैं। रूस की पचवर्षीय योजना की अद्भुत सफलता ने सरकारी अफ़सरों को बहुत प्रभावित किया है। अनेक अफ़सर किसान की हालत सुधारने के लिए दससाला योजनाओं की चर्चा भी करने लगे हैं। गवर्नर और गवर्नर जनरल भी ग्राम सुधार के लिए युवकों को उपदेश देने लगे हैं। अनेक प्रान्तों में इस तरह की योजनाएं शुरू भी हो गई हैं। केन्द्रीय सरकार से और राष्ट्रीय नेताओं से सब प्रान्तों को इस कार्य के लिए प्रेरणा मिल रही है। गरीब किसानों की हालत सुधारने का जो भी क़दम सरकार की ओर से उठाया जावे, उसका हम स्वागत करते हैं। सचाई तो यह है कि बहुत से ऐसे मामले हैं, जिनमें सरकार और उसकी व्यवस्थापक सभाएं ही कुछ क़दम उठा सकती हैं। लेकिन लेखक के शब्दों में यह भी

विपय-प्रवेश

"जब सरकार जेल म क़ैद की सज़ा भुगतनेवाले मुजरिमों तक। भोजन देती है, तब बेकसूर ग़रीबा क लिए वैसा इन्तज़ाम न कर का मतलब है कि यह पाप और अपराध को उत्तेजना देती है।"

—जॉन स्टुअर्ट मिल

सब तरह क ऐश आराम की चीज़ा से सजी-सजाई शह की शानदार और आसमान को छूनेवाली इमारतों को देखकर हम इस विशाल देश की सच्ची माली हालत का अन्दाज़ा नह कर सकते। शहरों की घनी आबादी, व्यापार की हलच व्यवसाय की चहल पहल और रुपय की आमद भी मुल्क स म्पत्ति जानने की कसौटियाँ नहीं हैं। हमें देश की आबादी ७३ ६ फ़ीसदी किसाना व उनके आश्रितों की सच्ची हालत जान के लिए गाँवा में उनके घर जाकर देखना होगा। सच्चा भार गाँवों में रहता है और देश की समृद्धि भी गाँवों की समृद्धि प निर्भर करती है। इन पृष्ठा म हम भारतीय किसानों की शोच नीय दशा का कुछ चित्र खींचकर यह बताने की कोशिश करेंगे कि इसका हल क्या है और किस तरह किसानों की ग़रीबी दू की जा सकती है।

हमें गाँवों म किसाना [illegible] मिलकर [illegible] और अपनी आँखों म उन[illegible] [illegible]ति का [illegible] चाहिए। यहाँ हमें यह मा[illegible] [illegible] जीवन [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] उत्पन्न [illegible] मपन। [illegible] रहना

गांव की सड़कें और किसानों के घर

गाँवो तक पहुँचने के लिए खड़खड़ाती हुई धीमी चलनेवाली भद्दी-सी बैलगाडी के सिवाय और कोई सवारी आपको नहीं मिलेगी। इस बैलगाड़ी पर बैठे हुए हर पाँचवें क़दम पर आपको ऐसा झटका लगेगा कि आपकी हड्डियाँ कडकडाने लगेंगी और उनमें दर्द होने लगेगा। न तो आपको वहाँ घोडे की सवारी मिलेगी और न हिचकोला खानेवाले ढेंचू इक्के की सवारी। गाँवों के ऊँचे नीचे टेढे-मेढे रास्तों के लिए बग्घी तो बहुत ही नाज़ुक चीज है। मोटर की तो वहाँ बात ही न कीजिए। वहाँ पक्की सड़कें देखने को नहीं मिलेंगी। गरमी में आपके शरीर व कपड़े धूल से और बरसात में पानी से भर जायँगे। आपको कड़कती धूप में चलना होगा, क्योंकि वहाँकी सडकों पर कोई सायादार दरख्त नहीं मिलेगा जिसके नीचे आप कुछ देर बैठकर सुस्ता सकें। जब आप पसीने से तर-बतर और बेहाल हुए अपने लक्ष्य यानी गाँव तक पहुँच जायँगे, तब मिट्टी के झोपडे आपका स्वागत करते नज़र आवेंगे। बङ्गाल में तो मिट्टी की दीवारें भी नहीं मिलेंगी। ताड क पत्तो और छडियो से वहाँ दीवारें बनाई जाती हैं। यदि इन घरों की मरम्मत पर पूरा ध्यान न दिया जाय तो बरसात में ये अवश्य गिर पडेंगे। छत बहुत स्थानो से चूती है। दरअसल वह करुण दृश्य कभी नहीं भूलेगा जब बेचारे देहाती अपनी टूटी-फूटी खटिया को इधर-से उधर हटाते फिरते हैं, ताकि छत से चूने वाले बरसात के पानी से बच सकें। घरों की दीवारो पर मिट्टी का पलस्तर होता है। सफेदी के लिए चूना वहाँ नहीं मिलता। यदि मिलता भी है तो उसे खरीदना देहातियों की ताक़त से बाहर की बात है। वह तो फिजूलखर्ची की चीज मानी जाती है। गाँव के सम्पन्न लोग

भी लाल या पीली मिट्टी में गोबर मिलाकर लीपने से संतुष्ट होजाते हैं। किटसन या बिजली की बत्तियाँ तो वहाँ न किसान देखी हैं और न किसीने उनके बारे में कुछ सुना ही है। घासलेट या मिट्टी के तेल के मामूली-से लैम्प भी वहाँ फिजूलखर्ची मान जाते हैं। मिट्टी के दीये में सरसों या नीम का थोड़ा-सा तेल डालकर वे धुँधली-सी रोशनी कर लेते हैं, जिससे अँधेरा और भी सारा व काला होकर डरावना प्रतीत होने लगता है। कुछ घरों में टीन की डिब्बियों में मिट्टी का तेल जलाया जाता है, जिसके धुएँ और कालिख से कमरा इतना गन्दा होजाता है कि उसमें बैठा ही नहीं जाता। बिजली का पंखा तो दरकिनार, छत से लटकाए जाने वाले कपड़े के पंखे भी नहीं मिलेंगे। कुदरती हवा और पानी के सिवाय उनके पास गरमी से बचने का और कोई साधन नहीं है। फर्नीचर के नाम पर उनके पास केवल एक ही चारपाई होती है। वही कुर्सी, सोफे आदि कई चीजों का काम देती है।

हरेक घर के साथ एक मिट्टी का चबूतरा भी जरूर होता है जो उठने, बैठने और सोने आदि के अनेक काम आता है।

किसान का स्वास्थ्य

सर्दी में कमरे को गरम करने के लिए न तो वहाँ भट्टियाँ ही हैं और न रसोईघर का धुआँ निकालने के लिए चिमनी ही। स्वास्थ्य को नष्ट करनेवाली इन सब बातों से बढ़कर गन्दा रिवाज यह है कि जिस घर में लोग सोते उठते हैं। उसी घर में माल और मवेशी भी रहते हैं, घरों में खिड़कियाँ नहीं होतीं। घरों का फर्श कच्चा होता है, जो न कड़कड़ाती गर्मी से और न ठिठुराती हुई सर्दी से उनका बचाव कर सकता है। इन घरों के चारों ओर एक नजर डालिए, आप चकित होजायँगे। गलियों की कभी सफाई नहीं होती। सब किस्म का कूड़ा-कचरा वहीं ढेर हो कर जमा रहता है और बरसात में पानी भरने से वह सड़ाँध करने लगता है। गन्दा पानी निकालने के

लिए वहाँ नालियाँ नहीं होतीं। सारा गन्दा पानी गलियों में फैल जाता है और जमीन में रिसता रहता है। घरों के पास ही और कभी-कभी घरों के सहन में ही खाद के ढेर लगा दिये जाते हैं। गाँव के नजदीक ही गन्दे पानी के कुछ जोहड़ होते हैं। उनमें लाखों मच्छर भिनभिनाते और बीमारियाँ फैलाते रहते हैं। पानी पास होने की वजह से लोग इन्हीं जोहड़ों के किनारे टट्टी बैठते हैं और इस गन्दी आदत के कारण पानी और भी खतरनाक हो जाता है। यह सब मैला बरसात में बहकर जोहड़ों में चला जाता है। सूअर भी इन्हीं जोहड़ों में लेटते हैं। यही पानी मवेशी पीते हैं और शायद यही कारण है कि गाँवों में मवेशियों की बीमारियाँ ज्यादा फैलती हैं। गाँव का धोबी भी इन्हीं जोहड़ों में सब कपड़े धोता है और बहुत दफा आदमी भी इन्हींमें नहा लेते हैं। जिन घरों और परिस्थितियों में अंग्रेज अपने सुअर भी रखना पसन्द नहीं करता, उनमें हमारे देहाती भाई रहते हैं।

भारतीय स्त्रियों का गहने का शौक बहुत प्रसिद्ध है। कुछ गहनों का पहनना तो विवाहित स्त्रियों के लिए लाजिमी समझा जाता है, लेकिन वे भी देहाती स्त्रियों को नहीं मिलते। देहात के सम्पन्न घरों में भी नथ के सिवा कोई सोने का गहना शायद ही कहीं दीखता है। गरीब स्त्रियों को तो काँसे या गिलट के गहनों पर ही सतोष करना पड़ता है, और बहुत-सी स्त्रियों को तो वे भी नसीब नहीं होते। मिट्टी के बर्तन हरेक घर में होते हैं। जो लोग पीतल के बर्तन खरीद सकते हैं, वे बहुत खुशहाल समझे जाते हैं। आटा पीसने के लिए हरेक घर में एक चक्की अक्सर होती है। एक देहाती की कुल सम्पत्ति के नाम पर एक या दो बैल, कुछ सस्ते-से खेती के औजार और कुछ घरेलू बर्तनों के सिवा आप कुछ न देखेंगे।

बंगाल को छोड़कर सभी देहातों के किसान ज्यादातर

भी लाल या पीली मिट्टी में गोबर मिलाकर लीपने से मजबूत होजाते हैं। किटसन या बिजली की बत्तियाँ तो वहाँ न दिखाई देती हैं और न किसीने उनके बारे में कुछ सुना ही है। घासलेट या मिट्टी के तेल के मामूली-से लैम्प भी वहाँ फ़िजूलख़र्ची माने जाते हैं। मिट्टी के दीये में सरसों या नीम का थोड़ा-सा तेल डालकर वे धुँधली-सी रोशनी कर लेते हैं, जिससे अँधेरा और भी ज्यादा काला होकर डरावना प्रतीत होने लगता है। कुछ घरों में टीन की डिब्बियों में मिट्टी का तेल जलाया जाता है, जिसके धुँए और कालिख से कमरा इतना गन्दा होजाता है कि उसमें बैठा ही नहीं जाता। बिजली का पंखा तो दरकिनार, छत से लटकाये जाने वाले कपड़े के पंखे भी नहीं मिलेंगे। कुदरती हवा और पानी के सिवाय उनके पास गरमी से बचने का और कोई साधन नहीं है। फर्नीचर के नाम पर उनके पास केवल एक दो चारपाई होती हैं। यही कुर्सी, सोफे आदि कई चीजों का काम देती हैं।

हरेक घर के साथ एक मिट्टी का घड़ा भी जरूर होता है जो उठने, बैठने और सोने आदि के अनेक काम आता है।

किसान का स्वास्थ्य

सर्दी में कमरे को गरम करने के लिए न तो वहाँ भट्टियाँ ही हैं और न रसोईघर का धुआँ निकालने के लिए चिमनी ही। स्वास्थ्य को नष्ट करनेवाला इन सब बातों से बढ़कर गन्दा रिवाज यह है कि जिस घर में लोग सोते उठते हैं। उसी घर में माल और मवेशी भी रहते हैं। घरों में खिड़कियाँ नहीं होतीं। घरों का फर्श कच्चा होता है, जो न फड़फड़ाती गर्मी से और न ठिठुराती हुई सर्दी से उनका बचाव कर सकता है। इन घरों के चारों ओर एक नजर डालिए और चकित होजायेंगे। गलियों की कभी सफाई नहीं होती। सब किस्म का कूड़ा-कचरा वहीं ढेर हो कर जमा रहता है और बरसात में पानी भरने से वह सड़ाँद करने लगता है। गन्दा पानी निकालने के

लिए वहाँ नालियाँ नहीं होतीं। सारा गन्दा पानी गलियो मे फैल जाता है और जमीन मे रिसता रहता है। घरा के पास ही और कभी-कभी घरो के सहन में ही खाद के ढेर लगा दिये जाते हैं। गाँव के नज़दीक ही गन्दे पानी के कुछ जोहड होते हैं। उनमें लाखा मच्छर भिनभिनाते और बीमारियाँ फैलाते रहते हैं। पानी पास होने की वजह से लोग इन्हीं जोहड़ों के किनारे टट्टी बैठते हैं और इस गन्दी आदत के कारण पानी और भी खतरनाक हो जाता है। यह सब मैला बरसात में बहकर जोहड़ो मे चला जाता है। सूअर भी इन्हीं जोहडा में लेटते हैं। यही पानी मवेशी पीते हैं और शायद यही कारण है कि गाँवो मे मवेशियो की बीमारियाँ ज्यादा फैलती हैं। गाँव का धोबी भी इन्हीं जोहडों म सब कपडे धोता है और बहुत दफा आदमी भी इन्हींमें नहा लेत हैं। जिन घरों और परिस्थितियों में अग्रेज अपने सुअर भी रखना पसन्द नहीं करता, उनमे हमारे देहाती भाई रहते हैं।

भारतीय स्त्रियों का गहने का शौक बहुत प्रसिद्ध है। कुछ गहनों का पहनना तो विवाहित स्त्रियों के लिए लाजिमी समझा जाता है, लेकिन व भी देहाती स्त्रियों को नहीं मिलते। देहात के सम्पन्न घरों में भी नथ के सिवा कोई सोने का गहना शायद ही कहीं दीखता है। गरीब स्त्रियों को तो काँसे या गिलट के गहनों पर ही सतोष करना पड़ता है, और बहुत-सी स्त्रियो को तो वे भी नसीब नहीं होत। मिट्टी के बर्तन हरेक घर में होते हैं। जो लोग पीतल के बतन खरीद सकते हैं, वे बहुत खुशहाल समझे जाते हैं। आटा पीसने के लिए हरेक घर मे एक चक्की अक्सर होती है। एक देहाती की कुल सम्पत्ति के नाम पर एक या दो बैल, कुछ सस्ते-से खेती के औजार और कुछ घरेलू बर्तनों के सिवा आप कुछ न देखेंगे।

बगाल को छोडकर सभी देहातों के किसान ज्यादातर

शाकाहारी हैं। बंगाल में भी किसान मांस नहीं खाते, व
किसान का भोजन
मछली खाते हैं, क्योंकि वह सस्ती पड़ती है। देहाती के भोजन-चुनाव की सिर्फ एक कसौटी है, और वह है सस्तापन। मक्का, ज्वार, बाजरा, चना और जौ आदि उनका रूखा-सूखा भोजन होता है। सत्तू खाकर शरीर अपनी जठराग्नि को शान्त करता है। चीनी वह खरीद नहीं सकता, इसलिए नमक और मिर्च ही सत्तू में डालता है। बंगाल व दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों में सबसे घटिया दर्जे का चावल ही देहातियों का भोजन है। किसान स्वयं सब प्रकार के अनाज पैदा करता है लेकिन गरीबी की वजह से उस अन्न को खुद खा नहीं सकता। पर्व या त्योहार के सिवा वह सब्जियों का इस्तेमाल बहुत कम करता है। शाकाहारी के लिए दूध बहुत जरूरी है, लेकिन आजकल का किसान मवेशी रख नहीं सकता, और जो कोई रखता भी है, तो वह दूध-मक्खन नहीं खा पाता। उसे तो मक्खन निकले दूध या छाछ पर ही गुजारा करना पड़ता है। उसके कपड़े तो और भी भीषण अवस्था का चित्रण करते हैं। गरमियों में देहाती घुटने तक की धोती बाँधता है। ८ से १० साल तक का लड़का सिर्फ लंगोटी से काम चलाता है और इससे कम उम्र का बालक कुदरती पोशाक में ही रहता है। सरदी में भी कम्बलवालों की संख्या बहुत कम मिलेगी। ज्यादातर के पास एक कुरते व गाढ़े की चादर के सिवा और कपड़े नहीं होते। गन्ने के छिलके, गोबर या और घास-फूस जलाकर वे शरीर तापते हैं और इस तरह सरदी से अपना बचाव करते हैं।

जब वे बीमार पड़ जाते हैं, तो उनका इलाज करने के लिए वहाँ न डाक्टर आता है, न हकीम या वैद्य। आसपास के शहर

के सरकारी अस्पतालों में जाने पर भी उनकी कोई परवा नहीं करता। उन्हें सफ़ाई व तन्दुरुस्ती के नियम बतानेवाला कोई नहीं है। ग्रामीणों का स्वास्थ्य लगातार गिर रहा है, उनके रोगी, पीले, पेट बढ़े हुए या हड्डी निकले हुए बच्चों को देखकर दया हो आती है। बालकों की मृत्युसंख्या गाँवों में बहुत अधिक होती है। अकाल या बीमारी से जितने मरते हैं, उनसे ज्यादा बालक भोजन व पोषण ठीक न मिलने से मर जाते हैं। गरीबों में जन्म और मृत्यु की संख्या का अनुपात स्वाभाविक तौर पर ज्यादा होता है। भारत में भी यही हाल है। यहाँ एक आदमी की औसत आयु २६.७ साल है, जब कि इङ्गलैण्ड में ५७.६, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ५६.४, जर्मनी में ४६.४, फ्रांस में ५०.५ और जापान में ४४.५ वर्ष है।

औसत उम्र

गाँव वालों की पहुँच में न तो डाकखाने हैं और न स्कूल। तीन गाँवों में एक स्कूल भी मुश्किल से मिलेगा, पुस्तकालय, क्लब, सभा सोसाइटी, खेल-कूद आदि मनोरंजन के साधनों का तो सवाल ही नहीं। ग्रामवासियों का जीवन अत्यन्त कठोर परिश्रमयुक्त, शुष्क और नीरस होता है।

भीषण स्थिति

किसान बहुत सवेरे उठता है और रात होने तक काम करता रहता है। वह न कड़कड़ाती गरमी और लू की परवा करता है, न शरीर भेदने वाली ठंडी हवा की। वह मूसलाधार वर्षा में भी काम करता है लेकिन फसल पककर कटने से पहले ही जमींदार उसे लगान के लिए तंग करना शुरू कर देता है और महाजन उसकी खड़ी फ़सल को ही डिग्री के द्वारा जब्त कर लेता है। उसकी फसल तैयार होने पर उसे अमीर जमींदार के भारी लगान और महाजन के भारी सूद को चुकाने के लिए सारी-की-सारी दे देनी पड़ती है। वह अपने लिए कुछ बचा नहीं सकता। दूसरे दिन से ही वह फिर बीज और अपने

गुजारे के लिए जमींदार व महाजन से कर्ज माँगना शुरू कर देता है। कर्ज पर लिये गये बैलों व औजारों से वह सारे मौसम खेती करता रहता है। अगली फसल तैयार होने पर फिर जरूरत के समय भारी दर पर लिये गए कर्ज के भारी सूद व लगान को चुकाने के लिए उसकी सारी फसल छीन ली जाती है और वह छूँछ-का-छूँछ रह जाता है। यह अदृश्य चक्कर इसी तरह जारी रहता है और किसी भी साल अन्न और रुई उपजानेवाले किसान के पास न खाने को अन्न बचता है न तन ढकने को कपड़ा। कितनी भीषण स्थिति है! ओह, कितनी भीषणता!!

लेकिन यह आमदनी अब और भी कितनी भीषणता से कम हो गई है, यह इस सम्बन्धी अंकों से स्पष्ट होजायगा। १६२८-२६ में ब्रिटिश-भारत की कुल पैदावार की कीमत, १,०२,१२० लाख रुपये थी, जबकि १६३३-३४ में तमाम पैदावार की कीमत घटकर सिर्फ ४७, ३६४ लाख रुपया रह गई है। इसका प्रधान कारण निरख में कमी है। इसका अर्थ यह हुआ कि ५० फीसदी से अधिक आमदनी कम हो गई। यदि हम कुल २० करोड़ किसान मान लें, तो किसान की औसत आमदनी २४)रु० वार्षिक या २) रु० मासिक से कम हुई। इस आमदनी में से उसे १॥) मालगुजारी और ॥) आबपाशी प्रति व्यक्ति देनी पड़ती है। उसे अपने सिर पर के भारी कर्ज का सूद भी इसी २) रु० की मासिक आमदनी में से देना पड़ता है। १२ फीसदी दर के हिसाब से किसानों पर कुल कर्ज का सूद १०० करोड़ रुपया होता है, अर्थात् प्रति व्यक्ति ५) वार्षिक सूद। इस तरह २४) रु० में से ७) रु० निकालकर सिर्फ १॥) रु० प्रतिमास अर्थात् ३ पैसे प्रतिदिन की आमदनी हुई। किसान की लाचारी निर्विवाद है, इसमें किसी को शक व शुबह की गुंजायश नहीं। यदि इस

भीषण स्थिति का सुधार नहीं किया गया, तो भीषण सामाजिक क्रान्ति दूर नहीं है।

प्रो० रशब्रुक विलियम्स किसानों की स्थिति के अध्ययन के बाद इस नतीजे पर पहुँचे कि "जहाँ वर्षा बहुत थोड़ी और अनिश्चित हो, जमीन भी साधारण हो, वहाँ एक साधारण गाँव म किसान की सब आमदनी ६२॥।) प्रति व्यक्ति से अधिक नहीं होती, जबकि उसके कपड़े व भोजन की कम-से-कम जरूरतें भी ७४)रु० से कम नहीं होती।"

रायल-कृषि-कमीशन ने अपनी रिपोर्ट के ४४१ वें पृष्ठ पर ठीक ही लिखा है—"हमें विश्वास है कि कोई भी ऐसी पद्धति को जारी रहने देना नहीं चाहता जिसमें लोग कर्ज से डूबे हुए पैदा होते हैं, कर्ज में उमर भर रहते हैं और कर्ज का भारी भार अपनी संतति पर छोड़कर इस दुनिया से चल देते हैं। यह सभी मानते हैं कि गाँवों में एक बहुत बड़ी तादाद दिवालिया किसानों की है।

जब एक किसान हर साल यही देखता है कि उससे सब-कुछ छीन लिया जाता है, तब उसे जीवन या खेती में कुछ रस नहीं रहता और वह जिन्दगी को भार समझने लगता है। उसका शरीर व मन भी कमजोर होने लगते हैं।

"यह खुशकिस्मती की बात है कि भारत उष्ण देश है और यहाँ थोड़ी जरूरतों में काम चल जाता है। लोगों की धार्मिक प्रवृत्ति के कारण भी किसान अपनी स्थिति पर संतोष कर लेता है और विद्रोह की भावना पैदा नहीं होती, लेकिन अब स्थिति असह्य हो चुकी है और अब वह जानने भी लगा है। यदि स्थिति में कोई सुधार न हुआ तो वह दिन जल्दी ही आने वाला है, जब भारत का किसान वर्तमान स्थिति के खिलाफ धमाधम शुरू कर देगा।"

किसानों की भयंकर गरीबी पर बहुत से देशी-विदेशी लेखकों ने विचार किया है। स्थानाभाव से उनमें से सिर्फ दो-तीन के उद्धरण दिये जाते हैं।

विद्वानों की दृष्टि में

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री एस० केशव आयंगर अपनी पुस्तक "स्टडीज इन इण्डियन इकोनॉमिक्स" में लिखते हैं—"भारत की देहाती जनता अपनी भूख को पर्याप्त भोजन द्वारा शान्त करने के बदले उसे मारने की कोशिश करती है। मनुष्य या पशु सब का उद्देश्य ही यही होता है कि किसी तरह अनाज की कुछ बचत हो जाय।" दरअसल हिन्दुस्तान का किसान दुनियाभर में सबसे गरीब प्राणी है। बम्बई खेती विभाग के डायरेक्टर डा० हेरोल्ड एच० मैन ने सेवाकाल से मुक्त होते समय कहा था—"जबतक सरकार व सार्वजनिक कार्यकर्ता यह न समझ लें कि किसानों की खुशहाली का भेद उनकी उदरपूर्ति में है, तब तक जरा भी उन्नति नहीं होगी। भारत की उन्नति में सबसे बड़ी बाधा खाली पेट है। मेरा अन्तिम सन्देश भारतवासियों को सिर्फ एक है, कि किसानों को काफी भोजन पहुँचाने के तरीके ढूँढे जाय।" श्री आनल्ड लपटन ने भारतीय किसानों की करुण अवस्था का सजीव चित्र खींचा है। वह लिखते हैं—"घास-फूस या ताड़ की पत्तियों से छाया एक मिट्टी का घर उसका महल है। उसका बिछौना पौधे के डण्ठल या पुआल का बना रहता है जो जमीन से मुश्किल से छः इंच ऊँचा होता है। अगर हुआ तो उसपर टाट लगा है नहीं तो यों ही सो जाता है। उसके घर में न दरवाजा होता है, न खिड़कियाँ। खाना पकाने का या आग जलाने का छोटा-सा स्थान बाहर रहता है। उसके सोने के कमरे के बाहर एक मिट्टी का चबूतरा होता है। जमीदार उसको आरामकुर्सी समझिए। पहनने के लिए उसके पास केवल एक धोती रहती है। जब वह उस धोती को धोता है, तब

पहनने के लिए दूसरी धोती नहीं होती। वह न तम्बाकू पीता है, न शराब। न अखबार पढ़ता है न किसी उत्सव में भाग लेता है। उसका धर्म उसे सहनशीलता और संतोष की शिक्षा देता है। इसलिए वह संतोषी जीवन तबतक व्यतीत करता रहता है, जबतक दुर्भिक्ष उसे पीठ के बल गिरा नहीं देता।" एक और स्थान पर वह लिखते हैं—"लाखों किसान आधे एकड़ पर किसी तरह गुजारा करने के लिए दिन रात कोशिश करते रहते हैं और आखिर हार जाते हैं। यह लड़ाई एक मनुष्य का-सा जीवन व्यतीत करने के लिए नहीं होती। वे सिर्फ जीना चाहते हैं, केवल मौत से बचना चाहते हैं।" मि० ए० ए० पार्सल ने लिखा है—"हम कह सकते हैं कि भारत की अधिकांश जनसंख्या अपने जन्मदिन से मृत्यु दिवस तक भूखी ही रहती है। सब राजनीतिक, शासनविधान सबन्धी, जाति धर्म आदि की समस्यायें पेट की इस भारी समस्या के आगे तुच्छ जान पड़ती हैं।" डब्ल्यू० एस० ब्लण्ट ने 'इण्डिया अण्डर रिपन' नामक पुस्तक में ठीक ही लिखा था, "हमने रिआया को डाकुओं के हाथ से बचा दिया, लेकिन पेट की ज्वाला से तड़प-तड़पकर मर जाने से नहीं बचा सके।" (पृष्ठ २४६–४६)

एक भारतीय की औसत आमदनी लगाने के लिए भिन्न भिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग अलग हिसाब लगाये हैं। ब्रिटिश सरकार-

औसत आमदनी

द्वारा नियत किये गए शाही-साइमन-कमीशन ने भी, जिसकी प्रामाणिकता पर सरकार को भी सन्देह नहीं हो सकता, अलग अलग अनुमानों की चर्चा करते हुए अपनी यह सम्मिति दी है कि १६२२ ई० में भारतीय किसान की ज्यादा-से-ज्यादा आमदनी ८ पौण्ड सालाना से कम ही होगी, जबकि इसी साल ग्रेटब्रिटेन में प्रत्येक नागरिक की औसत आमदनी ६५ पौंड थी—अर्थात् अंग्रेज की आमदनी का १८ वाँ

भाग भारतीय कमाता था। ये १६२७ के आँकड़े हैं। आज जबकि पदार्थों के मूल्य आधे से भी कम हो गये हैं, यह आमदनी और भी कम हो गई है। फिर इस आमदनी में बड़े-बड़े सम्पत्तिशालियों की आय भी शामिल है, उसे निकाल देने से तो देहाती की आमदनी और भी कम हो जायगी। भारत-सरकार ने पिछले सालों में एक बैंकिंग इन्क्वायरी-कमेटी बिठाई थी। उसकी केन्द्रीय कमेटी ने प्रान्तीय कमेटियों की रिपोर्टों तथा सरकार द्वारा प्रकाशित आँकड़ों के आधार पर यह सम्मति दी थी कि "आबादी में वृद्धि और पदार्थों के मूल्य में कमी का खयाल न भी करें, तो एक किसान की आमदनी सालाना ४२) रु० या ३ पौंड से ज्यादा नहीं है। इस तरह किसानों की भयंकर गरीबी निर्विवाद और स्वयंसिद्ध चीज है।"

भाग १ : भ्रम-निवारण

गरीबी के कल्पित कारण

किसानों की गरीबी के उपायों पर विचार करने से पहले उसके कारणों पर विचार कर लेना जरूरी है। बहुतसे सरकारी व गैर-सरकारी विचारकों ने किसानों की समस्या पर विचार किया है और कुछ उपाय भी बताये हैं। इन उपायों को मद्देनज़र रखते हुए सरकार ने और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं ने कुछ प्रयत्न किया भी है, लेकिन इसके बावजूद हालत बद से बदतर होती गई है। इसका एक ही कारण हो सकता है कि मर्ज़ ठीक नहीं समझा गया और इसलिए इलाज भी कारगर साबित नहीं हुआ। अनेक प्रसिद्ध सरकारी व गैरसरकारी अर्थशास्त्रियों ने किसानों की गरीबी के निम्नलिखित कारण बताये हैं —

(१) हिंदुस्तानी किसान खेती में बहुत ही पुराने तरीक़े इस्तैमाल करता है, वह शेष संसार में प्रचलित वैज्ञानिक तरीक़ों से अपरिचित है, इसलिए खेत की उपज बहुत कम होती है।

(२) उसके खेत अलग-अलग टुकड़ों में बँटे हुए हैं, जिनपर वह पूरा ध्यान नहीं दे सकता।

(३) जनसंख्या की वृद्धि के साथ लोग कम बसे हुए स्थानों पर नहीं गये। इस कारण एक ही भूमि पर गुजारा करनेवालों की संख्या बढ़ गई और प्रति व्यक्ति आमदनी बढ़ने से और भी कम हो गई।

(४) वर्षा की कमी से कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

(५) किसान की फ़िजूलखर्चियाँ। इस कारण वह कुछ बचा नहीं पाता।

(६) महाजन का भारी सूद उसकी आमदनी के एक बड़े भारी हिस्से को खा जाता है।

इन्हीं कारणों को इतनी बार और इतने ज़ोर के साथ दुहराया गया है कि हम इनकी सच्चाई पर विश्वास करने लगे हैं। साधारण तटस्थ निरीक्षक इन कारणों को सच ही मानने लगे हैं, लेकिन ज़रा अन्दर पैठकर देखने से घटनाएँ और आँकड़े हमें बिलकुल दूसरे परिणाम पर ले जाते हैं। इनमें से बहुत-से कारण ग़रीबी के परिणाम हैं, न कि कारण। सच्चे कारणों की तलाश हमें अन्यत्र करनी पड़ेगी।

. १ .

पहले कारण की समीक्षा

क्या भारत में खेती की औसत उपज बहुत कम है और क्या इसका कारण पुराने तरीकों का चलन है?

प्रायः सभी सरकारी कमेटियों और कमीशनों की रिपोर्टों व रिकार्डों में किसानों की ग़रीबी का प्रधान कारण अवैज्ञानिक और पुराने तरीकों द्वारा खेती और उसकी वजह से अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम उपज को बताया गया है। ग़ैरसरकारी विद्वानों ने भी इस मत का समर्थन किया है और खेती में वैज्ञानिक तरीकों के चलन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रचार किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पिछली सदी में विदेशों ने मशीनरी का इस्तेमाल करके बहुत-सी मेहनत बचा ली है, नये-नये वैज्ञानिक खादों का आविष्कार किया है, बीजों में सुधार किया है, खेती के कृमियों और रोगों के विनाश के उपाय निकाले हैं और इस तरह प्रति एकड़ अपनी उपज बहुत बढ़ा ली है। इसके साथ यह भी सचाई है कि हिन्दुस्तानी किसान अभी तक सदियों पुराने तरीके को बरत रहा है और उसने वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति से कोई लाभ नहीं उठाया है। कहा जाता है कि जब अन्य देशों में मशीनों की सहायता से १० इस गुना दस

चलाया जाता है, तब भारत में सदियों पुराने हल से सिर्फ ३ इंच गहरी जमीन खोदी जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि जमीन की गहरी सतह से पौधे को जो भोजन प्राप्त हो सकता है, वह ऊपर की सतह से नहीं मिल सकता और उसकी बढ़वार रुक जाती है। हिन्दुस्तानी किसान वैज्ञानिक खादों का इस्तैमाल नहीं करता। खेतों में जो पुरानी फसल के रूप में उपयोगी खाद बच रहता है, उसे भी वह खेत में खपा नहीं पाता। वह इस सबको जला देता है और इस तरह भूमि की उपजाऊ शक्ति को कम कर उपज भी कम कर लेता है। वह बीज की उन्नति की भी परवा नहीं करता। जब उसकी फसल में बीमारी फैलती है, वह उसे 'खुदाई क़हर' मानकर हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाता है।

ऊपर का यह युक्तिक्रम उन लोगों को अवश्य ही ठीक मालूम होगा, जिन्होंने स्वयं कभी खेती नहीं की। शिक्षित भारतीय को खेती का अनुभव नहीं होता। वह तो आरामकुर्सी पर बैठकर आर्थिक प्रश्नों पर बहस करने वाला जीव है। वह सब बताई गई बातों को ठीक मानकर दलील करता है और एक परिणाम निकालकर निश्चिन्त होजाता है। लेकिन क्या वे सब बातें, जो उसे बताई गई हैं, बिलकुल ठीक हैं? क्या दरअसल हिन्दुस्तान की प्रति एकड़ उपज बहुत कम है और क्या हिन्दुस्तानी किसान की गरीबी का इसे प्रधान कारण कहा जा सकता है?

जो ऊपर लिखा युक्तिक्रम पेश करते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि भिन्न भिन्न देशों में उपज की तुलना करते हुए तीन बातों का ख़याल जरूर करना चाहिए (१) भूमि (२) जल वायु और (३) किसान की शक्ति। यदि इन बातों की तुलना नहीं की गई, तो उपज की तुलना का कोई अर्थ नहीं रहता। इन चीजों का किसी वस्तु की पैदावार पर

तुलना के लिए आवश्यक अंग

कितना अधिक असर पड़ता है, यह बताने के लिए बहुत अधिक उदाहरण देने की जरूरत नहीं। हिन्दुस्तान में आम की उपज और किसी भी देश में बहुत ज्यादा होती है। अन्य देशों में वैज्ञानिक साधनों, बढ़िया खादों आदि के बीसियों प्रयोगों के बावजूद भी भारतीय आम-जैसा स्वादिष्ट फल पैदा नहीं किया जा सका। यदि जमीन से पैदावार ही एकमात्र कसौटी होती तो हम आम का उदाहरण बता कर आसानी से यह कह सकते कि हिन्दुस्तान का माली और सब मुल्कों से चतुर है, लेकिन यह स्पष्ट है कि भारत में आम की अच्छी पैदावार का कारण माली की चतुराई नहीं, भारत की भूमि और जलवायु है। इतना दूर जाने की जरूरत नहीं, भारत के ही एक प्रान्त का जलवायु दूसरे प्रान्त के जलवायु से मेल नहीं खाता, इसलिए प्रान्तों की पैदावार और फसल में भारी अन्तर पड़ता है। बम्बई में तीन इंच से नीचे की जमीन कंकरीली और पथरीली है, लेकिन पंजाब व युक्त प्रान्त की जमीन पानी की सतह तक अच्छी पाई जाती है। युक्त प्रान्त व पंजाब दोनों प्रान्तों में बहुत बड़े-बड़े भूमिखण्ड हैं, जो शोरे से भरे हुए हैं और जहाँ घास की एक पत्ती तक पैदा नहीं हो सकती। सरकारी विशेषज्ञों ने अपनी पूरी जानकारी, वैज्ञानिक साधनों और तरीकों का उपयोग इस जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए किया, लेकिन उनकी सब कोशिशें बेकार रहीं। जहाँ थोड़ी-बहुत सफलता भी हुई है, वहाँ भी आमदनी की बजाय खर्च ज्यादा हुआ है। ऐसे स्थानों में भूमि ही कम उपज का एकमात्र कारण है। इसी तरह ऊँची-नीची जमीनें, पहाड़ी जमीनें और रेतीली जमीनें किसी भी तरह साधारण जमीन से ज्यादा पैदावार नहीं दे सकतीं।

जलवायु भी जमीन की तरह पैदावार पर भारी असर डालता है। पंजाब और युक्तप्रान्त में जलवायु के अन्तर के कारण ही बम्बई की अपेक्षा ज्वार की फसल बहुत कम पैदा होती है। बम्बई में हर

साल इसकी दो फसलें होती हैं, जबकि शेष प्रांतों में सिर्फ एक फ़सल होती है। जलवायु के कारण ही बंगाल जूट के लिए, पंजाब गेहूँ के लिए, और बिहार रुई के लिए प्रसिद्ध हैं। कृषि-विभाग के बीसियों प्रयत्न करने पर भी अन्य प्रांतों में उक्त फसलें उसी तरह की और उसी मात्रा में पैदा नहीं की जा सकीं। फलों का उदाहरण इस पर और भी ज्यादा रोशनी डालता है। भारत के दूसरे भागों में भारी कोशिशों के बावजूद भी नागपुर व सिलहट जैसा सन्तरा पैदा नहीं किया जा सका और न बम्बई व मद्रास का केले में मुकाबला किया जा सका।

किसान का सामर्थ्य—उसकी जानकारी व साधन-सम्पन्नता भी उपज पर काफ़ी प्रभाव डालती है। मध्य प्रान्त का एक किसान अपनी थोड़ी-सी जानकारी व थोड़ी सी पूँजी से उतनी पैदावार नहीं ले सकता, जितनी एक यूरोपियन प्लाण्टर अपनी विशेष जानकारी और विस्तृत साधना से ले लेगा। यदि एक किसान को ठीक समय बीज न मिले, वक्त पर बैलों की जोड़ी और मजदूरों का टोटा रहा, तो फसल पर इसका असर लाज़िमी तौर पर पड़ेगा। एक अनुभवी किसान बिलकुल नये किसान से हर हालत में ज्यादा पैदावार कर सकेगा।

इस संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट होगया कि उक्त तीनों वस्तुओं का पैदावार की कमी और बेशी पर काफ़ी असर पड़ता है। कुछ देशों में केवल पैदावार की तुलना से हम किसी परिणाम पर नहीं पहुँच सकते और न हम पैदावार बढ़ाने की संभावना पर विचार कर सकते हैं। दो देशों की पैदावार की मात्रा के संबंध में किन्हीं स्थिर परिणामों पर पहुँचने के लिए हमें उक्त तीन कारणों से उत्पन्न भेद भाव को पहले मिटा देना चाहिए।

भारतवर्ष और चीन तमाम दुनिया में सबसे पुराने देश हैं

कितना अधिक असर पड़ता है, यह बताने के लिए बहुत अधिक उदाहरण देने की जरूरत नहीं। हिन्दुस्तान मे आम की उपज और किसी भी देश से बहुत ज्यादा होती है। अन्य देशों में वैज्ञानिक साधनों, बढ़िया खाद आदि के बीसियों प्रयोगों के बावजूद भी भारतीय आम-जैसा स्वादिष्ट फल पैदा नहीं किया जा सका। यदि जमीन से पैदावार ही एक मात्र कसौटी होती तो हम आम का उदाहरण बता कर आसानी से यह कह सकते कि हिन्दुस्तान का माली और सब मुल्कों से चतुर है, लेकिन यह स्पष्ट है कि भारत में आम की अच्छी पैदावार का कारण माली की चतुराई नहीं, भारत की भूमि और जलवायु है। इतना दूर जाने की जरूरत नहीं, भारत के ही एक प्रान्त का जलवायु दूसरे प्रान्त के जलवायु से मेल नहीं खाता, इसलिए प्रान्तों की पैदावार और फसल में भारी अन्तर पड़ता है। बम्बई में तीन इंच से नीचे की जमीन कंकरीली और पथरीली है, लेकिन पंजाब व युक्त-प्रान्त की जमीन पानी की सतह तक अच्छी पाई जाती है। युक्त प्रान्त व पंजाब दोनों प्रान्तों में बहुत बड़े-बड़े भूमिखण्ड हैं, जो शोरे से भरे हुए हैं और जहाँ घास की एक पत्ती तक पैदा नहीं हो सकती। सरकारी विशेषज्ञों ने अपनी पूरी जानकारी, वैज्ञानिक साधनों और तरीकों का उपयोग इस जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए किया, लेकिन उनकी सब कोशिशें बेकार रहीं। जहाँ थोड़ी-बहुत सफलता भी हुई है, वहाँ भी आमदनी की बजाय खर्च ज्यादा हुआ है। ऐसे स्थानों में भूमि ही कम उपज का एकमात्र कारण है। इसी तरह ऊँची-नीची जमीनें पहाड़ी जमीनें और रेतीली जमीनें किसी भी तरह साधारण जमीन से ज्यादा पैदावार नहीं दे सकतीं।

जलवायु भी जमीन की तरह पैदावार पर भारी असर डालता है। पंजाब और युक्तप्रान्त में जलवायु के भेद के कारण ही बम्बई की अपेक्षा ज्वार की फसल बहुत कम पैदा होती है। बम्बई में हर

साल इसकी दो फ़सलें होती हैं, जबकि शेष प्रांतो मे सिर्फ एक फ़सल होती है। जलवायु के कारण ही बगाल जूट के लिए, पजाब गेहूँ के लिए, और बिहार रुई के लिए प्रसिद्ध हैं। कृपि-विभाग के बीसियों प्रयत्न करने पर भी अन्य प्रांतो में उक्त फसलें उसी तरह की और उसी मात्रा में पैदा नहीं की जा सकीं। फलों का उदाहरण इस पर और भी ज्यादा रोशनी डालता है। भारत के दूसरे भागो में भारी कोशिशों के बावजूद भी नागपुर व सिलहट जैसा सन्तरा पैदा नहीं किया जा सका और न बम्बई व मद्रास का केले में मुकाबला किया जा सका।

किसान का सामर्थ्य—उसकी जानकारी व साधन-सम्पन्नता भी उपज पर काफ़ी प्रभाव डालती है। मध्य प्रान्त का एक किसान अपनी थोड़ी-सी जानकारी व थोड़ी सी पूँजी से उतनी पैदावार नहीं ले सकता, जितनी एक यूरोपियन प्लाण्टर अपनी विशेष जानकारी और विस्तृत साधनों से ले लेगा। यदि एक किसान को ठीक समय बीज न मिले, वक्त पर बैलों की जोड़ी और मजदूरों का टोटा रहा, तो फ़सल पर इसका असर लाजिमी तौर पर पड़ेगा। एक अनुभवी किसान बिलकुल नये किसान से हर हालत में ज्यादा पैदावार कर सकेगा।

इस सक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट होगया कि उक्त तीनो वस्तुओं का पैदावार की कमी और बेशी पर काफ़ी असर पड़ता है। कुछ देशों में केवल पैदावार की तुलना से हम किसी परिणाम पर नहीं पहुँच सकते और न हम पैदावार बढ़ाने की सभावना पर विचार कर सकते हैं। दो देशों की पैदावार की मात्रा के सबध में किन्हीं स्थिर परिणामों पर पहुँचने के लिए हमें उक्त तीन कारणों से उत्पन्न भेद भाव को पहले मिटा देना चाहिए।

भारतवर्ष और चीन तमाम दुनिया में सबसे पुराने देश हैं

और वे अनादि काल से खेती करते आये हैं। इन दोनों देशों में बहुत युगों से खेती होती रही है और इसलिए इन दोनो देशों की भूमि में प्राकृतिक पोषक तत्त्व कम हो गये हैं। अन्य देशों मे, जहाँ अभी सभ्य जातियों ने अपनी बस्तियाँ बसाई हैं या अभी हाल ही में खेती शुरू हुई है, भूमि में वनस्पतियों के लिए पोषकतत्त्व अधिक मात्रा में हैं और इसलिए किसान को थोड़ी-सी भी मिहनत से ज्यादा पैदावार मिल जाती है। यही कारण है कि पजाब व बर्मा में, जहाँ कुछ साल पहले ही नहरी सिंचाई का प्रबन्ध होने से खेती होने लगी है, प्रति एकड़ पैदावार ज्यादा है। पजाब में गेहूँ एक दफा चारे के लिए काटी जाती है। पजाबी किसान का खेती का तरीका यू० पी० के किसान के तरीक़े से कहीं ज्यादा भद्दा और अवैज्ञानिक है। उसका हल मुश्किल से जमीन में दो इंच जाता है। वह कभी खाद की फ़िक्र नहीं करता, लेकिन इन सबके बावजूद भी वह ज्यादा पैदावार पाता है। इसका मुख्य कारण वह उपजाऊ भूमि है, जिसपर हाल ही में खेती शुरू हुई है। जो लोग भारत की पैदावार की तुलना आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, सयुक्तराष्ट्र अमेरिका की पैदावार से करते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि उन देशों की जमीनों पर हल चले हुए अभी एक भी सदी नहीं बीती और इसलिए यदि वहाँ ज्यादा पैदावार हो, तो आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

नये व पुराने देश

नीचे हम भारत और अन्य देशों की पैदावार का एक तुलनात्मक नक्शा देते हैं। लेकिन यह ख़याल रखना चाहिए कि भारत की पैदावार के आँकड़े बहुत विश्वसनीय नहीं हैं। पटवारी फ़सल को देखकर अनुमान से पैदावार लिख देते हैं। कभी फ़सल कटने पर बाक़ायदा पैदावार के आँकड़ों

उपज के तुलनात्मक आँकड़े

से इस अनुमान का समर्थन नहीं किया गया। इस सम्बन्ध में अनेक प्रयत्न किये गये, लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ। श्रीदत्त ने भी यह स्वीकार किया है कि सरकारी आँकड़ों का आधार केवल कल्पना है और इन्हें बिल्कुल ठीक नहीं माना जा सकता। फिर भी जो आँकड़े उपलब्ध हैं, उन्हीं का हमें अपने काम के लिए सहारा लेना होगा।

फसल की औसत पैदावार

	गेहूँ (बुशलो में)	दूसरे अनाज (बुशलों में)	जौ (बुशलों में)	चावल (पौण्डों में)
भारत	११४	१३९	१९२	८६३
कनाडा	१६६	४४३	२५४	—
स० रा० अमेरिका	११९	२७८	२८८	१०७६
मैक्सिको	५०	११८	—	६८२
फ्रांस	१३६	१७८	२५६	—
स्पेन	९९	२२२	२१२	३२७०
पुर्तगाल	१७२	—	११३	१२२२
रूस	१०१	१७४	१२८	—
अफ्रीका	१०९	—	१२३	—
आस्ट्रेलिया	९८	१९५	९.४	—

(एक बुशल = ३२ सेर, एक पौण्ड = ½ सेर)

यदि हम इस सूची को भी सही मान लें, तो यह साफ है कि भारत की उपज सब देशों से कम नहीं है। मैक्सिको में गेहूँ और चावल की उपज भारत से कम है। इसी तरह भारत में पुर्तगाल, यूनान, रूस, मोरक्को, अलजीरिया तथा अन्य अनेक देशों से गेहूँ की उपज कहीं ज्यादा होती है। इसका यह अर्थ

हुआ कि सरकारी और गैरसरकारी विद्वानों की यह धारणा गलत है कि भारत में प्रति एकड़ पैदावार सबसे कम है।

इस विषय पर विचार करते हुए हमें एक और आश्चर्यजनक बात मालूम होती है। वह यह कि भारत की अधिकतम उपज अन्य देशों की अधिकतम उपज से ज्यादा है, लेकिन औसत उपज दूसरे देशों की उपज से बहुत कम है। यदि हम इस सचाई के महत्त्व को समझ लें कि भारत में औसत उपज ही कम है, न कि अधिकतम उपज, तो हम इस समस्या को आसानी से समझ सकेंगे। जिस देश में अधिकतम उपज काफ़ी ऊँची हो और औसत उपज कम हो, वहाँ यह समझना चाहिए कि बोई जाने वाली फ़सल के लिए अच्छी ज़मीन और अनुकूल जलवायु की कमी है। यदि हालतें एक-सी होतीं, तो पैदावार भी एक-सी होती। शाही खेती कमीशन ने इस विषय पर विचार करते हुए पृ० ७५ पर लिखा है कि—"जो ज़मीन पहले-पहल बोई जाती है, उसमें उन ज़मीनों की अपेक्षा नत्रजन ज्यादा होता है, जो नत्रजन पाने के लिए सूर्य और प्राकृतिक स्थितियों पर ही निर्भर करती हैं। अगर उन ज़मीनों में खाद काफी न डाली जाय तो यह निश्चित-सा है कि उनका उपजाऊपन हर साल कम होता जायगा। इसके अलावा अगर देश की जनसंख्या बहुत बढ़ जावे और वह ज्यादातर खेती पर गुजारा करने लगे, तो यह भी निश्चित है कि ज्यादा बढ़ी हुई तादाद निकम्मी ज़मीनों पर खेती शुरू कर देगी, क्योंकि अच्छी ज़मीनों पर तो पहले से ही खेती हो रही होती है और इसका परिणाम होता है खेती की औसत उपज में कमी।"

कम उपज के कारण

ज़मीन पर भारी बोझ होने की वजह से सभी क़िस्म की निकम्मी ज़मीनों पर भी खेती बोनी पड़ती है। बम्बई प्रान्त में तीन इंच से गहरी अच्छी ज़मीन विरली ही मिलेगी। ३ इंच से नीचे

वहाँ की जमीन पथरीली और ककरीली है। दूसरे प्रान्तों में भी वजड, ऊसर, पथरीली, रेतीली आदि निकम्मी ज़मीनें बोई जाती हैं और इनकी वजह से सारे प्रान्त की उपज की औसत बहुत गिर जाती है, भले ही उस प्रान्त की अच्छी जमीनों की पैदावार काफी ऊँची हो। भूमि एक ऐसा ईश्वरप्रदत्त पदार्थ है जिसे मनुष्य अपनी इच्छा से बढ़ा नहीं सकता। जब जमीन पर भार बढ़ जाता है, तब निकम्मी निकम्मी जमीनों पर भी खेती होने लगती है। इस के परिणाम-स्वरूप सारे देश की औसत पैदावार घट जाती ही है। भारत की औसत उपज की कमी का एक प्रधान कारण यही भूमि पर असह्य भार है।

औसत पैदावार में कमी का एक और भी महत्त्व-पूर्ण कारण है। हिन्दुस्तान में हरेक किसान के पास मुश्किल से दो एकड़ औसत जमीन है। इसलिए वह इस थोड़े-से टुकड़े में ज्यादा-से-ज्यादा फ़सलें बोने की कोशिश करता है। जब वर्षा नहीं होती या हवा में काफी नमी नहीं होती, तब किसान को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी खेती बोने का खतरा उठाना पड़ता है। किसान के सामने दो मार्ग होते हैं, या तो वह ऐसे टुकड़े में फसल बिलकुल ही न बोवे, जहाँ पर्याप्त नमी नहीं है, या फिर वह भविष्य में वर्षा की आशा से बो देवे। भारतीय किसान अपनी या अपने बैलों की मेहनत का हिसाब नहीं लगाता, क्योंकि बैलों के लिए उसके पास दूसरा कोई काम ही नहीं। इसलिए वह फसल बोने का ही निश्चय करता है। इस तरह ऐसी भी बहुत-सी जमीन बो दी जाती है, जो हरेक किसान के पास कुछ ज्यादा जमीन होने की हालत में कभी न बोई जाती। इसी प्रकार दो फसलें बोने की वजह से भी औसत पैदावार कम हो जाती है।

पैदावार में कमी का एक तीसरा भी कारण है। हिन्दुस्तान में नहर या कुएँ से सिंचाई की सुविधा सिर्फ १६ फीसदी जमीनों को

प्राप्त है। बाकी ८४ फीसदी जमीनों के लिए सिंचाई की कोई व्यवस्था नहीं है। सिंचाई वाली जमीनों की पैदावार सूखी जमीनों की पैदावार से आमतौर पर ५० फीसदी ज्यादा होती है। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार युक्तप्रान्त में सूखी जमीन से १९२६-२७ में ८५० पौण्ड प्रति एकड़ गेहूँ पैदा हुए, जबकि सिंचाई वाली जमीन से १२५० पौण्ड गेहूँ तैयार हुए। इसी तरह इसी साल में पंजाब की सूखी और सिंचाई वाली जमीनोंमें क्रमशः ५७६ और ९९७ पौण्ड प्रति एकड़ पैदावार हुई। युक्तप्रान्त व पंजाब में सूखी जमीन से क्रमशः ९०० और ६२६ पौण्ड जौ पैदा हुए, जबकि सिंचाई वाली जमीन से १३५० और १००४ पौण्ड जौ की उपज हुई। इसलिए हम यह कल्पना बहुत आसानी से कर सकते हैं कि यदि तमाम खेती-भूमि के लिए सिंचाई की व्यवस्था होती, तो औसत उपज भी ४० फीसदी बढ़ जाती। जिन प्रदेशों में नहरें हैं भी, वहाँ भी पानी की कमी से खेती को पर्याप्त पानी नहीं मिलता। इन कारणों से स्पष्ट है कि यदि भारत में औसत उपज कम है, तो इसकी जिम्मेवारी किसान पर नहीं डालनी चाहिए। यह कमी उसकी ताकत से बाहर की बात है।

बिना लाभ के ज्यादा पैदावार नहीं चाहिए

खेती की पैदावार बढ़ने के साथ किसान की गरीबी खतम हो जायगी, यह दलील भी बिलकुल गलत है। पैदावार की वृद्धि का किसान की गरीबी से कोई ताल्लुक नहीं है। पैदावार की वृद्धि का यह अर्थ कभी नहीं निकलता कि किसान के नफे में भी उसी हिसाब से बेशी हुई है। यह भी मुमकिन है कि पैदावार का खर्च इतना बढ़ जाय कि बढ़ी हुई उपज की आमदनी से भी ज्यादा हो जाय और इस तरह किसान को लाभ की जगह नुक्सान उठाना पड़े। उपज में नहीं, नफे में वृद्धि का सम्बंध उसकी आर्थिक स्थिति से है। खेती जाँच-कमीशन (The Agricultural Tribunal of

Investigation) ने अपनी रिपोर्ट में ठीक ही लिखा है कि "खेती की समृद्धि का अर्थ किसानों की खुशहाली है न कि एकड़ो की खुशहाली।" (पृ० १५६)। जमीन या एकड़ों की खुशहाली और किसानों की खुशहाली दोनों एक चीज नहीं हैं। यह भी मुमकिन है कि बड़ी लागत लगाकर खूब पैदावार करने वाले किसान को कुछ नुकसान हो और कम खर्च करके थोडी पैदावार करने वाले किसान को नफा हो। कल्पना कीजिए कि एक किसान को फसल पर ३५) रु० खर्च करने के बाद १५ मन गेहूँ प्रति एकड मिलता है, जिसे ४५) रु० में वह बेच देता है। यदि वह ५०) रु० और खर्च करके १५ मन ज्यादा गेहूँ की पैदावार करे और ६०) रु० में बेच दे तो उसे ५) रु० प्रति एकड़ अपनी जेब से भरने पड़ेंगे। क्रमिक ह्रास (Diminishing return) का नियम खेती पर ही सबसे अधिक लागू होता है। फिर यह भी मुमकिन है कि सारे देश में बढ़ी हुई पैदावार अनाज की क़ीमत को भी कम कर दे, हालाँकि ऊपर के उदाहरण में हम ने इसे ख़याल में नहीं रक्खा। ज्यादा-से-ज्यादा पैदावार करने की सलाह देने के बजाय किसान को यह सलाह देनी चाहिए कि वह इतना पैदा करे कि कम-से-कम खर्च कर वह ज्यादा-से-ज्यादा नफा कमा सके। यह सचाई केवल भारत पर ही नहीं, सभी देशों पर लागू होती है। इगलैंड को अपनी उन्नत और वैज्ञानिक खेती पर बहुत घमण्ड है, लेकिन उसे भी गेहूँ की खेती छोड कर घास की खेती अपनानी पड़ी, क्योंकि गेहूँ की खेती वहाँ नुक़सानदेह साबित हो रही थी। १८७३ में वहाँ १, ८१, ६०, ०७७ एकड़ों में खेती होती थी, लेकिन ५० साल बाद १६२३ में १, ७६, ६७३ एकडों की कमी हो गई। जाँच करने पर मालूम हुआ कि ज्यादा कमी गेहूँ की खेती में हुई है। यद्यपि इगलैंड में गेहूँ की पैदावार फी एकड़ भारत से कहीं ज्यादा है, तो भी वह अँग्रेज किसान को नफे का

सौदा मालूम नहीं होता और इसलिए उसने गेहूँ की खेती छोड़ कर अपनी जमीनों को चरागाह बना दिया है। इंगलैंड में जो योजना सफल नहीं हुई, वह भारत मे भी सफल नहीं हो सकती।

तमाम देश में किसी एक वस्तु की अत्यधिक उत्पत्ति उस वस्तु के दाम इतने कम कर देती है कि उसकी खेती लाभप्रद होने के बजाय हानिप्रद होने लग जाती है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में एक साल ३२ करोड़ बुशल आलू पैदा हुए, उस समय आलू की क़ीमत १ डालर ८० सैन्ट फी बुशल थी, लेकिन जिस साल आलू की पैदावार ४४ करोड़ ६० लाख बुशल हुई, उस साल आलू की क़ीमत भी गिरकर ८० सैन्ट फ़ी बुशल रह गई। अर्थात् पहले साल कुल पैदावार की कीमत ५, ७ ६, ००, ०००, डालर थी, लेकिन दूसरे साल ज्यादा पैदावार की कुल क़ीमत सिर्फ ३, ५२, ००, ००० डालर हो गई।

इसका अर्थ यह हुआ कि पैदावार थोड़ी होने पर भी किसान की जेब में पैसे ज्यादा पहुँचे। भारत में भी सरकार ने इस सचाई को अनुभव किया है और जगह-जगह खेती पर पाबन्दी की सूचनाएँ दी जाने लगी हैं। १६३२ में गन्ने की पैदावार युक्त-प्रान्त में बहुत अधिक होने पर गुड़ की कीमत ४) रुपया प्रति मन से गिरकर १ रुपया १० आना मन, जितनी पहले कभी नहीं हुई थी, हो गई। हालत और भी खराब हो जाती, यदि सरकार विदेशी चीनी पर भारी तटकर न लगा देती। इसी कारण बंगाल के किसानों को जूट की खेती कम करने की सलाह दी गई कि ज्यादा पैदावार से जूट के दाम बेहद गिर रहे थे। इंगलैंड के खेती व मछली-विभाग की रिपोर्ट ने भी अत्यधिक उत्पत्ति से मूल्य में कमी की सचाई को स्वीकार करते हुए लिखा है कि "हिसाब लगाया गया है कि ६० लाख गाँठ रुई की फ़सल में १३० लाख गाँठ फ़सल की बजाय किसान को ज्यादा पैसे मिलते हैं। इसी तरह ७००० लाख

कुशल गेहूँ की फसल में १०००० लाख कुशल गेहूँ की फसल की बजाय किसान ज्यादा कमाता है। ज्यादा पैदा करना हमेशा ही फायदेमन्द साबित नहीं होता। अखबारों से हमें समय-समय पर मालूम होता रहता है कि कुछ देशों में गेहूँ और रुई की फसलें इसलिए जला दी जाती हैं कि दाम बहुत न गिर जावें। इसलिए यह स्पष्ट है कि किसानों के हितचिन्तकों का आन्दोलन ज्यादा-से ज्यादा पैदा करना न होकर सिर्फ वही वस्तु पैदा करना होना चाहिए, जिसमें ज्यादा-से-ज्यादा नफा हो।

हिन्दुस्तान में खेती के जो बाबा आदम के तरीके चालू हैं, उनके सम्बन्ध में हमारा विश्वास है कि उन्नति जरूर हो सकती है, लेकिन फिर भी हमारी यह निश्चित सम्मति है कि भारतीय किसान न तो मूर्ख है, न जाहिल, जैसाकि उसे बार-बार प्रकट किया जाता है। हम यह बिना किसी सकोच के कह सकते हैं कि वह अपना काम बखूबी जानता है। यह ठीक है कि उसने साइंस के तौर पर बाकायदा किसी स्कूल या कालिज मे खेती का ज्ञान प्राप्त नहीं किया और न उसने किसी विदेश में खेती के आधुनिक विज्ञान का अनुभव प्राप्त किया है, लेकिन फिर भी उसके पीछे सदियों और पीढियों का अनुभव है, जिसके कारण वह खेती के बारे मे काफी जानकारी रखता है। उसके तरीके भी वैज्ञानिक आधार पर स्थित हैं। हिन्दुस्तानी खेती पर जे० मौलिसन ने अपनी राय देते हुए लिखा है कि "इस प्रान्त का किसान जिस सफाई, जिस पूर्णता और जिस नफे के साथ खेती करता है, उससे ज्यादा अच्छी खेती ससार के किसी भाग का भी बढ़िया-से बढ़िया किसान नहीं कर सकता। मैं यह जान-बूझ कर लिख रहा हूँ और इसका प्रत्येक अक्षर साबित कर सकता हूँ।" शाही खेती कमीशन की भी इस विषय पर यही राय है। उस रिपोर्ट के

खेती के पुराने तरीकों की निन्दा

बहुत से उद्धरणों में से दो-तीन ही काफी होंगे। "यह सभी जानते हैं कि बहुत से स्थानों में खेती का तरीक़ा बहुत अच्छा है। उदाहरण के तौर पर डेल्टा में चावल की खेती पूर्णता तक पहुँच गई है। खेती-सम्बन्धी बहुत-सी कहावतों में गजब की सचाई है, जिसे कोई भी वैज्ञानिक शोध ग़लत नहीं साबित कर सकी। पहाड़ी इलाकों के कोठे, कुओं व तालाबों से सिंचाई के कई तरीक़े, झरनों से खेती तक बनाई गई बिलकुल ठीक नालियाँ, जमीन के सुधार की पद्धतियाँ किसानों की चतुरता, समझदारी, धैर्य, और मेहनत का परिचय देती हैं। यह ठीक है कि इन सबका प्रयोग छोटे-छोटे क्षेत्रों में ही होता है, लेकिन इससे इनका महत्त्व कम नहीं हो जाता। सरकार की बड़ी-बड़ी योजनाओं के बनाते हुए इनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। जिन हालतों में साधारण किसान काम करता है, उन्हीं हालतों में सरकारी विशेषज्ञों के लिए सुधार के परामर्श देना कोई आसान काम नहीं है।" (पृ॰१४) "गुजरात का किसान संसार के किसी भी किसान जितना योग्य है। मद्रास का किसान बहुत कठोर परिश्रमी और धैर्यवान है।" (परिशिष्ट पृ॰ १२०) "दक्षिण के जिलों में खेती बिना सिंचाई का एक बहुत सुन्दर तरीका है। जहाँ वर्षा बहुत कम और अनिश्चित होती है और कुँओं से भी सिंचाई सम्भव नहीं है, वहाँ सब फसलें कुछ गहरी बोई जाती हैं और जमीन की [illegible] को सुरक्षित रखने [illegible] तौर पर कोशिश की जाती [illegible] पाँच या [illegible] छः या ज्यादा बैलों की जोड़ि[illegible] जाता [illegible] कि गैरजरूरी घास बाहर आ[illegible] में नष्ट (वही पृ॰ [illegible]) [illegible] हँसी उड़[illegible] हल के [illegible] में [illegible] "हमारा [illegible] भूत [illegible]

खासतौर पर पसन्द करता है। वह गरीबी की वजह से अलग-अलग औजार नहीं खरीद सकता। इसलिए उसका हल उसकी जरूरतों को पूरा करने के खयाल से बहुत उपयोगी औजार है। पश्चिमी अर्थों में देसी हल भले ही जमीन खोदता न हो, लेकिन यह जोतता जरूर है। यह ठीक है कि भारत के खेतों में उलट-पलट करने या खोदने वाले हल से लाभ होगा, लेकिन उससे भी ज्यादा जरूरत जमीन में नमी या तरी रखने की है। इसलिए यदि अपनी गरीबी के कारण हिन्दुस्तान का किसान कई औजार नहीं खरीद सकता, उसके लिए अकेला हल अधिक उपयोगी है, जो जमीन को जोत तो सकता है, लेकिन बहुत गहरा खोदता नहीं है। गहरा खोदनेवाले हल के एक बार चलाने का कार्य देसी हल के कई बार चलाने से भी पूरा हो जाता है। मिस्र के भी फालहीन, जो बहुत अच्छे कृषक समझे जाते हैं हिन्दुस्तानी ढग के हल इस्तेमाल में लाते हैं।" इन उद्धरणों से पाठक समझ जायेंगे कि भारतीय किसान न तो अनुभव व जानकारी में किसी से कम है और न उसके तरीक़े अवैज्ञानिक हैं, भले ही वे पुराने हों। बड़ी-बड़ी तनख्वाहें लेने वाले सरकारी विशेषज्ञ भी अबतक कोई खास सुधार नहीं कर सके। खेती-कालिजों में शिक्षा पाने वाले ग्रेजुएट खेती को पेशे के तौर पर नहीं अपनाते। जिन ग्रेजुएटों ने शुरू में अपनाया भी है, वे भी सफल नहीं हुए और उन्होंने खेती छोड़ दी। यही इस बात का सबसे बड़ा सबूत है कि वैज्ञानिक तरीक़ों की माँग उपयोगी सिद्ध नहीं होगी। यदि किसी को यह विश्वास है कि वैज्ञानिक तरीक़ों से खेती में लाभ हो सकता है, तो उन्हें किसानों को गाली देना छोड कर स्वय खेती करके यह दिखाना चाहिए।

इसका यह मतलब नहीं कि हम उन्नति में विश्वास नहीं करते। उन्नति सभव है, लेकिन उससे लाभ इतना कम होगा कि

बहुत से उद्धरणों में से दो-तीन ही काफी होंगे। "यह सभी जानते हैं कि बहुत से स्थानों में खेती का तरीक़ा बहुत अच्छा है। उदाहरण के तौर पर डेल्टा में चावल की खेती पूर्णता तक पहुँच गई है। खेती-सम्बन्धी बहुत-सी कहावतों में गजब की सचाई है, जिसे कोई भी वैज्ञानिक शोध गलत नहीं साबित कर सकी। पहाड़ी इलाकों के कोठे, कुओं व तालाबों से सिंचाई के कई तरीके, झरनों से खेती तक बनाई गई बिलकुल ठीक नालियाँ, जमीन के सुधार की पद्धतियाँ किसानों की चतुरता, समझदारी, धैर्य, और मेहनत का परिचय देती हैं। यह ठीक है कि इन सबका प्रयोग छोटे-छोटे क्षेत्रों में ही होता है, लेकिन इससे इनका महत्त्व कम नहीं हो जाता। सरकार की बड़ी-बड़ी योजनाओं के बनाते हुए इनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। जिन हालतों में साधारण किसान काम करता है, उन्हीं हालतों में सरकारी विशेषज्ञों के लिए सुधार के परामर्श देना कोई आसान काम नहीं है।" (पृ०१४) "गुजरात का किसान संसार के किसी भी किसान जितना योग्य है। मद्रास का किसान बहुत कठोर परिश्रमी और धैर्यवान है।" (परिशिष्ट पृ० १२०) "दक्षिण के जिलों में खेती बिना सिंचाई का एक बहुत सुन्दर तरीका है। जहाँ वर्षा बहुत कम और अनिश्चित होती है और कुँओं से भी सिंचाई संभव नहीं है, वहाँ सब फसलें कुछ गहरी बोई जाती हैं और जमीन की नमी को सुरक्षित रखने की खास तौर पर कोशिश की जाती है। हर पाँचवें या चौथे साल छः या ज्यादा बैलों की जोड़ियों से हल चलाया जाता है, जिससे कि गैरजरूरी घास बाहर आकर धूप की गरमी से नष्ट हो जावे।" (वही पृ० २३७) बाबा आदम का हल कहकर जिस हल की हँसी उड़ाई जाती है, उस हल के बारे में उक्त रिपोर्ट में लिखा है — "हमारा विश्वास है कि जमीन में नमी को क़ायम रखने के मूलभूत सिद्धान्त के कारण ही हिन्दुस्तान का किसान अपने हल को

खासतौर पर पसन्द करता है। वह गरीबी की वजह से अलग-अलग औजार नहीं खरीद सकता। इसलिए उसका हल उसकी जरूरतों को पूरा करने के खयाल से बहुत उपयोगी औजार है। पश्चिमी अर्थों में देसी हल भले ही जमीन खोदता न हो, लेकिन यह जोतता जरूर है। यह ठीक है कि भारत के खेतों मे उलट पलट करने या खोदने वाले हल से लाभ होगा, लेकिन उससे भी ज्यादा जरूरत जमीन में नमी या तरी रखने की है। इसलिए यदि अपनी गरीबी के कारण हिन्दुस्तान का किसान कई औजार नहीं खरीद सकता, उसके लिए अकेला हल अधिक उपयोगी है, जो जमीन को जोत तो सकता है, लेकिन बहुत गहरा खोदता नहीं है। गहरा खोदनेवाले हल के एक बार चलाने का कार्य देसी हल के कई बार चलाने से भी पूरा हो जाता है। मिस्र के भी फ़ालहीन, जो बहुत अच्छे कृषक समझे जाते हैं हिन्दुस्तानी ढग के हल इस्तेमाल में लाते हैं।" इन उद्धरणों से पाठक समझ जायेंगे कि भारतीय किसान न तो अनुभव व जानकारी में किसी से कम है और न उसके तरीक़े अवैज्ञानिक हैं, भले ही वे पुराने हों। बडी-बडी तनख्वाहें लेने वाले सरकारी विशेषज्ञ भी अबतक कोई खास सुधार नहीं कर सके। खेती-कालिजों में शिक्षा पाने वाले ग्रेजुएट खेती को पेशे के तौर पर नहीं अपनाते। जिन ग्रेजुएटों ने शुरू में अपनाया भी है, वे भी सफल नहीं हुए और उन्होंने खेती छोड दी। यही इस बात का सबसे बडा सबूत है कि वैज्ञानिक तरीक़ों की माँग उपयोगी सिद्ध नहीं होगी। यदि किसी को यह विश्वास है कि वैज्ञानिक तरीक़ों से खेती में लाभ हो सकता है, तो उन्हें किसानों को गाली देना छोड कर स्वय खेती करके यह दिखाना चाहिए।

इसका यह मतलब नहीं कि हम उन्नति में विश्वास नहीं करते। उन्नति सभव है, लेकिन उससे लाभ इतना कम होगा कि

किसान की आर्थिक स्थिति पर खास असर नहीं पड़ेगा। फिर यदि कुछ लाभ हो भी, तो उसे पाने के लिए पहले इतना रुपया लगाना पड़ेगा, जो गरीब किसान की ताकत के बाहर है। किसान पैसा नहीं लगा सकता, यह गरीबी का परिणाम है न कि कारण। इसी तरह भारत की फी एकड़ कम उपज, यदि वह कम है, गरीबी का कारण नहीं, परिणाम है और ज्यादा उपज से भी किसान के अमीर होने की आशा नहीं की जा सकती।

: २ :

भूमि-विभाजन और जन-संख्या

हिन्दुस्तान की कम उपज का किसान की गरीबी से क्या सम्बन्ध है, इस पर हमने पिछले अध्याय में विचार किया है और यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि हिन्दुस्तान में औसत कम उपज किसान की गरीबी का कारण नहीं। इसी तरह किसान की गरीबी के जो दूसरे कारण बताये जाते हैं, उनमें भी वस्तुतः बहुत सार नहीं है। इस अध्याय में हम उन में से दो कारणों—जमीन के दूर-दूर अलग अलग टुकड़ों में बाँट देने और जन संख्या में भारी वृद्धि के औचित्य पर संक्षेप से विचार करना चाहते हैं।

कहा जाता है कि भारत में एक किसान की जमीन अलग अलग दूर-दूर के टुकड़ों में बिखरी हुई होती है, इसलिए वह सब पर ठीक ध्यान नहीं दे सकता। एक साथ के टुकड़ों की खेती पर जहाँ खर्च कम होता है, वहाँ छोटे-छोटे टुकड़ों की हद-बन्दी में भी बहुत-सी जमीन चली जाती है, जिसपर यदि खेती होती, तो

जमीनों का एक साथ न होना

किसान की पैदावार जरूर बढ़ जाती।

इस दलील में थोड़ी-बहुत सचाई है, यह मानते हुए भी हम यह नहीं मान सकते कि किसान की गरीबी का यह प्रमुख कारण है। कितनी जमीन हद-बंदी में घिरी हुई है, इसके आँकड़े न होतेहुए भी यह कहा जा सकता है कि १ फीसदी से ज्यादा जमीन हद-बन्दी में नहीं घिरी हुई। अलग अलग टुकड़ों मे जमीन के बँटे होने के कारण जो थोडी-बहुत कठिनता होती है, या समय लगता है, उसका भी खास असर किसान की आर्थिक स्थिति पर नहीं पडता। हिन्दुस्तान के किसान के पास बहुत समय खाली रहता है। फिर भी यदि इसका ख़याल न करें, तो टुकडो में भूमि विभाजन से दो फीसदी से ज्यादा नुक़सान किसान को नहीं होता और इससे किसान की आर्थिक समस्या किसी तरह हल नहीं होती।

यदि हम इस समस्या पर कुछ गहरा विचार करें तो हमें मालूम होगा कि यह भूमिविभाजन स्वयं भी किसी और चीज का परिणाम है। भूमि पर भार इतना अधिक बढ़ गया है और लोग रोजी का एकमात्र साधन समझकर खेती की ओर इतनी ज्यादा मात्रा मे दौड रहे हैं कि जब पिता की मृत्यु पर जायदाद बटती है, उसके टुकडे बढते जाते हैं। इन टुकडों को एक करने में अनेक क्रियात्मक कठिनाइयाँ भी जायदाद के बटवारे के समय पैदा होती हैं। सारी जमीन एक-सी नहीं होती। कोई गाँव के पास होती है, कोई दूर। किसी जमीन पर पानी लगता है, किसी पर नहीं। इसलिए हरेक टुकडे मे से थोड़ा-थोडा प्रत्येक को लेना पडता है। यदि किसी तरह क़ानून बनाकर सब जमीनें इकट्ठी भी कर दी जायँ, तो फिर आगे उनके न बँटने की गारटी नहीं हो सकती। बडा भाई ही सारी जायदाद ले और शेष भाइयों को उसका मुआवजा दे, यह क़ानून भी जमीनों के बटवारे को नहीं

रोक सकता, क्योंकि बडा भाई मुआवजा देने के लिए कुछ-न-कुछ जमीन बेचेगा। जबतक वर्तमान जमींदारी-पद्धति चालू है, तब तक भी इस दिशा में प्रगति होनी सभव नहीं है। जमींदार को जमीन की उन्नति से कोई मतलब नहीं, उसे तो किसान से ज्यादा-से-ज्यादा खींचने से मतलब है। वह ज्यादा-से-ज्यादा लगान वसूल करने के लिए बढिया और नाकिस दोनों प्रकार की जमीनो को मिलाकर काश्तकार को देता है। फिर जबतक एक गाँव की पूरी मिलकियत एक जमींदार के हाथ में न हो, जमीनों का एकसाथ विभाजन असम्भव है।

पजाब में सरकार ने अलग-अलग टुकड़ों को एक करने की जो योजना बनाई है, उसमें जो सफलता हुई, उसके कुछ कारण हैं, लेकिन अन्य प्रान्तों में तो बिलकुल सफलता नहीं हुई। फिर पजाब में भी जो थोड़ी-बहुत सफलता हुई, वह बहुत खर्चीली है। वहाँ टुकड़ों को एक करने में १।≈) से ७।।≋) तक प्रति एकड़ तक खर्च हुआ है। यदि सारे भारत में अलग अलग टुकड़ों को एक करने का प्रयत्न किया जाय, तो ३३ करोड रुपया व्यय हो जायगा। इतनी भारी रकम सरकार कभी खर्च नहीं कर सकती। अगर किसी तरह यह भारी रक़म खर्च कर भी दी जाय, तो जो लाभ होगा वह खर्च के मुकाबले में बहुत थोड़ा होगा। भूमि का एकत्रीकरण किसान को बहुत-कम लाभप्रद होगा।

"रूरल इकॉनामी आफ इन्डिया" के लेखक श्री मुकर्जी ने अपनी पुस्तक के ३१ ३३ पृ० में यह बताया है कि अलग-अलग बिखरे हुए टुकड़ों की वजह से किसान को हानि ही नहीं होती, लाभ भी होता है। टुकड़ों को एकसाथ करने का परिणाम यह होगा कि किसान की भूमि गाँव से बहुत दूर हो जायगी। या तमाम गाँव के रहने वाले किसान बहुत दूर-दूर अपने अपने खेतों में बिखर जायँगे और गाँव की बस्ती खतम हो जायगी।

फिर भूमि के अलग अलग दूर-दूर के टुकड़ो में बटे होने के कारण किसान जुदा जुदा भूमि के अनुसार साल में अलग २ फसलें बो सकता है। गाँव के पास की जमीन पर उसे खाद अनायास मिल जाता है। कुछ दूर की जमीन पर कुएँ का या नहरी पानी मिल जाता है। ज्यादा दूर की ज़मीन पर उसे सिर्फ वर्षा पर निर्भर रहना पडता है। पास की जमीन पर वह ऐसी ही फसल बोयेगा जिसपर अधिक ध्यान रखने की जरूरत है। कभी एक जमीन की फसल खराब हो गई तो दूसरी जमीन से ही कुछ मिल जाता है। इस तरह दूर-दूर के टुकडे, बीमे की भाँति किसान को सहायता देते हैं।

हिन्दुस्तानी किसान की गरीबी का तीसरा कारण यह बताया जाता है कि यहाँ की जनसख्या बहुत तेज़ी से बढ़ रही है। यहाँ आबादी बढ रही है, यह मानते हुए भी इसे गरीबी का कारण नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह भी गरीबी का ही एक परिणाम है। अर्थशास्त्र का यह प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि गरीब श्रेणियों में जनसख्या का अनुपात अधिक होता है। यदि यह सिद्धान्त झूठा नहीं है तो भारत में भी जनसख्या की वृद्धि गरीबी का कारण न होकर यहाँ की गरीबी का ही परिणाम है। इसलिए यदि गरीबी दूर हो जायगी, तो जन सँख्या की अधिक वृद्धि भी स्वय कम हो जायगी।

आबादी म वृद्धि

एक बात और भी। जनसख्या की वृद्धि केवल हिन्दुस्तान में ही तो नहीं हो रही है। यह सभी देशों में हो रही है और भारत से कम अनुपात में नही। यदि भारत मे और देशों से ज्यादा अनुपात में आबादी बढती होती, तभी इस कारण के औचित्य का समर्थन किया जा सकता था। १८७२ से लेकर इगलैण्ड की जनसख्या मे जो वृद्धि हुई, वह भारत की जनसख्या वृद्धि से बहुत अधिक हुई है। इगलैण्ड में १८६१

इगलैण्ड से तुलना

से १६०१ तक १२.१७ फ़ीसदी, १६०१ से १६११ तक १०.१७ फ़ीसदी और १६११ से १६२१ तक ४.०१ फ़ीसदी आबादी बढ़ी है। जबकि भारत में १८६१ से १६०१ तक सिर्फ २.४ फीसदी और १६०१ से १६२१ तक ७ फीसदी आबादी बढ़ी है। ये आँकड़े स्पष्ट बता रहे हैं कि भारत में जनसंख्या वृद्धि का अनुपात इंगलैण्ड से बहुत कम है। फिर पिछले ५० सालों में इंगलैण्ड से जो बहुत भारी संख्या उपनिवेशों में बसने चली गई है, उसे भी खयाल में रक्खा जाय, तो इंगलैण्ड की जनसंख्या-वृद्धि का अनुपात और भी बढ़ जायगा। इसलिए भारत को इस बारे में ज्यादा अपराधी नहीं ठहराया जा सकता। यदि इतनी आबादी बढ़ने से इंगलैण्ड गरीब नहीं हुआ तो भारत ही की गरीबी का कारण क्यों जनसंख्यावृद्धि बताया जा रहा है, हालाँकि भारत में कम अनुपात से आबादी बढ़ी है। फिर एक बात और। भारत तो कृषि प्रधान देश है। वह न सिर्फ अपने देशवासियों के लिए अन्न पैदा करता है, बल्कि बाहर भी अनाज भेजता है, जबकि इंगलैण्ड को अपनी भोजन संबंधी जरूरतें पूरी करने के लिए दूसरे देशों का मुँह देखना पड़ता है। तब ऐसा कौन-सा कारण है कि भूखे पेट की समस्या हिन्दुस्तान को ही तंग करती है, इंगलैण्ड को नहीं सताती? यदि जनसंख्या-वृद्धि ही भूखे पेट का कारण होती तो आज इंगलैण्ड की हालत भारत से भी कहीं ज्यादा खराब होती। कुछ सालों में यूरोप के अनेक देशों में सन्तानवृद्धि का जो प्रभावशाली आन्दोलन चला है, उसका भी परिणाम वहाँ गरीबी नहीं हुआ।

संख्यावृद्धि गरीबी का कारण नहीं

दरअसल एक परिवार की केवल सदस्य-संख्या उसकी गरीबी का कारण नहीं हो सकती। यह हो सकता है कि एक परिवार के चार सदस्य हों और वे सभी कमाते हों, जबकि दूसरे परिवार में सिर्फ दो ही सदस्य हों और वे दोनों बेकार

हों। इस हालत में पहला परिवार अधिकसख्यक होते हुए भी सम्पन्न होगा और दूसरा निर्धन। पहला परिवार किसी पाँचवें कमाने वाले मनुष्य का स्वागत करेगा और दूसरा परिवार एक छोटे-से बालक को भी पसन्द नहीं करेगा। यही हालत देशों की है। इग्लैण्ड तथा अन्य देशों के निवासियों को रोजगार आदि के जो साधन प्राप्त हैं, वही यदि भारत को मिले होते, तो वह ४० करोड प्राणियो तक का पेट पाल सकता था, लेकिन हिन्दुस्तान में बेकारी नामक राक्षसी जो ताण्डव खेल रही है, वह बहुत भयकर है। भारत-सरकार इसके सबध मे बहुत उदासीन है। जब कभी किफायतशारी करनी होती है, तभी गरीब हिन्दुस्तानियो के गले पर उसका कुल्हाडा चलता है और भारी भारी तनख्वाह पाने वाले अग्रेज अफसर साफ बच जाते हैं। इगलैण्ड में अगर सरकार ऐसा कदम उठाती तो एकदिन भी न टिकने पाती। भारत सरकार को तो देश में बढती हुई बेकारी की चिन्ता ही नहीं। उसने तो भारतीयों के सैंकड़ों बार अनुरोध करने पर भी अभी तक बेकारी के आँकडे तक तैयार नहीं कराये। भीषण बेरोजगारी की वजह से ही भारतीयों की बडी भारी सख्या खेती की ओर लगी हुई है। १९३१ की जन-सख्या के अनुसार भारत में गाँवो और शहरों की आबादी क्रमश ३१ ३८६ और ३ ८९ करोड अर्थात् ८९ और ११ फीसदी थी, जबकि इंग्लैण्ड में यह अनुपात २० और ८०, जर्मनी में ३८ और ६२, सयुक्तराष्ट्र अमेरिका में ४३ ८ और ५६ २ तथा जापान मे ४४ और ५६ था। १९३१ में कमाने वालों की कुल सख्या १५,२०,७१,२१३ थी, जिसमें से १०,३२,६४,८३९ लोग खेती या तत्सम्बन्धी कामों में लगे हुए थे। उद्योग धन्धों व खानों में काम करने वालों की सख्या सिर्फ १,५६,९७,६५३ थी।

से १६०१ तक १२ १७ फीसदी, १६०१ से १६११ तक १० १७ फी सदी और १६११ से १६२१ तक ४ ०१ फीसदी आबादी बढ़ी है। जबकि भारत में १८६१ से १६०१ तक सिर्फ २ ४ फीसदी और १६०१ से १६२१ तक ७ फीसदी आबादी बढ़ी है। ये आँकड़े स्पष्ट बता रहे हैं कि भारत में जनसंख्या वृद्धि का अनुपात इंगलैण्ड से बहुत कम है। फिर पिछले ५० सालों में इंगलैण्ड से जो बहुत भारी संख्या उपनिवेशों में बसने चली गई है, उसे भी ख़याल में रक्खा जाय, तो इंगलैण्ड की जनसंख्या-वृद्धि का अनुपात और भी बढ़ जायगा। इसलिए भारत को इस बारे में ज्यादा अपराधी नहीं ठहराया जा सकता। यदि इतनी आबादी बढ़ने से इंगलैण्ड ग़रीब नहीं हुआ तो भारत ही की ग़रीबी का कारण क्यों जनसंख्यावृद्धि बताया जा रहा है, हालाँकि भारत में कम अनुपात से आबादी बढ़ी है। फिर एक बात और। भारत तो कृषि प्रधान देश है। वह न सिर्फ अपने देशवासियों के लिए अन्न पैदा करता है, बल्कि बाहर भी अनाज भेजता है, जबकि इंगलैण्ड को अपनी भोजन संबंधी जरूरतें पूरी करने के लिए दूसरे देशों का मुख देखना पड़ता है। तब ऐसा कौन-सा कारण है कि भूखे पेट की समस्या हिन्दुस्तान को ही तंग करती है, इंगलैण्ड को नहीं सताती? यदि जनसंख्या-वृद्धि ही भूखे पेट का कारण होती तो आज इंगलैण्ड की हालत भारत से भी कहीं ज्यादा ख़राब होती। कुछ सालों से यूरोप के अनेक देशों में सन्तानवृद्धि का जो प्रभावशाली आन्दोलन चला है, उसका भी परिणाम वहाँ ग़रीबी नहीं हुआ।

दरअसल एक परिवार की केवल सदस्य संख्या उसकी ग़रीबी का कारण नहीं हो सकती। यह हो सकता है कि एक परिवार के चार सदस्य हों और वे सभी कमाते हों, जबकि दूसरे परिवार में सिर्फ दो ही सदस्य हों और वे दोनों बेकार

संख्यावृद्धि ग़रीबी का कारण नहीं

हों। इस हालत में पहला परिवार अधिकसख्यक होते हुए भी सम्पन्न होगा और दूसरा निर्धन। पहला परिवार किसी पाँचवें कमाने वाले सदस्य का स्वागत करेगा और दूसरा परिवार एक छोटे-से बालक को भी पसन्द नहीं करेगा। यही हालत देशों की है। इग्लैण्ड तथा अन्य देशों के निवासियों को रोजगार आदि के जो साधन प्राप्त हैं,वही यदि भारत को मिले होते, तो वह ४० करोड प्राणियो तक का पेट पाल सकता था, लेकिन हिन्दुस्तान में बेकारी नामक राक्षसी जो ताण्डव खेल रही है, वह बहुत भयकर है। भारत-सरकार इसके सबध में बहुत उदासीन है। जब कभी किफायतशारी करनी होती है, तभी गरीब हिन्दुस्तानियो के गले पर उसका कुल्हाड़ा चलता है और भारी भारी तनख्वाह पाने वाले अग्रेज अफसर साफ बच जाते हैं। इगलैण्ड में अगर सरकार ऐसा कदम उठाती तो एकदिन भी न टिकने पाती। भारत सरकार को तो देश में बढती हुई बेकारी की चिन्ता ही नहीं। उसने तो भारतीयों के सैंकड़ों बार अनुरोध करने पर भी अभी तक बेकारी के आँकडे तक तैयार नहीं कराये। भीषण बेरोजगारी की वजह से ही भारतीयों की बडी भारी सख्या खेती की ओर लगी हुई है। १६३१ की जन-सख्या के अनुसार भारत में गाँवों और शहरों की आबादी क्रमश ३१ ३८६ और ३ ८६ करोड अर्थात ८६ और ११ फीसदी थी, जबकि इग्लैण्ड में यह अनुपात २० और ८०, जर्मनी में ३८ और ६२, सयुक्तराष्ट्र अमेरिका में ४३ ८ और ५६ २ तथा जापान में ४८ और ५६ था। १६३१ में कमाने वालों की कुल सख्या १५,२०,७१,२१३ थी, जिसमें से १०,३२,६८,८३६ लोग खेती या तत्सम्बन्धी कामों में लगे हुए थे। उद्योग धन्धों व खानों मे काम करने वालों की सख्या सिर्फ १,५६,६७,६५३ थी।

अन्य देशों से तुलना

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय (सर) ने अपनी पुस्तक "पॉवर्टी प्रॉब्लेम इन इण्डिया" में विभिन्न देशों की आबादी की घनता की नीचे लिखी तालिका दी है —

नाम देश	प्रति मील घनता
बेलजियम	५४०
इंग्लैण्ड	४६८
हालैण्ड	३६० ६
चीन	२८६
इटली	२६३ ६
जर्मनी	२३६ ७
भारत	२२६
फ्रांस	१८७ ८
स्पेन	८०
टर्की साम्राज्य	२१
संयुक्तराष्ट्र अमेरिका	१७ ६
रूस	१३

ऊपर लिखी तालिका से स्पष्ट होगया होगा कि भारत की जनसंख्या की घनता ऊंची तो है, लेकिन बहुत अधिक ऊंची नहीं। अनेक यूरोपियन देशों में कहीं ज्यादा घनी आबादी है। फिर पिछले सालों में तो प्रायः सभी यूरोपियन देशों में जनसंख्या घटाने का जो भारी आन्दोलन चल रहा है, उससे तो वहाँ की आबादी बहुत ही घट गई है। जापान एक बहुत छोटा-सा देश है, जहाँ भूकम्प आदि से आबादी कम होती रहती है। उसका क्षेत्रफल और आबादी क्रमशः १,४२,००० वर्गमील और ५,५६,६१,१४० है, जबकि पंजाब का क्षेत्रफल और आबादी क्रमशः १,३६,९ ५ वर्गमील और आबादी २५,८५,०२४ है। ऐसा क करीब-करीब

बराबर होते हुए भी जापान पंजाब से ७॥ गुना आबादी का पालन करता है और वह भी मजे में । याद रहे कि जापान अधिकतया पहाड़ों से घिरा है और खेती के योग्य धरती का रक़बा पंजाब से बहुत कम है। जापान की आर्थिक स्थिति पंजाब से बहुत अच्छी है।

निम्नलिखित कुछ आँकड़े भी इस बात को पुष्ट करते हैं कि भारत की जन-संख्या-वृद्धि अन्य देशों की अपेक्षा ज्यादा भयंकर समस्या नहीं है। १९२१ से १९३० तक के दस सालों में इंग्लैण्ड में औसत मृत्यु-संख्या १२.५ फी हजार थी। फ्रांस में १६.३, जर्मनी में ११.१, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में ११.३, जापान में १८.१७ थी, लेकिन बदकिस्मती से भारत में २४.५ थी। १९३१ की जनसंख्या के अनुसार ब्रिटिश भारत में आदमी की औसत उम्र सिर्फ २६.७ साल थी, जबकि इंग्लैण्ड में ५७.६, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में ५६.४, जर्मनी में ५९.४, फ्रांस में ५०.५, और जापान में ४४.५ थी।

भारत की आबादी कम करने का यह उपाय भी ठीक नहीं कि भारतीयों को अन्य देशोंमें बसाया जाय। जितने भारतीय दूसरे देशों में जाकर बस गये हैं, उन्हींकी हालत बहुत खराब है। पद पद पर उनका अपमान होता रहता है। जिसकी अपने घर या अपने देश में ही इज्जत नहीं होती, उसका बाहर भी मान नहीं होता। भारत का दरवाजा सब देशों के लिए खुला है, लेकिन उस के लिए सब देशों के दरवाजे बन्द हैं। भारतीय तो अपने घर में ही विदेशी हैं, फिर दूसरे देशों में उन्हें कौन अपनायेगा?

वर्षा की अनिश्चितता

नियमित रूप से होने वाली वर्षा को भी किसान का समृद्धि और अनियमित या कम वर्षा को किसान की गरीबी का कारण बनाया जाता है। यदि वर्षा ठीक समय पर और उचित मात्रा में बरस गई, तो किसान खुशहाल हो जाता है और यदि वर्षा ठीक समय पर न हुई, या कम हुई तो किसान पर मुसीबत का पहाड़ टूट जाता है। यह हिसाब लगाया गया है कि ५ सालों में एक साल औसत अच्छी वर्षा पड़ती है। बाकी ४ साल उसे अपनी पुरानी कमाई पर या कर्ज लेकर गुजारा करना पड़ता है। एक साल की अच्छी फसल से किसान ५ साल तक गुजारा नहीं कर सकता। यदि वरुण देवता प्रसन्न हैं तो किसान की खुशी का ठिकाना नहीं और यदि देवता अप्रसन्न हैं, तो किसान के दुःखों का अन्त नहीं। अभी तक विज्ञान वर्षा के नियंत्रण को अपने हाथ में लेने में समर्थ नहीं हुआ। इसलिये भारत के किसान की आर्थिक स्थिति मनुष्य के नियंत्रण से बाहर है। प्रान्तीय और केन्द्रीय असेम्बलियों में अर्थ सदस्य हमेशा अपने बजट को 'मौनसून का बजट' कहा करते हैं। यदि ठीक समय पर वर्षा हो गई तो, वसूली आशाजनक हो जाती है। यदि वर्षा ठीक समय पर न हुई तो बजट भी घाटे का हो जाता है। रेल, डाक व तार, व्यापार, आयात, निर्यात सभी विभाग किसान पर आश्रित हैं और किसान का (स्वयं) आधार वर्षा है।

ऊपर से यह दलील दमन में बहुत जोरदार दीखती है कि किसान की समृद्धि वर्षा पर निर्भर है, लेकिन कुछ गहरा सोचने सोचने पर भी इस दलील की कमजोरी सामने आ जायगी। सभी इलाज हैं भी अन्य अनेक कलाओं की तरह से एक कला

है, जिसमें मनुष्य विभिन्न विपरीत अवस्थाओं पर अपनी चतुरता से विजय पाता है। वह जमीन पर बीज फेंक कर राम भरोसे नहीं बैठ जाता। वह हल चलाता है, जमीन में तरी क़ायम रखने की कोशिश करता है, उचित खाद देता है और जमीन को सींचता है। जब घास पैदा हो जाती है, उसे एक-एक करके उखाड़ता है, खेती पर धूप रोकने वाले वृक्ष को वह काट देता है। वह पद पद पर प्रकृति से सग्राम करता और ज्यादा-से ज्यादा पैदावार करने के लिए मिहनत करता है। वह हर एक पौदे के बारे में जानकारी रखने की कोशिश करता है और विज्ञान की सहायता लेता है। वह कृत्रिम गरमी और सरदी द्वारा जल-वायु के असर तक को भी पलटने का यत्न करता है। अन्य देशों में भी प्रकृति—महीनों तक पड़ने वाली भारी बर्फ़ और भयकर गर्मी इत्यादि चीजें फ़सल पर पूरा असर डालती हैं। इसी तरह भारत में वर्षा की कमी भी एक ऐसी बाधा है, जिसे मनुष्य अपनी चतुरता से दूर कर सकता है।

हर एक हिन्दुस्तानी कृत्रिम सिंचाई की कला को जानता है। नहर, तालाब या कुँए से सिंचाई की प्रथा यहा अनादि काल से चली आई है। यदि अफ्रीका जैसे गरम मुल्क में कुओं से सिचाई की व्यवस्था कर जमीन में नमी कायम रक्खी जा सकती है, तो भारत में क्यो नहीं ? मद्रास में ऐसे कुए पाये गये हैं, जिनसे एक मिनट मे ४०० गैलन पानी स्वय उबल कर धरती मे ऊँचा उठ जाता है। ऐसे कुँए शेप प्रान्तों में भी स्यात खोदे जा सकें। एक सदी भी नहीं बीती कि पजाब खेती के खयाल से बहुत पिछड़ा हुआ प्रान्त था, लेकिन सरकारी कोशिशों और नहर का जाल सा बिछाने के बाद आज वह सब प्रान्तों से आगे बढ गया है। मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? इस तरह मौनसून को भी किसान की गरीबी का कारण नहीं कहा जा सकता। यदि कुछ कहा जा सकता है, तो सिंचाई के तरीकों की ओर से सरकार की

भयकर उदासीनता को लोप दिया जा सकता है।

हिन्दुस्तान बड़ी-बड़ी नदियों का देश है। यहाँ आसानी से नहरों का जाल बिछाया जा सकता है। भारतवर्ष में जमीन के नीचे पानी के सोते बहते हैं, जहाँ से ट्यूब-वैलों* द्वारा भी जमीन से पानी सिंचाई के लिये निकाला जा सकता है। भारत में औसत वर्षा ३७ इंच होती है, जो फसल पकने के लिये काफी है, लेकिन हम अपने अज्ञान और अपनी साधनहीनता से उसका उपयोग नहीं करते। सिंचाई कमीशन रिपोर्ट के अनुसार वर्षा-जल का ३५ फीसदी पानी समुद्र में चला जाता है। यदि यह पानी भी सिंचाई के इस्तेमाल में लाया जा सके, तो बहुत-कुछ लाभ हो जाय, लेकिन बदकिस्मती से अभी तक सिर्फ १६ फीसदी खेतों ही में सिंचाई की व्यवस्था हो सकी है, शेष ८४ फीसदी खेत रामभरोसे रहते हैं। यह भी कहा जाता है कि बड़े-बड़े जंगल कटने से वर्षा कम होने लगी है। यदि यह सच हो तो सरकार को इधर भी ध्यान देना चाहिये।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि मौनसून की कमी से भारतीय किसान गरीब नहीं होता, प्रत्युत उस कमी का प्रतिकार करने की शक्ति न होने के कारण उसकी आमदनी कम हो गई है।

---

*हमें प्रसन्नता है कि हमारे लिखने के पश्चात् संयुक्तप्रांत में ट्यूब वैल लगाने आरम्भ किये गये हैं और अब उनसे लाभ उठाया जाता है। —लेखक।

४ :

किसान की फिजूलखर्ची और भारी सूद-दर

किसानों की गरीबी के कारणों पर रोशनी डालते हुए अनेक अर्थ शास्त्रियों ने किसानों की फिजूलखर्ची और लापरवाही को भी एक कारण माना है। उनका कहना है कि किसान शादी व दूसरे त्यौहारों पर अपनी ताकत से ज्यादा खर्च करता है और

किसानों की फिजूलखर्ची

इसके लिए वह भारी सूद पर कर्ज लेता है। यह सूद बढ़ते-बढ़ते उस पर असह्य बोझा होजाता है। यह बहुत दुःख की बात है कि किसानों के निकट सम्पर्क मे आने, उनके स्वभाव और उनकी परिस्थितियों को समझने की कोशिश किये बिना अधिकांश अर्थ शास्त्री उनके सम्बन्ध में लिखते हैं। वस्तुत यह अनधिकार चर्चा है। हरएक मनुष्य अपनी चारों ओर की परिस्थितियों से बाधित होकर काम करता है। भारतीय किसान भी इसका अपवादनहीं है। पढ़े लिखे लोग व्यर्थ के खितावों या आनरेरी आफिसों को लेने के लिये या म्यूनिसिपल चुनाव लड़ने के लिये हजारों रुपया पानी की तरह बहा देते हैं। उन्हें कोई फिजूलखर्च नहीं कहता लेकिन गरीब पर सब अपनी जोर अजमाई करते हैं और उसकी आलोचना करने का अपने को अधिकारी मान लेते हैं।

किसान का समस्त जीवन लगातार नीरसता और शुष्कता में बीतता है। बहुत सवेरे से वह रात तक कठोर नीरस परिश्रम

स्वाभाविक है

करता है। रातें उसे खेत पर गुजार देनी पड़ती हैं। वह बड़े-बड़े शहरों की हलचलों से अलग रहता है। दुनिया की कोई खबर उसे तभी मालूम होती है, जब किसी की मार्फत पुराने अखबार का कोई टुकड़ा गाँव में पहुँच जाता है। सिनेमा, थियेटर या किसी और सार्वजनिक मनोरंजन से वह

कोसों दूर है। बहुत कम बार उसे पढ़े लिखे लोगों के व्याख्यान सुनने का मौका मिलता है। उसकी जिन्दगी में कोई नई दिलचस्पी नहीं, नई तबदीली नहीं आती। सारी जिन्दगी एक ही ढंग से मिहनत करते करते बीत जाती है। यदि कभी भाग्य से कोई विवाह या दूसरा त्योहार आकर उसकी शुष्कता और नीरसता को भंग करता है, तो यह स्वाभाविक ही है कि वह खूब खुश हो और अपनी ताकत से बाहर भी कुछ खर्च कर दे। जीवन भर में एक-दो बार आने वाले शुभ अवसर परिवार में महत्वपूर्ण माने ही जाते हैं। ऐसे मौकों पर रिश्तेदारों व मित्रों को भोजन कराने के नाम से इकट्ठा करना और खुशी मनाना असाधारण और अस्वाभाविक बात नहीं है। अपनी सामर्थ्य से बाहर खर्च नहीं करना चाहिए, यह मानते हुए भी हम किसानों को, जिनका सारा जीवन शुष्क और नीरस बीत जाता है, ऐसे मौकों पर थोड़ा-बहुत पैसे ज्यादा खर्च करने के लिए दोष नहीं दे सकते। दर असल किसानों की कठोर आलोचना करना उन्हें कतई शोभा नहीं देता, जो स्वयं उनके मामले में कोई दिलचस्पी नहीं लेते। क्या ऐसे मौकों पर शिक्षित और नामधारी सभ्य लोग किसानों के सामने इसमें कुछ अच्छा आदर्श रखते हैं ? क्या ऐसे लोग कभी थोड़ा सा कष्ट उठाकर किसानों के घर जाते हैं और उन्हें कोई सलाह देने की कोशिश करते हैं ?

फिजूलखर्ची की सामाजिक प्रथाएँ उन समृद्ध दिनों की अव शेष मात्र हैं, जब किसान का कोठार सदा अन्न से भरा रहता था और दूध-दही की उसे कमी न थी। खुशहाली के उन दिनों शादी आदि त्योहारों पर अपने बंधु-बान्धवों को निमंत्रण देना बड़ी खुशी की बात थी। उन दिनों उसका खर्च भी बहुत न होता था, क्योंकि उसका कोठार खाली न रहता था। आजकल जैसे शिक्षित लोग अपने आत्मीयों व मित्रों को पार्टी दिया करते हैं, उसी तरह गाँव

वाले भी ऐसे मौकों पर अपनी बिरादरी को बुलाकर जीवन की नीरसता को तोड़ने और नव उत्साह व नयी स्फूर्ति भरने की कोशिश करते थे। उन दिनों क्या कोई यह सोच भी सकता था कि धन धान्य व प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न देश, जहाँ ज़मीन खूब पैदावार देती थी, जहाँ के बैल तन्दुरुस्त व मोटे ताज़े थे, जहाँ गौ के दूध की नदियाँ बहती थीं, कभी इस शोचनीय स्थिति को प्राप्त हो जायगा कि उसके पुत्र आधे पेट और आधे नँगे सोयेंगे !!!

पुरानी आदतें जल्दी नहीं बदलतीं और यदि किसान अपनी खुशहाली की आदतें नहीं छोड़ सकता तो हमें उस पर बहुत सख्त नहीं होना चाहिए। फिर जीवन में काम जितना महत्व रखता है, मनोरंजन व विनोद का भी उससे कम महत्व नहीं है। यदि किसान से उसका वर्तमान मनोरंजन ले लिया जाय, तो उसे दूसरे प्रकार का मनोरंजन मुहय्या करना पड़ेगा। वह भी उसकी ताक़त से बाहर होगा।

किसान की बेवकूफ़ी और लापरवाही का एक उदाहरण यह दिया जाता है कि वह बहुत महँगे दामों पर ज़मीन खरीदता है, लेकिन दरअसल ऐसा कहनेवाले उन परिस्थितियों को भूल जाते हैं, जिनसे विवश होकर उसे ज्यादा दाम देने पड़ते हैं। अन्य देशों में किसान को ज़मीन खरीदने के लिए सरकार सब सुविधाएँ देती है। ६० सालों की किश्तों में ३ फ़ीसदी सूद पर रुपया दिया जाता है, तथा और भी सब प्रकार की सहूलियतें दी जाती हैं, लेकिन हिन्दुस्तान में अगर कोई किसान ज़मीन खरीदने की कोशिश भी करता है, तो समाज और क़ानून उसके मार्ग में बड़ी बड़ी बाधाएँ डालते हैं। किसान किसी और व्यापार में भी तो रुपया नहीं लगा सकता। वह खेती और ज़मीन के बारे में ही कुछ जानता है और इसीलिए

किसान की भीषण परिस्थितियां

खेती में रुपया लगाता है।

भारत का किसान जिन विषम परिस्थितियों में काम करता है उनका ज्ञान बहुत कम लोगों को है। हम यकीनन कह सकते हैं कि कोई पढ़ा लिखा, खेती से पूरा जानकार और अर्थ-शास्त्र का विद्वान भी उन हालतों में तीन साल से अधिक जीवित नहीं रह सकता। यह वक्तव्य साहसपूर्ण अवश्य है, लेकिन हमें इसकी सत्यता पर पूरा यकीन है। खेती कालेजों के अनेक शिक्षित व कृषिविशेषज्ञों को हम जानते हैं कि अपनी साधनसम्पन्नता के बावजूद भी कुछ सालों से अधिक खेती न कर सके और कोई नौकरी ढूँढने पर विवश हुए। सरकारी-खेती विभाग के बड़े-बड़े अनुभवी कृषि विशेषज्ञ अफसर भी नौकरी से रिटायर होकर खेती के फार्म बना कर नहीं बैठते। वे भी रियासतों में नौकरी तलाश करते हैं या दूसरे पेशों में लग जाते हैं। आखिर शिक्षित लोग खेती क्यों नहीं करते? इसका जवाब साफ है कि खेती में नफा नहीं होता और मेहनत व पूँजी बेकार जाती है। हमारा यह विश्वास है कि हिन्दुस्तानी किसान न केवल धैर्यशाली और कठोर परिश्रमी है, लेकिन गजब का मितव्ययी भी है। उस पर फिजूल खर्ची का जो इलजाम लगाया जाता है, वह बिलकुल झूठा है। सरकार द्वारा नियत जाँचकारी बैंकिंग-कमेटी की अधिकाँश प्रान्तीय कमेटियों की भी यही राय थी। केन्द्रीय कमेटी ने भी फिजूलखर्ची ऋणग्रस्तता का प्रधान कारण है, इस आक्षेप का समर्थन नहीं किया। प्रान्तीय कमेटियों की रिपोर्ट पढ़कर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि किसानों का जो चित्र हमारे सामने अक्सर खींचा जाता है, वह कोरी कल्पना है।

आमतौर पर कहा जाता है कि किसान की आमदनी का एक बड़ा भारी हिस्सा सूदखोर महाजन ले लेता है। किसान की दरिद्रता का एक बड़ा भारी कारण उसकी कर्जदारी है। भारी सूद

पर कर्ज लेकर जैसे और कोई व्यापार नहीं चलाया जा

कर्ज पर भारी सूद

सकता, उसी तरह खेती भी फायदेमन्द साबित नहीं हो सकती। कर्ज और भारी सूद की वजह से शनै शनै खेत किसान के हाथ से निकल कर महाजन के हाथ में जा रहे हैं।

हम मानते हैं कि किसान बुरी तरह कर्ज के बोझ से दबे हुए हैं और सूद-दर भी बहुत भारी है, लेकिन इसी कारण हम यह नहीं मान सकते कि उसकी गरीबी का कारण ऋणग्रस्तता है। दरअसल यह भी गरीबी का कारण नहीं, किसान की गरीबी का परिणाम मात्र है।

यदि हम भारत की बैंक दर की अन्य देशों की बैंक-दरों से तुलना करें तो हमें बहुत फर्क मालूम होगा। यहाँ कुछ साल पहले तक

भारत में ब्याजदर

सदा बैंक-दर ६ फीसदी रही, जबकि अन्य देशों में सूद की बैंक-दर ३ फीसदी से भी ऊँची नहीं हुई। गत महासमर के खुशहाली के दिनों में भी इंग्लैण्ड में बैंक की दर ५ फीसदी से ऊपर नहीं गयी। जर्मनी में गत महा-युद्ध के बाद सूद की दर ३० फीसदी तक ऊची उठ गयी थी, लेकिन कुछ ही सालों बाद ७॥ फीसदी तक नीचे गिर गइ। ब्रिटेन में जब सितम्बर १९३७ में स्वर्णमान छोडने का निश्चय हुआ, बैंक की दर ६ फीसदी थी, लेकिन सरकार और व्यापारिक महारथियो ने मामले को इस तरीके से सुलझाया कि बैंक-दर ७ फीसदी तक गिर गई। ७ फीसदी दर इससे पहले पिछले ३५ सालों से कभी सुनी भी नहीं गई। पिछले नौ महीनों के थोडे-से समय में ग्रेट ब्रिटेन ज्यादा सम्पन्न नहीं होगया। बात यह है कि वहाँ की सरकार यह जानती है कि सूद कम होने और रुपये के सुलभ होने पर ही व्यवसाय फल फूल सकता है, लेकिन बदकिस्मती से यह सचाई हमारे हिन्दुस्तान में अनुभव नहीं की

जाती। यहा तक की दर कुछ साल पहले तक हमेशा ही ऊँची रही है। यहाँ मुद्रा और विनिमय की जो नीति निर्धारित की जाती है, वह मन्द भारतीय हितों के लिए नुक्सानदेह होती है। यहाँ बैंक-दर भी कभी नीचे गिरने नहीं दी जाती। आजकल का भाँति जब कभी बैंक-दर ६ फीसदी से नीचे गिर भी जाती है, तब भी गरीब आदमी कर्ज नहीं ले सकता। उसके पास न तो जायदाद है, न आमदनी की स्थिरता, जिसके बल पर वह कम सूद पर ब्याज ले। दरअसल भारी सूद उसकी गरीबी का कारण नहीं बल्कि परिणाम है।

साहूकारी या लनदेन सिर्फ मांग और प्राप्ति के नियम पर नहीं चलता। खतरे का उसूल भी सूददर पर काफी असर

खतरे का धंधा

डालता है। आज भी युक्तप्रांत में एक सम्पन्न किसान ६ फीसदी सूद पर कर्ज ले सकता है, जबकि सहकारी-समितियाँ अपने सदस्यों से वसूली की सब किस्म की सहूलियतें होते हुए भी १४ फीसदी से कम नहीं लेतीं। एक महाजन रुपया देने मे पहले यह सोचता है कि इस लेन-देन में उसे खतरा भी उठाना पड़ेगा। एक किसान ने कर्ज लेकर बैल खरीदे हैं, भारी लगान की शर्त पर जमींदार से जमीन ली है, उधार ही बीज लिया है। उसके पास रहन रखने के लिए न अपना घर है, न गाय। और उसकी जमानत उसकी जबान के सिवा कुछ नहीं है। ऐसा किसान जब महाजन के पास जाता है, तब महाजन उसे रुपया देकर खतरा उठाता है। उसकी फसल का भी तो कोई भरोसा नहीं—यथा ठीक समय पर न हुई बाढ़ आ गई, ओला पड़ गया या कीड़ा लग गया। महाजन स्वभावतः इतना खतरा उठाकर ऊँची सूद दर में रुपया देगा। यह साफ है कि यह ऊँची दर किसान की गरीबी का ही परिणाम है।

ऊ ची सूद दर का एक और भी प्रधान कारण है। एक मनुष्य दूसरे की गरज का नाजायज़ फायदा उठाता है। किसान जब महाजन के पास जाता है, तब बहुत गरज़मन्द होकर ही जाता है। उसे यदि समय पर रुपया न मिले, तो वह बैल या बीज नहीं खरीद सकता। वर्षा होने पर उसे हल चलाना ही चाहिये। मौसम पर उसे बोना ही चाहिये। दस-पन्द्रह दिन की देरी का अर्थ है फसल को खोना। एक तरफ किसान सूद की ऊंची दर देखता है और दूसरी तरफ खतरा है कि सारा सालभर बेकार न जाय और एक भी दाना उसे न मिले। हल चलाने के दिनों में उसे कोई पड़ोसी भी बैल नहीं देता। महाजन किसान की गरीबी का नाजायज़ फ़ायदा उठाता है और किसान भी चुपचाप भारी सूद देना मजूर कर लेता है। किसान सारा साल खर्च करता रहता है। साल भर बाद फसल पकने पर कुछ हिस्सा तो उसी दिन लगान, सूद, आदि में चला जाता है, बाकी थोड़ी सी बची आमदनी से उसे अपना व खेती का सालभर खर्च चलाना होता है। जब पढ़े लिखे नियत आय वाले हजारों बाबू अगला वेतन मिलने से पहले अपनी जेब खाली कर देते हैं, तब किसान से यह उम्मीद कैसे की जा सक्ती है कि थोड़ी सी एक बार, वह भी अस्थिर, आमदनी से साल भर का सतुलित बजट बना लेगा? फिर अशिक्षा के कारण भी उसे ज्यादा सूद देना पड़ता है। आश्चर्य तो यह है कि इतनी विषम परिस्थितियों से वह अब तक कैसे बचकर निकलता रहा है?

किसान की विवशता

जो समालोचक महाजन को नीच और शरारती आदि गालियां दिया करते हैं, शायद वह भूल जाते हैं कि इंगलैंड-जैसे देशों में सरकार बहुत कम सूद पर बहुत ज्यादा रुपयों से किसानों को सहायता देती है। कुछ ही साल पहले कृषि-साख-क़ानून १९२८ के अनुसार

सरकार की सूदखोरी

इंगलैण्ड की सरकार ने १५ लाख पौण्ड (१ करोड़ ६ लाख रुपये) किसानों को सहायतार्थ बाँटे थे। इन पर एक पैसा भी सूद नहीं लिया गया। ६० सालों में जाकर किश्तों में ये रुपये वसूल किये जायँगे। दूसरी तरफ हिन्दुस्तान है, जहाँ लोग अकाल में भूखे मर रहे हैं, सरकार ७॥ फीसदी सूद पर कर्ज देती है और वह भी दो-तीन सालों में वसूल कर लिया जाता है। पाठक 'तकावी' का मतलब जरूर जानते होंगे। किसान को कम मिलता है और ठीक समय पर देना पड़ता है। इसका अर्थ यह है कि उन्हें काफी सूद देना पड़ता है। जहाँ सरकार ही ६ फीसदी के हिसाब से कर्ज लेती है, वहाँ सूद-दर भी ज्यादा होना स्वाभाविक है।

इसका मतलब यह नहीं कि साहूकारों की ज्यादती या ऊँची सूद-दर का हम समर्थन करते हैं। व्यवसाय और खेती की उन्नति के लिए कम सूद पर रुपया मिलना जरूरी है। हमारा कहना तो यही है कि भारत-जैसे गरीब देश में ऊँची दर स्वाभाविक है और ऋण-ग्रस्तता कारण नहीं, गरीबी का परिणाम है।

भाग २. जाँच

प्राचीन आदर्श

एक पुरानी हिन्दी कहावत है—"उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान।" जब यह कहावत प्रचलित हुई थी तब खेती को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। लेकिन आज किसान की हालत सबसे खराब है। भारत का तीन चौथाई व्यापार कृषिजन्य पदार्थों का होता है। व्यापारी लाखों रुपये कमाते हैं, लेकिन अनाज पैदा करने वाले किसान की हालत २०) रु० के क्लर्क या १०) रु० के अदालत के अर्दली से भी खराब है। सरकार की आमदनी का अधिकांश भाग किसान चुकाता है, रेल डाक, अदालत टिकट और चुंगी तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के रूप में किसान करोड़ों रुपया सरकार को देता है, लेकिन उसकी अपनी हालत बहुत शोचनीय है। इस में कोई संदेह नहीं कि किसान का पेशा सबसे श्रेष्ठ है, वही समस्त समाज में सबसे अधिक कठिन परिश्रम करता है और वही सच्चे अर्थों में उत्पादक है। भाग्य का फेर देखिए कि अन्न का उत्पादक भूखों मरता है और उसके माल के व्यापारी मौज उड़ाते हैं।

आखिर किसान की यह हालत कैसे हो गई? इस परिवर्तन के कारणों पर विचार करने के लिए हम प्राचीनकाल के ग्रामों की अवस्था का अध्ययन करना चाहिए। इससे हम किसान की दयनीय हालत के कारणों को भी समझ सकेंगे।

इगलैण्ड की सरकार न १५ लाख पौण्ड (१ करोड़ ६० लाख रुपये) किसानों को सहायतार्थ बाटे थे। इन पर एक पैसा भी सूद नहीं लिया गया। ६० सालों में जाकर किश्तों में ये रुपय वसूल किये जायँगे। दूसरी तरफ हिन्दुस्तान है, जहां लोग अकाल से भूख मर रहे हैं, सरकार ७॥ फीसदी सूद पर कर्ज देती है और वह भी दो-तीन सालों में वसूल कर लिया जाता है। पाठक 'तक़ावी' का मतलब जरूर जानते होंगे। किसान को कम मिलता है और ठीक समय पर देना पड़ता है। इसका अर्थ यह है कि उस काफी सूद देना पड़ता है। जहा सरकार ही ६ फीसदी के हिसाब से कर्ज लेती है, वहा सूद दर भी ज्यादा होना स्वाभाविक है।

इसका मतलब यह नहीं कि साहूकारों की ज्यादती या ऊंची सूद-दर का हम समर्थन करते हैं। व्यवसाय और खेती की उन्नति के लिए कम सूद पर रुपया मिलना जरूरी है। हमारा कहना तो यही है कि भारत-जसे गरीब देश में ऊंची दर स्वाभाविक है और ऋण-ग्रस्तता कारण नहीं, ग़रीबी का परिणाम है।

भाग २ . जाँच

प्राचीन आदर्श

एक पुरानी हिन्दी कहावत है—"उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान।' जब यह कहावत प्रचलित हुई थी तब खेती को सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। लेकिन आज किसान की हालत सबसे खराब है। भारत का तीन चौथाई व्यापार कृषिजन्य पदार्थों का होता है। व्यापारी लाखों रुपये कमाते हैं, लेकिन अनाज पैदा करने वाले किसान की हालत २०) रु० के क्लर्क या १०) रु० के अदालत के अर्दली से भी खराब है। सरकार की आमदनी का अधिकांश भाग किसान चुकाता है, रेल डाक, अदालत, टिकट और चुंगी तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर' के रूप में किसान करोड़ों रुपया सरकार को देता है, लेकिन उसकी अपनी हालत बहुत शोचनीय है। इस में कोई संदेह नहीं कि किसान का पेशा सबसे श्रेष्ठ है, वही समस्त समाज में सबसे अधिक कठिन परिश्रम करता है और वही सच्चे अर्थों में उत्पादक है। भाग्य का फेर देखिए कि अन्न का उत्पादक भूखों मरता है और उसके माल के व्यापारी मौज उड़ाते हैं।

आखिर किसान की यह हालत कैसे हो गई? इस परिवर्तन के कारणों पर विचार करने के लिए हमें प्राचीनकाल के ग्रामों की अवस्था का अध्ययन करना चाहिए। इससे हम किसान की दयनीय हालत के कारणों को भी समझ सकेंगे।

: १ :

प्राचीन ग्राम

पुराने जमाने के गाँव और आजकल के गाँव में जो खास फर्क है, वह यह कि पहले गाँव अपने आप में पूरी एक इकाई थे और आजकल वह किसी बड़ी इकाई का एक भाग है। इसका यह अर्थ नहीं कि पहले एक गाँव का दूसरे गाँवों या शहरों से कोई सम्बन्ध ही न था। हमारा मतलब यह है कि उन दिनों भारत में ज्यादा सामाजिक और ज्यादा प्रजातन्त्रीय जीवन था। प्रत्येक गाँव अपने में पूर्ण था और अपनी जरूरतों के लिए बाहरी दुनिया पर निर्भर न करता था। गाँव में खूब अनाज पैदा होता था। अपनी जरूरतों के बाद जो बच जाता था, वह अकाल या और किसी विपत्ति के समय के लिए कोठार में भर दिया जाता था। सरकारी टैक्स या और देनदारियों के लिए जितना जरूरी होता था, उतना ही अनाज गाँव के बाहर भेजा जाता था। उसमे से भी काफी हिस्सा गाँव मे रहने वाले सरकारी कर्मचारियों में बाँटने के लिए गाँव में ही रक्खा जाता था। अपनी जरूरतभर रुई भी गाँव में ही पैदा की जाती थी। रुई की सफाई, पिंनाई और कताई व बुनाई सब गाँवों म होती थी। ये वे दिन थे, जब यूरोप वाले जंगलियों की तरह रहते थे। उन्हें कपडा पहनने का भी शऊर न था और वे वृक्षों की छालों से अपने शरीर ढकते थे। बहुत दिन बाद उन्हें कपड़ा बनाना आया। हिन्दुस्तान के हर एक गाँव में कपडा काफी मिलता था, चाहे वह आजकल का सा बढिया न होता हो, लेकिन बहुत से गाँव बहुत ही महीन, विविध प्रकार के बढिया कपड़ों के लिए प्रसिद्ध थे। ये कपड़े हिन्दुस्तान से बाहर काफी मात्रा में जाते थे। इंग्लैण्ड ही भारतीय वस्त्रों का बहुत बड़ा खरीददार था। हिन्दुस्तान का यह व्यापार किस तरह

नष्ट किया गया, इसकी करुण कहानी लिखने का यहाँ स्थान नहीं है।

हरेक गाँव की हदबन्दी होती थी और उसके अन्दर की सारी जमीन पर सारे गाँव का सम्मिलित अधिकार होता था।

गावों की खुशहाली

जमीन पर किसी व्यक्ति का अधिकार न था, गाँव के बड़े-बूढ़े लोग परिवारों की आवश्यकता के अनुसार ग्रामवासियों को जमीनें बाँट देते थे। समय-समय पर जरूरत के मुताबिक़ जमीनों का पुनर्विभाजन भी होता रहता था। चरागाह के लिए भी काफी जमीन छोड़ी जाती थी। अच्छी नसल के मवेशी हरेक गाँव में काफी तादाद में मिलते थे। दूध-दही की नदियाँ बहती थीं। लुहार, बढ़ई, कुम्हार आदि सभी गाँव में रहते थे। गाँव पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर था।

कोई विदेशी व्यक्ति जब भारत की प्राचीन ग्रामव्यवस्था का अध्ययन करने लगता है, तब वह यह देखकर सचमुच हैरान हो जाता है कि उन दिनों जब मानव-हृदय आज-जैसा विकसित न हुआ था, हिन्दुस्तान के भोले भाले सीधे-सादे देहाती किस सुन्दर ढंग से अपना संगठन करते थे और दीवानी, फौजदारी, आर्थिक, सामाजिक या धार्मिक सभी प्रकार के झगड़ों का आपस में निपटारा कर लेते थे। बिना किसी प्रकार की अदालती कार्रवाई, बिना कोई टिकट लगाये या फ़ीस दिये, बिना किसी वकील की सहायता के बड़े-बड़े पेचीदे मामलों को इतनी सादगी और पूर्णता के साथ हल कर लेना वस्तुतः आश्चर्यजनक है। यही पुराने ग्राम-संगठन की खूबी है। सब गाँववालों में इस संगठन को चलाने के लिए जिस सुन्दर सिद्धान्त पर अमल किया जाता था, वह यह था—"अपने अधिकारों की अपेक्षा अपने कर्तव्य की अधिक चिन्ता करो।"

सन १८१२ में हाउस आफ कामन्स की सिलैक्ट कमेटी द्वारा प्रकाशित एक रिपार्ट से मालूम होता है कि उन दिनों मद्रास के एक गाँव में निम्नलिखित अफ़सर व सरकारी कर्मचारी काम करते थे—

गाँव के अफसर

१ मुखिया—यह ग्राम-सम्बन्धी सब कामों का निरीक्षण करता, ग्रामवासियों के झगड़ सुलझाता, पुलिस की व्यवस्था करता और लगान आदि सरकारी टैक्स वसूल करता था। इसे ग्रामवासी ही चुनते थे।

२ मुंशी या पटवारी—यह गाँव की पैदावार व तत्सम्बन्धी हिसाब किताब रखता था।

३ चौकीदार—चौकीदार दो किस्म के होते थे। बड़ा और छोटा। बड़े चौकीदार का कार्य अपराधों का पता लगाना और यात्रियों की रक्षा करना था, छोटे चौकीदार का काम गाँव की खबरदारी करना, फसल की रक्षा करना तथा उसे मापने आदि के कामों में सहायता देना था।

४-हदबन्दी करने वाला—इसका काम गाँव की सीमाओं की रक्षा करना और सीमा-सम्बन्धी झगडों में गवाही देना होता था।

५ जल निरीक्षक—यह कुओं और तालाबों का निरीक्षण करता था और खेती के लिए अलग अलग खेतों में पानी बाँटता था।

६ पुरोहित—गाँव में पूजा आदि का कार्य इसके जिम्मे होता था।

७-स्कूलमास्टर—गाँव के बालकों को पढ़ाना और लिखना सिखाना इसका काम होता था।

८-ज्योतिषी—बीज बोने और फसल काटने के लिए शुभ व अशुभ दिवस बताया करता था।

इसके अलावा लुहार, बढ़ई, कुम्हार, धोबी, नाई, ग्वाला,

डाक्टर, नर्तिका, सगीतज्ञ, व कवि भी प्रत्येक गाँव में होते थे।

इनमें से मुखिया, पटवारी और चौकीदार का काम काफी महत्वपूर्ण था। मुखिया ग्राम की सरकार का शासक और प्रबन्ध-कर्ता होता था। चौकीदार उसके नीचे रहकर काम करता था और पटवारी उसे जमीना का हिसाब रखने तथा दूसरा हिसाब किताब रखने में सहायता देता था। हरेक गाँव में एक पचायत होती थी और उसी के आधीन उपर्युक्त तीनो सरकारी कर्मचारी की हैसियत से काम करते थे। चौकीदार, पटवारी आदि को गाँव ही वतन देता था।

गाँवों की सबसे मुख्य संस्था ग्राम-पचायत होती थी। इसका सगठन प्रजातन्त्र के सिद्धान्त पर होता था। सारे गाँव का शासन और न्याय आदि इसी के सुपुर्द होता था। टैक्स, बाग, सिंचाई, भूमि विभाजन आदि के विभिन्न कामों के लिए कई कमिटियाँ नियत की जाती थीं, और इनका चुनाव सब ग्रामवासी मिलकर करते थे। पचायती न्याय बिलकुल पूर्ण होता था। सब एक दूसरे को जानते थे, इसलिए कोई झूठ नहीं बोल सकता था। आजतक भी लोगों को अदालत की अपेक्षा पचायत पर अधिक विश्वास है। सफाई, शिक्षा और पानी की व्यवस्था आदि भी पचायत के जिम्मे थीं। खाद का सग्रह भी पचायतें करती थीं।

कुएँ, तालाब, सडकों, गलियों, नालियों, धर्मशालायें मदिरों आदि सार्वजनिक कार्यों का निर्माण भी पचायत ही करती थीं।

हरेक गाँव में शिक्षा का समुचित प्रबन्ध होता था। यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि आजकल की अपेक्षा शिक्षितों का अनुपात कहीं अधिक था। हिन्दू शास्त्रों के

शिक्षा

अनुसार प्रत्येक द्विज का पढना जरूरी है। शूद्र भी पढ़ते थे। ब्राह्मण पुरोहित का समाज में एक विशेष स्थान होता था। रेवरेण्ड भी अपनी 'एशेण्ट इण्डियन एजुकेशन' में लिखते हैं —

"ब्रिटिश सरकार के भारत में शिक्षा का संचालन व नियंत्रण अपने हाथ में लेने से पहले इस देश में शिक्षा की एक देशव्यापी लोकप्रिय देशी पद्धति थी, जो सभी प्रान्तों में फैली हुई थी।" बंगाल के एक स्कूल इन्सपेक्टर ने १८६८ में पंजाब के स्कूलों का निरीक्षण करने के बाद लिखा था—"भारत में शिक्षा का आधार शास्त्र है। अनगिनत पाठशालाओं, चटसालों और झोंपड़ों में, जो आज भी सारे देश में फैले हुए हैं, व्यापक शिक्षा का परिणाम देखा जा सकता है। उपेक्षा, घृणा और पिछले एक हजार साल की विपरीत अवस्थाओं के बावजूद भी आज ये संस्थाएँ जीवित हैं। इसी से ज्ञात होता है कि इनके मूल में कितनी जबर्दस्त प्रेरणा और शक्ति थी।" स्त्री शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया जाता था। भारतीय शिक्षा पद्धति के सम्बन्ध में हावेल अपनी पुस्तक 'एजुकेशन इन ब्रिटिश इण्डिया' में लिखते हैं कि "हिन्दुओं की यह प्रतिष्ठित और उपयोगी संस्था क्रान्तियों की आँधी और तूफानों में भी नहीं नष्ट हुई। लेखकों और गणितज्ञों की दृष्टि से भारतीयों की प्रतिभा का श्रेय इसी संस्था को है।"

लेकिन शिक्षा की वह लोकप्रिय व्यापक प्रणाली भी नष्ट हो गई। डा० लिटनर ने इसका कारण बताते हुए लिखा—"बंगाल की भाँति पंजाब के शासकों को भी हिदायत दी गई कि वे सब मुआफ़ी की जमीनें—स्कूलों और मस्जिद व मन्दिरों की जायदादें भी अपने हाथ में ले लें। इसके परिणाम-स्वरूप देशी स्कूलों की बहुत-सी जायदादें शनैः शनैः खतम हो गईं। पंजाब के शिक्षा विभाग ने अपनी ओर से स्कूल तो न खोले, लेकिन देशी स्कूलों को बंद करना जारी रक्खा।"

ये पंचायतें गाँवों में बराबर व्यवस्था रखती थीं। देश में चाहे कोई सरकार आये, चाहे कितने ही क्राँतिकारी परिवर्तन हो जायें, चाहे हिन्दू राजा हो या मुसलमान, मुगल हो या पठान, या और

कोई शासक आजावे, ग्रामों के रहन-सहन, कारोबार और शासन व्यवस्था में कोई अन्तर न आता था। जब कभी किसी युद्ध या विदेशी हमले से गाँव-के-गाँव खाली हो जाते थे, तब भी शान्ति स्थापित होने पर गाँव के फिर बसते ही वैसी ही पचायत व्यवस्था क़ायम हो जाती थी। गाँव के लोगों पर देश की किसी क्रांति का कोई विशेष प्रभाव न पड़ता था। *

: २ :

गाव का साहूकार

आज गाँव के साहूकार की कितनी ही निन्दा क्यों न की जाय, उसे किसानों का रक्त शोषक आदि कितनी ही गालियाँ क्या न दी जावें, उसका बहुत पुराने जमाने से ग्राम-जीवन में एक विशेष महत्व रहा है। उसे ग्राम के आर्थिक सगठन की रीढ़ कहा जा सकता है। पहले उसे समाज का खून चूसनेवाला नहीं समझा जाता था।

बहुत पुराने जमान से साहूकार किसानो की जरूरतें पूरी करता आया है। खास जरूरत और सकट के समय उससे यह आशा की जाती थी कि वह अनाज या रक़म उधार भी दे देगा, जिसे फसल कटने के समय वसूल कर लेगा। कर्ज लेने का यह रिवाज भी शायद अनादि काल से सभी देशों में चला आरहा है। जो देश जितना सम्पन्न हो, जिस देश में रुपया अधिक आसानी

प्राचीन गांव में साहूकार का स्थान

* इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए सस्ता साहित्य मण्डल द्वारा प्रकाशित "हमारे गावों की कहानी देखिए—मूल्य ॥)

से मिल सकता हो, उसमें सूद भी कम लिया जाता है और गरीब देश में सूद ज्यादा। प्राचीनकाल में सूद यद्यपि बहुत कम न था, तथापि वह पूरा का पूरा वसूल नहीं होता था। गाँव के बड़े-बूढ़े बीच में पड़कर फैसला करा देते थे और सूद में भी बहुत-कुछ छूट हो जाती थी। उन दिनों साहूकार वसूली के लिए अदालत में न जाता था। यह गाँव की पचायत का काम था कि फसल कटने पर साहूकार को उसके कर्जदार ईमानदारी से कर्ज चुका देवें। इसके साथ ही वे यह भी देखते थे कि कर्ज चुकाते हुए किसान का भी दिवाला न निकले। किसान की चुकाने की ताक़त और भविष्य का भी वे ख़याल करते थे। बहुत दफा कर्ज चुकाते हुए पशुओं के दाम असली दामों से जान-बूझकर ऊँचे मान लिये जाते थे, जिससे कर्जदार को कुछ रियायत मिल जाती थी। यह रिवाज तो आज तक भी गाँवोंमें पाया जाता है। कर्ज या सूद पर नियन्त्रण के लिए कोई सरकारी क़ानून न होते हुए भी गाँव के पच नियन्त्रण करते थे। गाँव का महाजन भी कभी पचो का निरादर न करता था।

लेन-देन का हिसाब बाक़ायदा तमस्सुक आदि द्वारा होता था। कर्जदार अपने वायदे का पाबन्द था और महाजन भी उसे लूटने के लिए जाल या धोखेबाजी न करता था। महाजन की बही में लिखी रक़म पर सब विश्वास करते थे। अपना कर्ज न चुकाने का ख़याल भी खुशहाली के उन दिनों में कभी नहीं सुना गया। "देशी राज्य में कभी लेनदार को अपने रुपये की वसूली के लिए सरकार की सहायता लेने की जरूरत नहीं पड़ती थी। उसके लिए कोई अदालत नहीं खुली थी, वह जैसे-तैसे स्वयं अपनी लेनदारी वसूल करता था। वह क्या करता है, सरकार को इसकी फ़िक्र न थी, लेकिन इसका परिणाम वैसा ख़राब नहीं होता था, जैसाकि हम ख़याल करते हैं। यह हिन्दुस्तान के चरित्र की ख़ास खूबी है कि पहले वायदों और

लेन देन में ईमानदारी

समझौता से बहुत कम इन्कार होता था। कमिश्नर देखते थे कि ऐसे मामलों में लेनदार ईमानदारी की नीति को और साहूकार सावधानताकी नीति को सबसे अच्छा समझते थे।" (१७ जुलाई १८६७ की गवर्नर जनरल की कौंसिल की कार्यवाही का उद्धरण) हरेक शख्स कर्ज चुकाना अपना धर्म समझता था। लोगों का यह विश्वास था कि यदि इस जन्म में कर्ज न चुकाया जायगा, तो अगले जन्म में चुकाना पड़ेगा। इसलिए हरेक कर्जदार ईमानदारी से चुकाने की कोशिश करता था। यदि कोई फिर भी न चुकाना चाहता, तो उसे यह अधिकार था कि वह साहूकार की बही में अपने हाथ से उस रकम पर लकीर फेर सकता था और उसके बाद साहूकार उससे फिर माँग नहीं सकता था, लेकिन यह काम समाज में बहुत निन्दनीय और अपमानजनक समझा जाता था। इसलिए ऐसा करने की नौबत ही न आती थी। आज भी देहातों में अपने बाप दादा का कर्ज चुकाना अपना कर्तव्य समझा जाता है।

साहूकार की गाँव इज्जत करता था, लेकिन उसे समाज में सबसे ऊँचा स्थान न दिया जाता था। वह पचायत के संरक्षण में रहता था। उसका कोई बाल बाँका भी न करे, यह देखना पचों का काम था। इसी तरह अकाल के समय उसके अनाज के कोठे किसानों के लिए खुल जाते थे। वह समझता था कि गाँव की खुशहाली में उसको खुशहाली है। किसान और साहूकार का आपस से पूरा सहयोग था। साहूकार किसानों की आवश्यकता पूरा करता था, न कि खुद मालामाल होने के लिए किसानों को सताता था, क्योंकि उन दिनों धन या सम्पत्ति से ही किसी को बड़प्पन न मिलता था।

भाव रहता था। उन्होंने लड़ाइयाँ लड़ीं, जायदादें हासिल कीं और देश के कुछ भागों पर हुकूमत भी शुरू की, लेकिन इन सबका एक उद्देश्य—महज एक ही उद्देश्य था और वह था धन कमाना। हिन्दी में एक कहावत है —

"बनिया हाकिम गजब खुदा"

अर्थात एक व्यापारी का हाकिम हो जाना लोगों पर आपत्ति का पहाड़ टूटना है। हाकिम और व्यापारी के हित बिलकुल जुदा जुदा होते हैं। व्यापारी जनता को चूसने की फ़िकर करता है तो हाकिम का फर्ज उसकी रक्षा करना है। आर्थिक शोषण और रक्षण दोनो कभी साथ साथ नहीं चल सकते, लेकिन जब शोषक ही खुद शासक हो जावे, तब परमात्मा ही जनता का रक्षक है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में भारत के साथ भी यही किस्सा हुआ।

अंग्रेजों ने जान-बूझकर या बेजाने अपने क़ानूनों को प्रचलित करने के जोश में यहाँ की पचायतों की जगह अदालतों को चला दिया। आज पचायतों के फैसलों की कोई क़ानूनी क़ीमत नहीं है। दीवानी मामलों तक में वे अदालत की सहायता के बिना कोई फैसला नहीं दे सकतीं।

पचायतें खतम

यदि आज वे कोई फैसला दे भी दें, तो उसकी कोई क़द्र नहीं करता। यदि वे आज किसी को जात बिरादरी से अलग करती हैं, तो वह आदमी अदालत में पचा पर मुकद्दमा चला सकता है। फ़ौजदारी मामलों में [illegible] फैसला [illegible] पर ही मुक़द्दमा चल सक[illegible] स्थिति [illegible] छिन जाने की स्थिति में [illegible] [illegible]। वे शनै शनै खतम हो[illegible]

[illegible] सरका [illegible] सु [illegible]
[illegible] की [illegible] रव [illegible]

गावों के नये अफसर

उपयोगिता को स्वीकार करते हुए भी सरकार ने उस ऊँचे उद्देश्य को नष्ट कर दिया, जो उनके ग्राम पचायत द्वारा चुने जाने से पूरा होता था। आज मुखिया जनता का सेवक नहीं है, न उसे जनता चुनती ही है। उसे पुलिस के परामर्श से ऊपर के अधिकारी नियुक्त करते हैं। इस पद के लिए अक्सर ऐसे ही लोग चुने जाते हैं, जो पुलिस के खुशामदी हों, शरारती हों और पुलिस की सहायता से अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हों। भले ईमानदार आदमी इस पद की इच्छा भी नहीं करते। आज हालत यह है कि मुखिया का काम लोगों का भला देखना या झगड़ों का सतोषजनक रीति से सुलझाना नहीं है। उसका पहला और सबसे बड़ा फर्ज यह है कि यदि गाँव में कोई खास घटना हो जाय, तो वह पुलिस को इत्तिला दे दे। "विलेज गवर्नमेण्ट इन ब्रिटिश इण्डिया" के लेखक ठीक ही लिखते हैं कि—"यह याद रखना चाहिए कि मुखिया जनता का आदमी होने की अपेक्षा ज्यादा से-ज्यादा सरकार का प्रतिनिधि होता जा रहा है।" (पृ० १५२) इस तरह ग्राम के अपने प्रतिनिधियो द्वारा आत्मशासन या प्रजातत्र की पद्धति नष्ट हो गई।

चौकीदार भी अब जनता द्वारा नहीं चुना जाता। वह सरकार का एक नौकर है, जिसका वेतन सिर्फ १॥।=) मासिक है। न उसे कोइ जमीन मुफ्त मिली हुई है और न उसे पहले की भाति फ़सल पर कुछ हिस्सा मिलता है। इसके साथ ही उसपर चोरी की क्षतिपूर्ति की जिम्मेदारी भी नहीं रही। फलत चोरियाँ ज्यादा होन लगी हैं। आजकल चौकीदार पुलिस व ग्रामवासियो के बीच की एक कडी है। उसकी स्थिति कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न मानी जाती हो, अब जनता का वह कोइ काम नहीं करता। क़ानूनी भाषा में वह जनता का नौकर है, लेकिन दरअसल वह पुलिस के छोटे अधिकारियों के एक औजार से अधिक कुछ नहीं है।

किसान रखकर लगान बढाने की कोशिश करता रहा है। वह यह खूब जानता है कि देहाती के पास खेती के सिवा कोई पेशा नहीं है, इसका वह खूब नाजायज फायदा उठाता है। सरकार भी जमींदारों की लगानवृद्धि का फायदा हर नये बन्दोबस्त पर मालगुजारी बढाकर उठाती है। पुराने जमाने में किसी किसान से लगान नहीं लिया जाता था। हरक किसान सरकारी टैक्स देने के बाद अपनी पैदावार का खुद मालिक होता था। सामूहिक जमीन के किसानों म बाटने का पचायत को जो अधिकार था, वह आज नहीं रहा। आजकल जमीन के एक-एक इच पर मालगुजारी लगाई जाती है। यह भी नहीं देखा जाता कि वह जमीन किसी मन्दिर या सस्था को दान में दी गई है। इसका परिणाम यह हुआ कि एक एक इच जमीन पर हल चलाया जाने लगा है। चरागाहों के लिए जमीनें बची ही नहीं। मवेशी चारे के अभाव से भूखों मर रहे हैं, अच्छी नसल तेजी से कम होती जारही है। दूध, दही, मक्खन और घी थोड़ा हो गया है। इसका किसानो के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड रहा है। बच्चों की मृत्यु सख्या भी लगातार बढ़ रही है।

अंग्रेज यहाँ व्यापारी के रूप में आये हैं। उनके सामने तो अपने देश इग्लैण्ड की समृद्धि ही एक लक्ष्य रहा है। व्यापार व्यवसाय की सरकारी नीति के कारण हिन्दुस्तान के घरेलू धन्ध एक एक करके नष्ट हो गये हैं और हजारों कारीगर बेकार हो गये हैं। युगों का अनुभव और पीढियों की चतुरता खतम हो गई। कारीगरों के वे हाथ, जो नफीस चीजें बनाते थे, जिनपर ससार ईर्ष्यापूर्वक आश्चर्य प्रकट करता था, जिनकी प्रशसा करते हुए विदेशी कभी अघाते न थे, लेकिन जिनकी नक़ल न कर सकते थे, आज वही हाथ फावडा या कुल्हाड़ी लेकर खेतों म, रेलवे लाइन पर या नहरों

घरेलू धधा का विनाश

च किनारों पर मजदूरी कर रहे हैं।

चटक मटक की सस्ती सस्ती विदेशी वस्तुओं से भारत के बाजार भर गये हैं। हिन्दुस्तानी कारीगर के हाथ की बढिया चीजें देखने को नहीं मिलतीं। विदेशों की फजूल फजूल चीजो के नाम पर हर साल भारत का करोडो रुपया खिंचा जारहा है। मशीन से बनी सस्ती विदेशी चीजों ने गाँववालो को बेकार कर दिया है। अब किसान की स्त्री चरखा नहीं कातती, रुई नहीं धुनती, जुलाहे की खड्डी खटखट नहीं करती। तेली का कोल्हू बन्द पड़ा है, क्योंकि मिट्टी का तेल हरेक गाँव मे मिलता है। गाँव के मोची भी हाथ पर-हाथ धरे बैठे हैं, क्योंकि चटक मटक के जूते काफी आरहे हैं। सुन्दर और हल्के, सोने चाँदी के बढिया काम वाले सलेमशाही जूतों की जगह आजकल सम्पन्न घरों में विदेशी पम्प शू नजर आते हैं। बैलगाडियों के द्वारा जो दो चार पैसे पहले किसान को मिलते रहते थे, वे भी तेज चलनेवाली लारियों की कृपा से बन्द हो गये हैं। मतलब यह है कि हरेक कारीगर बेकार हो गया है। चतुरता या कारीगरी की कदर ही नहीं रही। किसान तक को वही चीज बोनी पड़ती है, जिसकी विदेशों में माँग हो। अनाज, दाल, तेल के बीज आदि तो विदेशो में बगैर चुंगी के जासकते हैं, लकिन आटा, तेल आदि पर चुंगी लगती है। इतने कारीगरों की बे रोजगारी का असर यह हुआ है कि जमीन पर बोझ बहुत बढ गया है। भारत में कृषि-जीवियों की संख्या बढ रही है, जबकि अन्य देशो मे कम होरही है।

वह साहूकार, जो समाज की रीढ समझा जाता था, आज शोषक बन गया है। अब वह लोगों की सद्भावना पर विश्वास नहीं करता। साहूकार व लेनदार में जो पवित्र सामाजिक बन्धन था, अदालता ने उसे नष्ट कर दिया है। अब तो सिर्फ शोषक और शोषित का सम्बन्ध रह गया है।

पिछड़े हुए देश तरक्की कर सकते हैं, यदि जापान ५० साला में तरक्की करके इग्लैण्ड जैसे व्यवसायी देश को कपड़े के धन्धे में बीसियों किस्म की पाबन्दियाँ लगाने पर भी पछाड़ सकता है, तो भारत उन्नति क्यों नहीं कर सकता ? पिछले यूरोपियन युद्ध के दिनों में सरकार ने अनेक वस्तुयें फौजों के लिए बनाने की कोशिश की, तो उसे भारी सफलता मिली , परन्तु युद्ध बन्द होने पर यह कार्य भी बन्द कर दिया गया। यदि युद्ध कुछ और साल तक चलता रहता, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दुस्तान अपनी सब जरूरतें बड़ी कामयाबी के साथ यहीं पूरी करने लगता। केवल यही नहीं, यह भी बहुत सम्भव था कि इग्लैण्ड को बहुत-सा तैयार माल भेज सकता। आज सभी देश अपने अपने को सब दृष्टियों से आत्मनिर्भर बनाने में लगे हैं। आज 'मुक्त-द्वार' नीति का कोई नाम भी नहीं लेता। मुक्त द्वार नीति का सबसे बड़ा समर्थक इग्लैण्ड भी आज तट-करों की दीवारें खड़ी कर रहा है। गाहक के हित के नाम पर भारत में सब देशों का माल आकर बिकता है। यह आवाज आज भारत के सिवा कहीं नहीं सुनाई देती। भारत में सरकार बाहर के माल पर चुगी लगाने की बात को कदापि हमदर्दी के साथ नहीं सुनती।

भारत की कृषिप्रधानता या उद्योग धन्धों में फिसड्डीपन के लिए प्रकृति को दोष देने से कोई फायदा नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि दो सदी पहले हिन्दुस्तान उद्योग धन्धों की दृष्टि से बढ़ा-चढा था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना ही क्या इसी लिए नहीं हुई थी कि वह भारत के बढ़िया कपड़े आदि इग्लैण्ड में बेच कर खूब नफा कमावे ? ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दिनों की यह करुण कहानी—कितनी भीषणता और निर्दयता से हिन्दुस्तान के धन्धों को खतम किया गया, उसकी रोमांचकारी कहानी देने

भारत की व्यावसायिक उन्नति

की यहाँ जरूरत नहीं है और न यहाँ हिन्दुस्तान की समृद्धि और उद्योग धन्धों की तरक्की के बारे में विदेशी लेखकों के सैकड़ों उद्धरण देने की हमारी इच्छा ही है। सिर्फ नमूने के तौर पर दो तीन उद्धरण दे देने काफी होंगे। इनसे यह स्पष्ट हो जायगा कि भारत के उद्योग धन्धों की हालत क्या थी ? ढाका की मलमल के बारे में तो विदेशी लेखकों ने तारीफ करने में गजब कर दिया है। सर जार्ज वर्डवुड ने आबेरवाँ (दौड़ता हुआ पानी) बफ्त हवा (बुनी हुई हवा) शबनम (ओस) आदि कपड़ों के कवित्व पूर्ण नामों के अनुरूप ही उन कपड़ों को सुन्दर, बारीक और बढ़िया बताया है। फ्रांसीसी यात्री ट्रैवर्नियर ने १७ वीं सदी में भारत की यात्रा की थी। उसने लिखा है कि—"भारत से वापिस आकर मुहम्मद बेग ने चासेफ़ (दूसरे) को नारियल भेंट किया। यह नारियल शुतुरमुर्ग के अण्डे के बराबर था और उस पर मोती जड़े हुए थे। खोलने से उसमें एक ६० हाथ लम्बा साफ़ा मिला। यह इतना नफ़ीस था कि हाथों में महसूस भी न होता था, क्योंकि लोग इतना बारीक सूत कातते थे कि मुश्किल से नजर आता था, यानी बिलकुल मकड़ी का जाला मालूम होता था।" जेम्स टेलर ने जहाँगीर के जमाने के एक १५ गज लम्बे थान का जिक्र किया है, जिसका तोल सिर्फ ९०० ग्रेन (एक छटांक से कुछ कम) और कीमत ४० पौण्ड थी। इसके बाद वह लिखता है कि आजकल सबसे नफ़ीस कपड़े का वजन कम-से-कम १६०० ग्रेन है, जबकि उसकी कीमत १० पौण्ड है।

लेकिन हालत बदली। यूरोप, अमेरिका और बंगाल के निजी व्यापार की सातवीं रिपोर्ट में लिखा है कि कलकत्ते के व्यापारी सन् १८०० से पहले ८० लाख रुपये से अधिक का कपड़ा या कच्चा रेशम नहीं मंगाते थे, लेकिन १८०१-२ में भारत में १ करोड़ ७० लाख रुपये का

हालत बदली

कपडा व कच्चा रेशम पहुँचने लगा। पहले इंग्लैंड के निवासी हिन्दुस्तानी कपड़े पर मरते थे, अब हिन्दुस्तान इग्लैंड से कपड़ मगाने लगा। हिन्दुस्तान का व्यापार मशीनों के मुक़ाबले में आकर नष्ट नहीं हुआ। इसकी तो एक बडी दर्दनाक कहानी है। हिन्दुस्तान के कपडे पर भारी भारी कर लगाये गये और जब उससे भी हिन्दुस्तानी कपड़े की माँग कम न हुई, तो इगलिस्तान में हिन्दुस्तानी कपडा पहनना और बेचना जुर्म करार दिया गया। केवल सूती कपडे के साथ ही नहीं, रेशम, जूट और अन्य वस्तुओं पर भी अनुचित पाबन्दी लगाई गई। १७०० ई० में भारतीय रेशम मगाना गैरक़ानूनी करार दिया गया।

यह वह समय था, जब इग्लैंड के लोगों ने रुई का नाम तक न सुना था। वे सिर्फ ऊन को जानते थे। जब उन्होंने रुई देखा, उसे वे सूती ऊन (Cotton wool) कहने लगे। इसी तरह गन्ना भी उनके लिए नई वस्तु थी। विदेशियों ने गन्ने को 'शहद पैदा करने वाला पौदा' कहा है, लकिन हिन्दुस्तान की हकूमत के बदलते ही सब कुछ बदल गया। भारत में भारतीय सरकार न रही, जो यहाँ के हितों और धन्धों की चिन्ता करती। एक एक करके यहाँ सब धन्धे ख़तम हो गये और सारी आबादी को खेती पर ही गुजारा करने के लिए विवश कर दिया गया। हिन्दुस्तानी मल्लाह, जो यहाँ से इङ्गलेंड माल ले जाते थे, क़ानून द्वारा इङ्गलेंड के तटों पर उतरने से रोक दिये गये। यहाँ के भारी जहाजी व्यवसाय की एक कहानी मात्र रह गई। हिन्दुस्तान कृषिप्रधान देश है, व्यवसाय के लायक़ नहीं है, इसके पक्ष मे नई-नई दलीलें दी जाने लगीं। हमें यह भी कहा गया कि भारत का गरम जलवायु कपड़ा के व्यवसाय में बाधक है और हैरानी यह है कि बहुत से शिक्षित भारतीय इसपर विश्वास भी करने लग गये, लेकिन बम्बई, अहमदाबाद और दिल्ली आदि के, जहाँ तापक्रम ११७ तक

पहुँचता है, कारखानों की सफलता ने इस दलील की पोल सबके सामने खोल दी। अभी बहुत साल नहीं हुए, जबतक हिन्दुस्तानी कपड़े की सहायता देने के स्थान में हिन्दुस्तानी कपडे पर ३॥ फीसदी टैक्स हिन्दुस्तान में लगाया जाता था।

भारत खानों की दृष्टि से बहुत समृद्ध व सम्पन्न देश है। प्रकृति की इसपर बहुत अधिक कृपा है। विविध जलवायु और ऋतुओं के कारण सभी प्रकार के पौदे यहाँ होते हैं। बुद्धि और प्रतिभा की भी हिन्दुस्तान मे कमी नहीं है। आज के गिरे हुए जमाने में भी भारत सर जगदीश चन्द्र बोस, सर रमण और सर प्रफुल्लचन्द्र राय को पैदा कर सकता है। जिस देश में कच्चा माल सब क़िस्म का पैदा होता हो, लोहा, कोयला आदि सब प्रकार की धातुए काफी परिमाण में मिलती हों और जहाँ प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की कमी न हो, वहाँ व्यवसाय क्यों नहीं पनप सकता ? आज सरकार कहती है कि सरकार के लिए व्यवसाय का नियत्रण करना हानिकारक है, उसे सहायता देना व्यर्थ है और इसमें भाग लेना सार्वजनिक धन का दुरुपयोग है (स्टेट एएड इएडस्ट्री—सरकारी प्रकाशन) लेकिन क्या इङ्गलैंड की सरकार के लिए भी अपने देश में व्यवसाय का नियत्रण और सहयोग घातक और व्यर्थ था ? क्या इग्लैंड की सरकार ने भी इसे सार्वजनिक धन का दुरुपयोग समझा था ? यदि नहीं तो क्यों ? हिन्दुस्तान गुलाम है, उसके लिए जो चाहो कह दो, कोई पूछने वाला नहीं। दिक्कत तो यही है कि हिन्दुस्तानी भी इस समस्या को नहीं समझते और धड़ाधड खेतीको एकमात्र पेशा मानकर पहले से ही आधे पेट रहने वाले लोगों के भोजन को बाँटने में लगे हुए हैं।

प्राकृतिक सम्पन्नता

१८८१ ई० में खेती पर ५८ फीसदी आबादी गुजारा करती थी। इसके बाद से यह अनुपात लगातार बढ़ता

गया। १८६१ मे ६१ ०६ फ़ीसदी, १६०१ में ६६ ५ फ़ीसदी और १६२१ में ७१ ६ फीसदी लोग इस पर गुजारा करने लगे। १६३१ में यह सख्या ७२ ८३ फीसदी तक पहुँच गई, (लेकिन शाही-खेती कमीशन ने खेती पर गुजारा करने वालों को सख्या ७३ ६ फ़ीसदी बताई है) इसका अर्थ यह हुआ कि ३० सालों में खेती पर गुजारा करने वालों म ११ फीसदी की वृद्धि हुई, लेकिन दूसरी ओर विदेशों में खेती करने वालों की औसत सख्या लगातार घटती गई। डनमार्क में १८८० मे १६२१ में यह सख्या ७१ से ५७ फीसदी हो गई। फ्राँम में १८७६ से १६२१ में औसत कृषिजीविया की सख्या ६७ ६ से ५३ ६ तक और जर्मनी में १८७५ से १६१६ तक ६१ से ३७ ८ फीसदी तक घट गई। इग्लैण्ड म १८७१ मे ३८ २ फीसदी लोग खेती पर गुजारा करते थे, लेकिन १६२१ में सिर्फ २० ७ फीसदी रह गये। इन आँकडों मे स्पष्ट है कि जब भारत मे जमीन पर गुजारा करने वाले लगातार बढते गये, विदेशो में यह सख्या लगातार घटती गई। आखिर इसकी वजह? भारत-जैसा व्यवसायी देश क्यों खेती प्रधान हो गया और डेनमार्क, फ्राँस-जैसे देश उमी समय में क्यों व्यवसाय प्रधान हो गये? इस सवाल की गम्भीरता तब और भी बढ़ जाती है, जब हम देखते हैं कि हिन्दुस्तान में सब प्रकार का कच्चा माल पैदा होता है, सब प्रकार की धातुए मिलती हैं, मजदूरी बहुत तादाद में और बहुत सस्ती मिलती है। बुद्धि और प्रतिभा की भी कोई कमी नहीं। विदेशों की यूनिवर्सिटियों में भारतीय न केवल साहित्यिक विषयों म, बल्कि वैज्ञानिक विषयों में भी प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं।

जमीन पर भार

भारत में जमीन पर इतना अधिक बोझ लद गया है कि प्रति व्यक्ति जमीन का हिस्सा २ एकड़ भी नहीं मिल सकता। जो लोग भारत में वैज्ञानिक खेती के द्वारा समृद्धि

प्रति किसान कृषि क्षेत्र

की सलाह देते हैं, उन्हे नीचे लिखी तालिका से मालूम हो जायगा कि भारतीय किसानो के पास कितनी थोडी जमीन है। एग्रिकलचर जरनल आफ़ इण्डिया (१६२६) के अनुसार २२ फ़ीसदी के पास एक एकड या उससे भी कम जमीन थी, ३३ फ़ीसदी के पास १ से ५ एकड़ तक, २० फीसदी के पास ५ से १० एकड तक और सिर्फ़ २४ फीसदी के पास १० एकड से ज्यादा जमीन थी।

शाही-खेती कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार २२ ५ फ़ीसदी किसानो के पास १ एकड या उससे भी कम जमीन है, १५ फ़ीसदी के पास एक से २॥ एकड तक, १७ ६ फ़ीसदी के पास २॥ से ५ एकड तक और २० ५ फ़ीसदी किसानों के पास ५ से १० एकड़ तक जमीन है। बम्बई और बरमा को छोड़कर बाक़ी प्रान्तों में तो किसानों के पास इससे भी कम जमीन है। इन अंको की इग्लैंड के किसानो से तुलना करिये। इगलिस्तान में ११ फीसदी किसानों के पास १ से ५ एकड़ तक, ५ फीसदी के पास ५ से २० एकड तक, ६ ७ फीसदी के पास २० से २५ एकड़ तक, १६ फीसदी के पास ५० से १०० एकड़ तक, १४ ५ फीसदी के पास १०० से १५० एकड़ तक, २६ फीसदी के १५० से २०० एकड तक और २४ ७ फ़ीसदी के पास ३०० एकड से ज्यादा जमीन है। इग्लैंड में ५० फीसदी किसानों के पास ५० एकड से ज्यादा जमीन है, जब कि भारतमें ७६ फीसदी किसानों के पास १० एकड़ से कम है और इनमें से भी १५ ४ फ़ीसदी के पास १ एकड से भी कम जमीन हैं। ५० एकड तो एक फीसदी किसानों के पास भी न होगी।

पहले इतनी बुरी हालत न थी। डाक्टर मैन (Mann) खेती के डायरेक्टर ने पूना जिले का जो हाल लिखा है, उससे मालूम होता है कि १७७१ ई० में किसान के पास औसत जमीन ४० एकड़ होती थी, १८८१ में १७॥ एकड रह गइ और १६१४ में घटकर

जीवन, लेकिन इस चर्चा में हम अपने क्षेत्र से दूर चले गये। हमें तो घटनाओं की ओर ही देखना है। पहले जमाने में पैसे रुपये आदि सिक्कों का इस्तैमाल बहुत कम होता था। प्राय सब कारोबार चीजों के अदले बदले स होता था। सरकारी टैक्स भी पैदावार के एक भाग के रूप में ले लिया जाता था। आजकल की तरह उस समय यह न होता था कि चाहे फसल थोड़ी हो या भाव कम हो, सरकार अपना निश्चित कर नकदी में ले ले। आज तो उसे हर हालत में चाहे छोटी से छोटी चीज खरीदनी हो, चाहे सरकार को टैक्स देना हो, जमींदार को लगान देना हो, महाजन को सूद देना हो या कोई दूसरा खर्च करना हो, फसल कटते ही अपनी पैदावार बेचनी पड़ती है, चाहे भाव अच्छा हो या बुरा। इस तरह उसकी पैदावार का बडा भारी हिस्सा उससे ले लिया जाता है और अपना जरूरतों के लिए उसके पास बहुत कम रह जाता है। पहले वह समाज का एक स्वतन्त्र सदस्य था, लुहार, बढइ आदि अपने कारीगर को, अपना हिसाब रखने वाल पटवारी को और अपने चौकीदार को वह आजीविका दिया करता था, लेकिन आज वह इन सबका आश्रित हो गया है। गगा उल्टी दिशा म बहने लगी है।

आगे चलने से पहले आजीविका व जीवन-क्रम में अन्तर पर विचार कर लेना जरूरी है। यदि हम इस अन्तर को ठीक ठीक समझ लें, तो हम किसान की सच्ची हालत और कठिनाइयों को, जिनमें वह इस नये परिवर्तन के कारण फँस गया है, जान सकेंगे।

पेशे व जीवन क्रम में अन्तर

सक्षेप में जीवन-क्रम का अर्थ है समाज में स्वतन्त्रतापूर्वक रहने का वह तरीक़ा, जिसे मनुष्य नफ़े-नुक़सान का ख़याल छोडकर स्वाभाविक बुद्धि, स्वभाव व प्रथा के कारण अपनाता है। ऐसे जीवन क्रम के मूल में यह मुख्य भाव काम कर रहा होता है कि

अपने जीवन की आवश्यकताओं के लिए बिना किसी दूसरे पर निर्भर हुए अपनी जिन्दगी अच्छे से अच्छे तरीक़े से गुजारना। इस जीवन क्रम में पैसा कमा कर या विशाल सम्पत्ति का सग्रह करके अपनी जरूरतों को पूरा करना जीवन का उद्देश्य नहीं होता, बल्कि इसका असली उद्देश्य अपने समाज में सम्मान और प्रभाव की स्थिति प्राप्त करना होता है। प्राचीन काल में किसान ऐसा ही स्वतत्र जीवन व्यतीत करता था, जबकि उसे लगान या मालगुजारी नगदी में न देनी पडती थी और न अपनी चीजें जैसे-तैसे बेच कर कुछ रुपया एकत्र करने की जरूरत थी। वह मजे में अपनी जिन्दगी गुजारता था। उसे पैसा कमाने की या बाहरी दुनिया की जरा भी फ़िक्र न थी।

दूसरी ओर व्यापार को हम जीवन का एक क्रम कभी नहीं कह सकते। उदाहरण के तौर पर कल्पना कीजिए कि एक शख्स बहुत धनी है और किसी कारखाने या दुकान से हजारों रुपया पैदा कर रहा है, तथापि वह बहुत कंजूसी से गुजर करता है और अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की ओर क़तई ध्यान नहीं देता। इसका अर्थ यह हुआ कि कारखाने या दुकान से मिलने वाली भारी आमदनी का उसके जीवन के धरातल के बनाने में कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत यह हो सकता है कि रुपये की कमी की वजह से एक मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार अपनी जिन्दगी बसर न कर सकता हो, लेकिन इन दोनों सूरतों में मनुष्य के जीवन क्रम को निर्धारण करने में उसके व्यापार या आमदनी का कोई भाग नहीं है। लाखों रुपया कमाने वाला एक मारवाडी व्यापारी बहुत ही सादगी से रहता है, जबकि उससे कहीं कम कमाने वाला एक अंग्रेज बहुत शानो शौकत से रहता है। व्यापार का उद्देश्य ज्यादा-से-ज्यादा रुपया कमाना होता है और इसके लिए हमेशा ईमानदारी, सचाई

व नैतिकता नहा बरती जाती । यह हो सकता है कि एक व्यापारी अपने व्यापार में चाहे कितनी ही अनैतिकता से काम लेता हो, लेकिन अपने जीवन-क्रम में सादगी का अवतार हो। एक व्यापारी की सफलता का रहस्य है उसकी हिसाब लगाने वाली बुद्धि। वह बेरात-दरात हिसाब ठीक लगाने से क्षण में अमीर हो सकता है और दूसरे ही क्षण हिसाब में गड़बड़ी होने से वह कंगाल भी बन सकता है । किसी पदार्थ के मूल्य का निर्धारण करने वाली सब शक्तियों—बाजार की हालत, माँग, पैदावार, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थिति आदि के ज्ञान के बिना व्यापार नहीं हो सकता , लेकिन दूसरी तरफ जहाँ एक मनुष्य किसी विशेष जीवन क्रम को अपनाता है, वहाँ वह उसके आर्थिक पहलू से कोई वास्ता नहीं रखता । उसका उद्देश्य तो सिर्फ यह होता है कि खूब मिहनत करता जावे और अपनी आमदनी के मुताबिक अपनी जरूरतों को पूरा करे ।

पुराने जमाने का किसान हमेशा अपने स्वभाव से ही इस प्रकार का जीवन व्यतीत करता था । पदार्थों के मूल्य पर असर डालने वाली बाहरी ताक़तों से वह न कोई वास्ता रखता था, न उनकी चिन्ता करता था । ऐसे बहुत कम मौके आते थे, जब उसे अपनी पैदावार बेचनी पड़ती हो और अपनी जरूरत की चीजें खरीदनी पड़ती हों । उसके कारोबार में पदार्थों के नक़द मूल्य का कोई खास स्थान ही न था । उसका तो उद्देश्य सिर्फ इतना होता था कि वह इतना अनाज और इतनी रूई बो दे, जिससे कि सरकारी मालगुजारी देने के बाद उसकी निजी जरूरतें पूरी हो जायें । दुर्भिक्ष या संकट के लिए भी वह अपने कोठार में अनाज आदि बचा रखता था । अच्छी फ़सल के मौसम में वह कुछ ज्यादा चीजें भी खरीद लेता था । सरकारी मालगुजारी भी नगदी में न होने और कुल फ़सल का एक हिस्सा होने के कारण

उसकी आर्थिक स्थिति पर कोई प्रभाव न डालती थी। दूसरी चीजें भी वह द्रव्य विनिमय के द्वारा लेता था। वह कभी रुपयों-पैसा के रूप में अपनी जरूरतों को सोचता भी न था। सदियों से वह हर चीज को नगद के नहीं, बल्कि वस्तु विनिमय के दृष्टिकोण से देखने का आदी हो गया था।

लेकिन आज हालत बिलकुल बदल गई है। आज हर एक चीज रुपयों पैसों की कसौटी पर परखी जाती है। इसलिए वह बेचारा किसान अपने को बडी तकलीफ म पाता है। क़ीमतों का उतार-चढाव उसकी समझ से बाहर है और वह नयी आर्थिक व्यवस्था से घबराया हुआ सा है। वह तो सिर्फ अपने गाँव की माग और पैदावार के सादे नियम से वाक़िफ है। यदि गाँव में पैदावार बहुत बढ़िया होती थी, तो उसे अपनी अभिलषित वस्तु के लिए कुछ ज्यादा अनाज देना पडता था। यदि फसल खराब होती थी, तो कुछ कम अनाज देने से भी वह वस्तु मिल जाती थी। क़ीमतों का एक दूसरा नियम भी वह समझता था कि फसल कटने के समय बाजार में बहुतायत के कारण पदार्थों की अनाज के रूप में क़ीमत कम होती है और बीज बोने के समय क़ीमत ज्यादा, क्योंकि उन दिनों गाँव में अनाज क़रीब-क़रीब खतम हो जाता है। लेकिन आज वह क्या देखता है ? फसल अच्छी रहने पर भी क़ीमत चढी होती हैं और फसल खराब होने पर भी कीमतें गिर जाती हैं। दरअसल वह यह नहीं जानता कि बाजार का भाव महज उसके अपने गाँव की पैदावार पर निर्भर नहीं है। अब उसे यह भी अनुभव होने लगा है कि अगर वह अपनी पैदावार जमा करले और पीछे से यकायक क़ीमत गिर जावे, तो उसे सख्त नुकसान हो सकता है, क्योंकि अब दुनिया के तमाम हिस्से आपस में एक दूसरे से बिलकुल मिले हुए हैं और इसलिए किसी एक खास जगह की माग और

पैदावार पर ही क़ीमतें निर्भर नहीं हैं। किसान यह नहीं जानता कि माग और पैदावार के सिवा आयत निर्यातकर, देश का सिक्का, विनिमय दर, किराया आदि दूसरी भी कुछ ताक़तें क़ीमतों के उतार-चढाव का कारण होती हैं। क़ीमतों के उतार चढाव का सवाल इतना पेचीदा हो गया है कि बडे-बड़े अर्थ शास्त्री भी चक्कर में आ जाते हैं, एक अनपढ किसान की, जो अपने गाँव से कुछ मील परे भी नहीं गया, क्या बिसात है ?

लोगों का आम खयाल यह है कि उद्योग धन्धों के कारोबार में सफल होने के लिए क़ीमतों के उतार-चढ़ाव का सूक्ष्मता से निरीक्षण और हिसाबी योग्यता की आवश्यकता होती है, जब कि खेती के धन्धे में इन सब गुणों की जरूरत नहीं होती, इसे तो कोई भी अपना सकता है। न केवल भारत में, बल्कि अन्य विदेशों में भी निकम्मे अयोग्य किसान से भी उसका पेशा सुगमता से नहीं छुड़ाया जा सकता। यहाँ हर एक आदमी, जिसे कोई काम नहीं मिलता, खेती की ओर भागता है, चाहे वह खेती के सम्बन्ध में जानकारी रखता हो या न हो। जनता के नेता या सरकारी विशेषज्ञ किसानों को कोई अच्छी सलाह भी नहीं देते। सरकारी विज्ञप्ति किताबी बातें बताते तो हैं, लेकिन दरअसल उन्हें ख़ुद ही अनुभव नहीं होता। अनपढ किसान उनकी बातें सुन लेते हैं, लेकिन अन्दर ही अन्दर हसते हैं। वे समझते हैं कि इन अँग्रेजी पढे लिखे लोगों को सिवा बातें बनाने के कुछ आता ही नहीं। जरूरत इस बात की है कि सरकारी विशेषज्ञ नये बीज, नये औजारों और नये खाद आदि के बारे में कोरे उपदेश ही न दें, लेकिन ख़ुद हाथों में हल पकड़ कर कुछ समय तक खेती करें और नये आविष्कारों की उपयोगिता उन्हें अमल में लाकर दिखावें। यदि वे अपने प्रदर्शन में सफल हो गये, किसानों की पहुँच के साधनों में रहकर उन्होंने उतने खर्च में ज्यादा पैदा कर लिया तो किसान

खुद-ब-खुद नये आविष्कारों को अपनाने लगेगा।

आज खेती पेशे के तौर पर की जाती है। किसान अपनी जरूरतों को देखकर नहीं, लेकिन दुनिया के बाजार या जरूरतों को देखकर फसल बोता है। लेकिन इससे भी दुःख की बात यह है कि इस पेशे में नफा नहीं होता। और यदि कहीं होता भी है, तो इतना थोड़ा कि अच्छे समझदार योग्य आदमी खेती की ओर आकृष्ट ही नहीं होते। सब अयोग्य व्यक्ति, जो और किसी काम के लायक नहीं होते, खेती करने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि खेती में लाभ बिलकुल नहीं होता। यदि किसान बीज, सूद, हल, लगान, मालगुजारी, आदि सबका हिसाब लगावे, तो पता लगे कि उसे खेती में घाटा हुआ है। फिर वह नुक्सान के पेशे को क्यों अपनाता है? क्यों नहीं उसे छोड़ देता? उत्तर स्पष्ट है। खाली रहने और कुछ करते रहने में प्रत्येक मनुष्य कुछ-न-कुछ करना ही पसन्द करेगा, क्योंकि उसे यह उम्मीद रहती है कि स्यात इस वर्ष अच्छी पैदावार हो जाय। बिना पढ़ा लिखा आदमी यदि खेती न करे तो क्या करे? केन्द्रीय बैंकिंग इन्कायरी कमेटी की रिपोर्टसे मालूम होता है कि "यह बिलकुल साफ है कि ज्यादातर मामलों में किसान के लिए अपनी जमीन बेचकर सारा रुपया को ऑपरेटिव बैंक में जमा कर देना और स्वयं ४ आना दैनिक मज़दूरी का लेना ज्यादा फायदेमन्द है।" इस तरह हमारे विचार के अनुसार स्थितियों का वर्तमान परिवर्तन और किसान का अपने को उनके अनुकूल न बदल सकना बीमारी का कारण है। उसकी गरीबी का मुख्य कारण यह है कि किसान को हालतों से लाचार होकर खेती को पेशे के तौर पर करना पड़ता है, जिसके लिए वह बिलकुल अयोग्य है। हमारा यह कहने का अर्थ यह नहीं कि किसान बिलकुल बेवकूफ और फ़िजूलखर्च है, लेकिन हम पाठकों को यह बताना चाहते हैं

खेती के पेशे में लाचारी

कि किसी पेशे के लिए जो शिक्षा या अनुभव लेना पड़ता है, वह जीवन क्रम की शिक्षा से भिन्न है। खूब तजुर्बेकारी व मेहनत से की गई बढ़िया पैदावार वाली फसल के होते हुए भी यह सम्भव है कि फसल के चुनाव की गलती की वजह से किसान तकलीफ में रहे। इसी तरह जब अनाज को जमा रखने से लाभ होता हो, तब अनाज बेच देने से किसान तबाह हो सकता है। पेशे क नुक्तेनिगाह से ये दोनों बातें बहुत जरूरी हैं, लेकिन जब खेती जीवन-क्रम हो जाता है, तब इन दोनों चीजों का कोई महत्व नहीं रहता। किसान साधारण जीवन क्रम से जितना ज्यादा दूर होकर वर्तमान पेशे के जीवन की ओर जायगा, उतना ही वह अपने को अधिक गरीब या असहाय बना लेगा। हम आज यह उम्मीद नहीं कर सकते कि पुराने दिन फिर वापिस आवेंगे, लेकिन हम किसान को ठीक मार्ग बताकर उसकी सहायता जरूर कर सकते हैं, जिससे वह अच्छी तरह से जीवन-यापन कर सके।

भाग ३ : खेती पर प्रभाव डालनेवाले महत्वपूर्ण अन्य कारण

: १ :

खेती तथा दूसरे धन्धे

बहुत-से लोग खेती पर भी वही आर्थिक उसूल लागू करने की कोशिश करते हैं, जो वे दूसरे धन्धों पर करते हैं। यह एक बड़ी भारी भूल है। 'बिजिनैस मैन्स कमीशन' और 'रिपोर्ट आन एग्रिकलचरल क्रैडिट' में इस विषय पर बहुत विस्तार से विचार किया गया है। इनके लेखकों ने बताया है कि खेती दूसरे धन्धों जैसा धन्धा नहीं है। यह उनसे बहुत अधिक भिन्न है और इसलिए इसे उन आर्थिक उसूलों की कसौटी पर नहीं कसा जाना चाहिए, जिन पर बाक़ी धन्धों को कसा जाता है। खेती की दूसरे धन्धों से कुछ विशेषताएँ निम्न लिखित हैं —

दूसरे धन्धों में पूँजीपति और मजदूर जुदा-जुदा होते हैं, लेकिन खेती में किसान स्वयं मालिक भी है और स्वयं मजदूर भी। खेती में पूँजीपति व मजदूर के हित एक-दूसरे से इतने गुथे हुए होने से अर्थशास्त्री व क़ानून बनाने वाले पसो पेश में पड़ जाते हैं।

खेती और दूसरे धन्धों का दूसरा महान् अन्तर यह है कि वर्षा, आँधी, तूफ़ान, पाला, ओला, अनावृष्टि और कीड़ों की बीमारी आदि पर खेती बहुत निर्भर करती है। यद्यपि इन कारणों से होनेवाली हानि को वैज्ञानिक उन्नति से कुछ कम किया जा

सकता है, लेकिन प्रकृति पर खेती की निर्भरता को बहुत कम रोका जा सकता है। इस तरह खेती उन परिस्थितियों में करनी पड़ती है, जिन पर मनुष्य का बहुत कम बम चलता है और इसीलिए कृषिजन्य पदार्थों के मूल्य पर मनुष्य अच्छी तरह नियन्त्रण नहीं कर सकता।

दूसरे बड़े बड़े व्यवसायों में पूँजीपति परस्पर मिलकर अपने व्यवसाय को नष्ट होने से या अनुचित स्पर्धा से बचा सकते हैं, लेकिन खेती में लाखों और करोड़ों उत्पादक किसानों में ऐसा कोई सगठन होना असम्भव है। इसलिए वे प्रधान व्यावसायिक सगठनों से होने वाले लाभ नहीं उठा सकते। जिस तरह पूँजीपति भावी लाभ की आशा से कम्पनियाँ खड़ी करके लोगों को हिस्से खरीदने के लिए तैयार करते हैं, उस तरह किसान भावी लाभ की आशा से कम्पनी नहीं खड़ी कर सकता। उसे तो अपने बल-बूते के भरोसे पर ही सारा धन्धा चलाना पड़ता है। किसी धन्धे में सफलता प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि उस धन्धे का खर्च और आमदनी का बाक़ायदा हिसाब तैयार किया जाय। किसान को भी जानना चाहिए कि किसी फ़सल की पैदावार में उस कितना खर्च करना पड़ता है और कितनी आमदनी होती है, लेकिन खेती सबसे कठिन और पेचीदा धन्धा है, इसमें हिसाब रखना बहुत मुश्किल है। दूसरे धन्धों में पूँजीपति भूखा नहीं मरता, वह शुरू में ही इतनी पूँजी एकत्र कर लेता है कि कुछ समय तक वह मन खर्च बरदाश्त कर सके। वह अपने माल को तभी बेचता है, जब उसके दाम लागत से कुछ ऊँचे हों, लेकिन किसान को तो सरकारी मालगुजारी, ज़मींदार का लगान, महाजन का सूद आदि चुकाने तथा अपने खर्च पूरे करने के लिए एकदम अनाज बेचना पड़ता है। किसान अपनी मरजी से अनाज नहीं बेचता। जब खरीददार की मर्जी होती है तभी उसे अनाज

बचना पड़ता है, क्योंकि किसान गरीब होता है और खरीददार व्यापारी उसी समय खरीदना चाहेगा, जबकि हालत इसके लिए सबसे अधिक अनुकूल और किसान के लिए सबसे अधिक प्रतिकूल हो। किसान किसी भी आर्थिक सकट का थोडे समय तक भी मुक़ाबला नहीं कर सकता।

किसान के खेत पर उठने वाले दामों में और बाजार में फुटकर बिकने वाले दामों में बहुत अन्तर होता है। इसलिए जब कभी अनाज आदि के दाम चढ़ते भी हैं, तो दलाल और बीच के व्यापारी ही ज्यादा नफ़ा कमा लेते हैं। किसान को बहुत कम नफ़ा मिलता है। दूसरे धन्धों म थोक और फुटकर दामों में इतना अन्तर नहीं होता और बीच का दलाल बहुत नफ़ा अपने घर नहीं रख सकता।

दूसरे धन्धों में लागत कम करने के लिए अनेक तरीक़े काम में लाये जा सकते हैं। मशीनरी में सुधार करके माल की तैयारी कम समय में और ज्यादा मात्रा में की जा सकती है, लेकिन खेती तो भूमिविज्ञान और जीव शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाला विषय है। एक फ़सल के बोने और पकने में कुछ महीनों का नियत समय तो लगेगा ही। यदि वह पैदावार बढाता ह, तो दाम कम हो जायेंगे और फिर यह भी कोई भरोसा नहीं कि पैदावार बढाने के लिए किया गया खर्च हमेशा ही अपने से ज्यादा पैदावार लावेगा। यह हम पहले भाग के पहले अध्याय में देख चुके हैं। जब तक माँग न चढे या उत्पादक किसानों में काफ़ी कमी न हो, तबतक कृषि सम्बधी पदाथा के दाम बहुत नहा बढते, लेकिन खेती में लगे हुए करोडो किसाना में कमी करना असम्भव है। हजारों-लाखों निकम्मे और अयोग्य किसानों ने खेती का पेशा अपनाया हुआ है। उन्हें अलग करना कठिन है। इनकी वजह से फसलों के भाव ऊँचे नहीं होने पाते।

दूसरे धन्धों से खेती में एक बड़ा अन्तर यह भी है कि जह दूसरे धन्धों को विभिन्न समयों और परिस्थितियों के अनुसा एकदम ढाला जा सकता है, वहाँ खेती उतनी लचकीली औ सुगम नहीं है। उसे बदलने के लिए जरूरी समय लगेगा ही कारखानों में आज जिस माल की जरूरत है, उसे दो-ती दिनों या घण्टों में बनाया जा सकता है, लेकिन खेती में बोने व समय एक बार गुजर जाने पर तब्दीली असभव हो जाती है उसके लिए कुछ महीने इन्तजार करना ही पड़ेगा। कपड़े व माँग कम होने पर मिलमालिक एकदम कुछ मजदूर निकाल देग कुछ तकुए और साचे कम कर देगा। ऐसे समय में अक्सर व निकम्मे या कम योग्य मजदूरों को ही बरखास्त करेगा। किसान स्व मजदूर है, वह किसे निकाले? वह खेत को बो चुका है, उस पर खर्च कर चुका है, अब उसे कैसे छोड़े? शहर का निकाला हुआ मजदूर एकदम अपना नया पेशा ढूँढ सकता है, लेकिन गाँव के किसान के लिए अपना घर छोड़े बिना यह भी सभव नहीं।

सब बड़े-बड़े धन्धों मे मैनेजर, उत्पादक, मजदूर और विक्रेता आदि अलग अलग आदमी होते हैं, जो जिस काम में चतुर होता है, उसे वही काम दिया जा सकता है, लेकिन खेती में एक किसान ही पूँजीपति है, वही मजदूर है, वही उत्पादक है और वही बाजार में अपना माल बेचता है। उसे सब काम करने पडते हैं, चाहे वह सब कामों में होशियार हो, या न हो। खूब मेहनत से हल चलाने और बढ़िया खेती करने वाला किसान बहुत मुमकिन है कि व्यापारिक बुद्धि न रखता हो और इस तरह अच्छी पैदावार करके भी पैसा न कमा सके।

इन सबका प्रभाव खेती पर यह पड़ता है कि दूसरे धन्धों की अपेक्षा खेती का व्यवसाय आर्थिक दृष्टि से सफल नहीं होने पाता। यही कारण है कि इस अभागे देश में ही नहीं, बल्कि

संसार के तमाम मुल्कों में खेती ने कभी प्रतिभाशाली और महत्वाकांक्षी लोगों को अपनी ओर नहीं खींचा। खेती में न आराम आसायश की जिन्दगी है और न अच्छी आमदनी ही है। न खेती में पढे लिखे बाबुओं की सोसाइटी है और न आजकल की आजादी का-सा जीवन ही है। इसलिए दुनिया के तमाम मुल्कों का हाल यह है कि अच्छे अच्छे दिमाग खेती को छोड़कर दूसरे धन्धों में जा रहे हैं। भारत मे यद्यपि खेती पर गुजारा करने वालों की संख्या लगातार बढ रही है, तथापि यह भी उतना ही सच है कि हर एक पढा लिखा युवक देहाती-दुनिया को छोड़कर दूसरे शहरी धन्धों की फिक्र करता है। जिस धन्धे में दिमाग वाले आदमी शामिल नहीं होते, वह धन्धा कभी पनप नहीं सकता। यही हाल खेती का है। इसीलिए यह धन्धा कम योग्य और कम समर्थ आदमियों के हाथ में रोजमर्रा आता जाता है।

: २ :

जमीन काश्तकारी की व्यवस्था

खेती की विशेषताओं पर विचार करने के बाद हमें उन ताक़तों पर भी विचार करना चाहिए, जो खेती पर खास असर डालती हैं। इससे हम उन तरीक़ों पर भी विचार कर सकेंगे, जो किसान की दुर्दशा दूर करने के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

खेती पर असर डालने वाली शक्तियां

पिछले यूरोपियन महासमर के बाद बहुत से देशों ने खेती की उन्नति के तरीक़ों पर विचार करने के लिए कमीशनों व कमेटियों की नियुक्ति की थी। लड़ाई के दिनों युद्ध में भाग लेने वाले हर एक देश ने यह महसूस किया था कि दरअसल युद्ध में सफलता

या असफलता जीवन निर्वाह के लिए जरूरी भोज्य पदार्थों की कमी-बेशी पर निर्भर है। उस लम्बी लड़ाई में उन्होंने यह अनुभव किया कि वही देश जीत सके हैं, जो बहुत समय तक बिना किसी दूसरे देश का मुँह ताके अपना गुजारा कर सकते हैं। भोजन मनुष्य के जीवन के लिए जरूरी है और खेती से भोजन प्राप्त होता है, इसलिए स्वभावत ही सभी देशों का ध्यान भोजन पैदा करने वाले धन्धे की ओर खिंचा। उन्होंने इसकी जाँच की कि किस तरह से इस महत्वपूर्ण धन्धे को मजबूत व स्थायी बनाया जा सकता है। यद्यपि उन देशों के किसानो की हालत हिन्दुस्तानी किसानों से कहीं अच्छी थी, वे कहीं अधिक साधन-सम्पन्न थे, फिर भी वे इस नतीजे पर पहुँचे कि किसान की आमदनी किसी दूसरे धन्धे में लगे हुए उसी योग्यता, शक्ति और शिक्षा के मजदूर की बनिस्यत बहुत कम होती है। उन सबका बिना किसी मत भेद के यह निश्चय था कि खेती में अन्य धन्धों को देखते हुए सबसे कम आमदनी होती है, इसीलिए सब पढ़े लिखे, बुद्धिमान और योग्य आदमी खेती छोड़कर दूसरे धन्धे अख्तियार करते जा रहे हैं और देहातों की आबादी कम होती जाती है। ये बातें अर्थ शास्त्रियों व राजनीतिज्ञों को चौंका देने के लिए काफी थीं। इसलिए उन्होंने स्थिति का गम्भीर तथा विशद अध्ययन करके, बुराई का इलाज कर खेती को ज्यादा आकर्षक बनाने का निश्चय किया। उनके बताये हुए तरीकों पर हम आगे विचार करेंगे। उन्होंने जाँच करते हुए यह देखा कि कुछ ताकतें खेती पर बहुत असर डालती हैं। एग्रिकलचरल ट्रिब्यूनल आफ इंग्लैंड ने १६२४ ई० में जिन ऐसी मुख्य शक्तियों का जिक्र किया था, वे केवल इंग्लैंड में ही नहीं, दूसरे तमाम मुल्कों में भी उसी प्रकार लागू हैं। इसलिए अपने देश में ये शक्तियाँ किस तरह काम करती हैं, यह विचार कर लेना ठीक होगा। इस विवेचन

से हम यह भी जान सकेंगे कि किसान अपने भाग्य के निर्माता स्वय नहीं हैं। कई ताकतें, जो उनके काबू से बाहर हैं, जुदा-जुदा तरीकों से उनकी आमदनी पर असर डालती हैं। उक्त रिपोर्ट में खेती पर प्रभाव डालने वाली निम्न लिखित मुख्य शक्तियों की गणना की गई थी —

(१) जमीन को पट्टा देने के नियम, जिनमें छोटी-छोटी जोत का इन्तजाम भी शामिल हो।

(२) देश का आर्थिक सगठन और खास कर नकदी व टटकरों आदि से सरकार का खेती को सहायता देना।

(३) साधारण शिक्षा का प्रबन्ध, और खासकर खेती की शिक्षा और खोज का प्रबन्ध।

(४) खेती का आर्थिक सगठन, किसानों को खरीद फरोख्त की सुविधायें देना और कोऑपरेटिव सोसाइटियों के जरिये कर्जा देना व बीमा वगैरा का इन्तजाम।

(५) मवेशियों और फसलों की उन्नति के लिए योजनाए, पैदावार का दर्जा नियत करने व फालतू घास और कीडों को नष्ट करने के उपाय।

(६) रल, मोटर आदि याता-यात साधनों का सगठन, बिजली, बेतार की बर्की व वायरलैस मुहय्या करने का इन्तजाम, नये जगल लगाने की कोशिश, छोटे-छोटे घरेलू धधों की सहायता आदि।

(७) ऐसी सरकारी या गैर-सरकारी सस्थाएँ, जो कृषि सम्बन्धी नीति को केन्द्र व प्रान्तों में अमली जामा पहनावें।

हम हर एक विषय पर क्रम से अपने देश को मद्दे नजर रखते हुए विचार करेंगे।

जमीन काश्तकारी की व्यवस्था

जमीन देश की सम्पत्ति है और देश की समृद्धि इस पर निर्भर

है कि वह प्रकृति की इस देन को किस तरह इस्तेमाल करता है। इसलिए देश की समृद्धि के लिए यह सबसे जरूरी है कि जमीन को भिन्न भिन्न लोगों में बाँटने का बेहतर-से बेहतर तरीका अख्तियार किया जाय, ताकि देश उसका ज्यादा-से-ज्यादा अच्छा इस्तेमाल कर सके। अगर यह मान लिया जाय कि जमीन देश की सम्पत्ति है—*इसे न मानने का भी कोई प्रकट कारण नहीं दीखता*—तो फिर प्रत्येक देश का यह फर्ज हो जाता है कि वह प्रकृति की इस देन से ज्यादा-से-ज्यादा दौलत पैदा करने के उपाय काम में लावे। इङ्गलैंड के उक्त खेती-जाँच-कमीशन की रिपोर्ट में बिलकुल ठीक लिखा है कि "खनिज द्रव्य एक बार निकाल लेने के बाद समाप्त हो जाते हैं, लेकिन खेत में पैदा होनेवाली दौलत कभी खतम नहीं होती, बल्कि एक तरीक़े से हमेशा बढ़ती रहती है।" जमीन, क्योंकि कच्चा माल पैदा करने का अनंत भण्डार है और खेती सब व्यवसायों के लिए कच्चा माल मुहय्या करने का धन्धा है, इसलिए हरेक मुल्क का यह प्रथम कर्तव्य है कि इसकी ओर ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान दे। जमीन का बटवारा या पट्टा इस तरह का होना चाहिए कि किसान को यह विश्वास हो जाय कि पैदावार का बड़ा भाग उसीके पास बच रहेगा। यदि किसान यह अनुभव करता है कि लगान, मालगुजारी आदि विविध टैक्स देने के बाद उसके पास कुछ भी नहीं बचता या बहुत थोड़ा बच रहता है, तो उसका दिल खेती करने में न लगेगा। इसलिए प्रत्येक देश हितैषी का यह प्रधान कर्तव्य है कि वह यह देखे कि जो किसान जमीन पर हल चलाता है, खून पसीना एक करता है, उसे पैदावार का सबसे ज्यादा हिस्सा मिलना चाहिए। सारे देश को रोटी और कपड़ा देने वाला के जीवन-निर्वाह के प्रधान सिद्धान्त की जो देश उपेक्षा करता है, उसे समृद्ध होने की आशा ही छोड़ देनी चाहिए।

एक खेत से ज्यादा से-ज्यादा पैदावार करने की प्रेरणा किसान को देने के लिए सबसे जरूरी चीज यह है कि उस यह भरोसा रहना चाहिए कि उसे खेत से बेदखल न किया जायगा। जिस जमीन पर वह खेती करता है, उसमें उसकी दिलचस्पी रहनी चाहिए। सबसे बेहतर तरीक़ा तो यह है कि किसान हर क़िस्म की दस्तन्दाजी से निश्चिन्त रहे और साथ ही देश को भी यह अधिकार रहना चाहिये कि लापरवाह या निकम्मे किसान को अलग कर दे। पुराने सुनहले दिनों में, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, जमीन तमाम गाँव की होती थी और पचायत गाँव वालों में उसे बाँटती थी। पचायत को यह पूरा हक़ था कि वह निकम्मे किसान से जमीन लेकर उससे ज्यादा पैदा करने वाले किसी अच्छे किसान को दे दे। परिवार की जरूरतों के अनुसार किसी को ज्यादा जमीन देने का भी पचायत को हक़ था। जमीन सारे गाँव की है और सारे गाँव के हित में ही खेती की जानी चाहिये, यह भावना सबसे प्रधान थी। उन दिनों जमीन के बटवारे में निजी जायदाद का खयाल तक न था। उस समय न किसी को मौरूसी हक़ था और न बेदखली का डर। यह हक़ सिर्फ़ ग्राम पचायत को था। राजा को भी जमीन के प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार न था उसे तो अपने टैक्स या हिस्से से ही मतलब था। वह गाँव वालों को बाहरी हमलों से बचाने की गारन्टी देता था। इस सेवा के बदले उसे गाँव अपनी पैदावार का कुछ हिस्सा देता था।

बेदखली से वक़्फ़ी

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार राजा तक भी जमीन का मालिक नहीं होता है। महान् दार्शनिक जैमिनि लिखते हैं कि 'न भूमि स्यात् सर्वं प्रत्यविशिष्टवत्' (६-७-३) अर्थात् "राजा भूमि का दान नहीं कर सकता, क्योंकि जहाँतक उसकी मिलकियत का सम्बन्ध

जमीन का मालिक राजा नहीं

है, उनके लिए सब बराबर हैं।" इसपर टीका करते हुए शबर स्वामी लिखते हैं —

"जमीन की मिलकियत का जिस तरह बादशाह को हक़ है, उसी तरह सब लोगों का हक भी है। मिलकियत के सम्बन्ध में दोनों में किसी तरह का फर्क नहीं है। बादशाह होने की वजह से उसे सिर्फ इस बात का हक़ है कि जमीन की पैदावारों की हिफाजत के सिलसिले में पैदावार का एक वाजिबी हिस्सा ले ले।" तैत्तिरीय ब्राह्मण की टीका करते हुए सायण लिखते हैं कि—"यज्ञ में राजा को सिर्फ अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति दान देने का अधिकार होना चाहिए।" (१४७७) वे आगे लिखते हैं कि—"जमीन राजा की सम्पत्ति नहीं है, देश की जमीन दान में नहीं दी जासकती।" कवि कालिदास ने भी इसी भाव को निम्नलिखित सुन्दर शब्दों में रक्खा है —राजा किसानों से उनके हित में ही खर्च करने के लिए मालगुजारी लेता था, सूर्य भी तो जमीन से नमी इसलिए खींचता है कि उसे कई हजार गुणा करके वापिस कर सके।*

सबसे पहले अँग्रेजी राज में जमीन नीलामी के जरिये जमींदारों को काश्त के लिए दी गई और उन्हें जमीन का मालिक मान लिया गया। जब बंगाल में अँग्रेजी हुकूमत क़ायम हुई, तो वहाँ बहुत ही बुरे ढंग की जमींदारी क़ायम की गई। जमींदार और किसान के बीच कहीं कहीं चौबीस तक काम करनेवाले मध्यस्थ लोग पैदा कर दिये गये। जमीन का जो असली मालिक था, उसे मिलकियत से बिलकुल महरूम कर दिया गया। अवध में शुरू में तो जमीन काश्तकारों को दी गई, लेकिन बद किस्मती से

जमींदारी प्रथा का जन्म

---

* प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ रघुवंश—१ १८

कुछ अरसे बाद जमींदारी का तरीक़ा चालू कर तालुकेदारों को सनदें दे दी गई। काश्तकारी के इतिहास में जाना हमारा उद्देश्य नहीं है, लेकिन यह हम निस्संकोच और बिना प्रतिवाद के भय के कह सकते हैं कि आजकल की भूमिव्यवस्था का प्राचीन व्यवस्था से रत्तीभर भी सम्बध नहीं है। हिन्दुस्तान की वर्तमान भूमिव्यवस्था को दो भागों में बाँटा जा सकता है—जमींदारी और रैयतवारी। इन दोनो तरीक़ों में ख़ास फर्क़ यह है कि जमींदारी मे तो जमीन का मालिक ज़मींदार होता है और रैयतवारी म सरकार, अलबत्ता सरकार के दिये हुए पट्टे को किसान भी इसी तरह फरोख्त कर सकता है, जैसे ज़मींदार अपनी जमीनों को। ज़मींदार आमतौर पर अपनी जमीन को खुद काश्त नहीं करता, बल्कि लगान पर दूसरे काश्तकारों को उठा देता है। कुछ जमींदार खुद भी काश्त करते हैं, लेकिन ऐसी जमीनें बहुत थोडी हैं जिनको मालिक जोतता हो। ज्यादातर जमीनें किसानों के हाथ से निकलकर महाजनों के हाथ में जारही हैं, जिससे किसान की हैसियत मामूली काश्तकार की रह जाती है। इस बात के आँकडे नहीं मिलते, जिससे यह मालूम हो जाय कि कितना रक़बा जमींदार काश्त करते हैं और कितना गैरजमींदार। युक्तप्रान्त में २६,०२६,६०७ एकडो में सिर्फ ४८,२६,४६३ एकड़ सीर या खुद काश्त में दर्ज है। अवध मे ६८,६६,७७१ एकड़ो म सिर्फ ११,३४ ३६ एकड़ सीर व खुद काश्त में दर्ज हैं। फिर यह भी लोगों स छिपा नहीं है कि सीर का भी काफ़ी हिस्सा दूसरे काश्तकार काश्त करते हैं। रैयतवारी में भी हालत इससे अच्छी नहीं है। बहुत बडा रकबा शिकमी काश्तकार जोतते हैं। जिसके नाम पर पट्टा होता है, वह खुद-काश्त नहीं करता, बल्कि असली काश्तकार और कोई होता है। अक्सर बडे बडे पट्टेदार एक इंच भी जमीन खुद काश्त नहीं करते, बल्कि दूसरो को जमीन उठा देते हैं। पट्टेदारों

के पास जमींदारों की बनिस्बत खुद काश्त का रकबा ज्यादा होता है। जमींदारी और रैयतवारी दोनों सूरतों में असली काश्तकार जमीन का मालिक नहीं होता। यह ठीक है कि सरकार ने रैयत को मौरूसी हक़ दिया है और बेदखली के खिलाफ भी किसान को संरक्षण दिये हैं, लेकिन ऐसे संरक्षित किसानों का औसत बहुत कम यानी मुश्किल से ५० फीसदी से कुछ कम ही है। जो कानून बने भी हैं, उनकी लगातार अवहेलना की जारही है। बड़े पैमाने पर बेदखलियाँ करना और मनमाने ढंग पर लगान बढ़ा देना मामूली बात हो गई है। युक्तप्रान्त की १९३४ ३५ की रिपोर्ट के अनुसार आगरा-टैनैंसी एक्ट की रू से जहाँ १९३३ ३४ में १,६५,४६४ नालिशें और बेदखलियाँ हुई थीं, वहाँ १९३४ ३५ में उनकी संख्या १,७१,५७४ हो गई। पिछले वर्ष के मुकाबले में मुकदमों की संख्या ७३,३१८ से ७६,६५६ हो गई और जिस क्षेत्र में बेदखलियाँ हुई उसका विस्तार २१,४,०००से बढ़कर २३,१७,४४० एकड़ हो गया। अवध-रैण्ट-एक्ट की रू से भी नालिशों और दरख्वास्तों की संख्या ७०,०६५ से ७७,४१३ हो गई। अब काँग्रेसी सरकारें जो नये उपाय बरत रही हैं, उससे जाकर इस संख्या की वृद्धि में कमी हुई है और आगे कमी होने की संभावना है।

असली काश्तकार प्राय जमींदार या पट्टेदार को लगान अदा करता है। संभव है कि कुछ लोग यह खयाल करें कि किसान को

बहुत भारी लगान

अनुपात से लाभ ही होता होगा, लेकिन सचाई इसके विपरीत है। हम पहले भी कहीं लिख आये हैं कि जमीन की माँग ज्यादा होने से पट्टेदार या जमींदार एक किसान को दूसरे के मुकाबिले में खड़ा करके लगान बेइन्तिहा बढ़ा देते हैं। इसकी कोई रोकथाम नहीं है, क्योंकि सरकार जमींदार के लगान पर मालगुजारी नियत करती है। इसलिए वह यह तमाशा देखती रहती है और जब नये बन्दोबस्त

का वक्त आता है, अपनी मालगुजारी भी बढा देती है। सरदी-गरमी, वर्षा म दिन-रात एक करने वाले किसान को काश्तकारी का पेशा अख्तियार करने की सजा भुगतनी पडती है। न जमींदार उसपर रहम खाता है, और न सरकार को उसपर तरस आता है। पिछले कुछ सालों से सरकार ने जरूर लगानमें कमी की है, लेकिन लगान व मालगुजारी का नियम अब भी वही है। कॉंग्रेसी सरकार से यह उम्मीद की जाती है कि वह इस प्रथा को बदल देगी।

१८८० में दुर्भिक्ष-कमीशन ने क़ानून बनाकर लगान के नियत करने पर विशेष जोर दिया था और यह भी सिफ़ारिश की थी कि लगान में भी सिर्फ़ बन्दोबस्त के वक्त मालगुजारी के मुताबिक ही वृद्धि करनी चाहिए। कमीशन ने ११६ परिच्छेद में लिखा था कि—"हमारी राय मे पुराना तरीक़ा फिर अख्तियार करने से बहुत कुछ खराबियाँ दूर हो सकती हैं अर्थात् लगान भी सिर्फ़ मालगुजारी के साथ समय-समय पर बदला जाय। जो अफ़सर मालगुजारी नियत करता है, वही लगान भी मुकर्रिर कर दिया करे। लगान का नियत करना भी बन्दोबस्त अफसर का काम होना चाहिए। (दक्षिण भारत में यही तरीक़ा है) वही लगान की परिवर्तित सूची के आधार पर अनुपात से मालगुजारी नियत करे। इसलिए हम सिफारिश करते हैं कि भिन्न भिन्न प्रान्तो को यह योजना भारत सरकार के सामने पेश करनी चाहिए, बशर्ते कि उनकी सम्मति में ऐसा करने में जमीदारों के साथ अन्याय न हो। हमारी अपनी सम्मति में आमतौर पर यह तरीक़ा बहुत लाभकर होगा। "अगर यह सिद्धान्त मान लिया जाय तो बगाल में गालिबन तीस साल मे पहले लगान मे वृद्धि न होगी और इस्तमरारी-बन्दोबस्त की वजह से इसके बाद मालगुजारी तब-दील न होगी।" लेकिन सरकार ने इस योजना को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि फिर बन्दोबस्त पर लगान व मालगुजारी बढ़ाने

का मौका कैसे मिलता ? इसलिए जहाँतक जमीन के लगान का ताल्लुक़ है, किसानों की मौजूदा हालत बड़ी दर्दनाक है।

ज़मींदारी पद्धति में, जिसमें किसान खुद जमीन का मालिक नहीं होता, निम्नलिखित दोष हैं —

ज़मींदारी प्रथा के दोष

१—किसान का भूमि से कोई सम्बन्ध नहीं होता। उसे बेदखली या आमदनी की बजाय ज्यादा अनुपात से लगानवृद्धि का डर होता है, इसलिए वह भूमि की उन्नति में कभी दिलचस्पी नहीं ले सकता। भूमि की उन्नति में खर्च तो उसे करना पड़ता है और लगान वृद्धि के रूप में उसका लाभ जमींदार के पास चला जाता है, यद्यपि वह भूमि की उन्नति में न कोई सहायता करता है, न कोई खर्च। ऐसे आश्चर्यजनक उदाहरण भी कई मिलेंगे कि किसानों ने कुआँ खोदने की कोशिश की, या अपने खेत की हालत सुधारने के लिए उसी किस्म की और कोई कार्रवाई की, तो उसके खिलाफ अदालत में उसकी बेदखली की चाराजोई की गई।

२—किसान हमेशा जमींदार की दया पर जीता है और खासकर उस हालत में, जबकि जमींदार तमाम गाँव का मालिक हो या अपने इलाके में बहुत प्रभाव रखता हो। इससे किसान नैतिक दृष्टि से भी बहुत दुर्बल होजाता है। वह अपने को हमेशा निराश, दीन और तुच्छ प्राणी समझने लगता है।

३—जमींदार उचित या अनुचित तरीक़े से लगान बढ़ाने की कोशिश करता है। वह उस व्यक्ति के हित का जरा भी खयाल नहीं करता, जो हमेशा उसकी जेब भरता है। वह अपना स्वार्थ साधन करने के लिए दो को लड़ाकर हुकूमत करने की नीति पर अमल करता है। वह गाँव में मतभेद पैदा करता है, पार्टियाँ बनाता है। इस तरह वह गाँव के सामूहिक और प्रजातन्त्री-जीवन की जड़ काटता है।

४– किसान हमेशा अपनी आमदनी का बड़ा भाग जमींदार को देकर स्वयं गरीब रहता है। लगान के अलावा भी जमींदार किसान से बहुत सी दूसरी गैर क़ानूनी टैक्स या चंदे लेता है, जो मिलाकर किसान पर बहुत भारी भार होजाती है। इन गैर कानूनी लागों की संख्या पचासों तक जा पहुँची है। घोड़ा, बग्घी, हाथी, मोटर, शादी या अन्य घरेलू उत्सव, अफ़सरों की पार्टी आदि हरेक आवश्यकता के लिए अधिकाँश जमींदार किसानों पर टैक्स लगा देते हैं।

५–जमींदारी की प्रथा ने देश में एक ऐसी श्रेणी पैदा करदी है, जो दूसरों की कमाई पर गुजारा करने की आदी हो गई है। उसे अपनी खेती की उन्नति में जरा भी दिलचस्पी नहीं होती। सिर्फ़ लगान पर गुजारा करने वाले समाज में मुफ्तखोरों की संख्या बढ़ाती है। अगर ये लोग अपनी ताक़त का नाजायज इस्तेमाल करें या काश्तकारों पर जुल्म करना शुरू करें, तो समाज को बहुत नुक्सान पहुँच सकता है। ऐसी श्रेणी समाज या देश के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध होती है।

६–जमींदारी की प्रथा देश में दो ऐसी श्रेणियाँ बना देती है, जो आपसमें हमेशा एक दूसरे के विरुद्ध रहती हैं। इस विरोध व संघर्ष के फलस्वरूप लोग अपना समय और अपनी शक्ति दूसरे के बरखिलाफ मुकदमों व षडयन्त्रों में व्यतीत करने लगते हैं। जबतक जमींदार का जोर रहता है, किसान पर तरह-तरह के जुल्म व अत्याचार होते हैं। जहाँ उसका जोर या असर कुछ कम हुआ, किसान उसे तबाह या बरबाद करने की कोशिशों में लग जाता है। यह परस्पर का संघर्ष आज भी जारी है, और उस समय तक जारी रहेगा, जबतक दोनों खतम नहीं हो जाते।

७–किसान के पास अपनी साख के लिए कोई जायदाद नहीं होती। इसलिए उसे इतनी ज्यादा दर पर कर्ज लेना पड़ता है

कि जिसको खेती की आमदनी अदा नहीं कर सकती।

८—जमींदार अपने को असाधारण व्यक्ति समझने लगता है, इसलिए हाथ से काम करने में बेइज्जती मानने लगता है।

९—जब कभी दुर्भिक्ष पड़ता है, या फ़सल खराब हो जाती है, तो जमींदार उसे छिपाना चाहता है और मालगुजारी में कमी करने का विरोध करता है, क्योंकि मालगुजारी की कमी से लगान में भी, जो जमींदार का लाभ है, कमी हो जाती है। दूसरी ओर सरकार का भी इसी में लाभ है कि चाहे खेती अच्छी हो या बुरी, लेकिन जमींदार अपने निजी लाभ के खयाल से दुर्भिक्ष को स्वीकार न करें।

१०—हर तीस साल के बाद बन्दोबस्त होता है और मालगुजारी भी बढ़ जाती है। इसके साथ जमींदार को भी मालगुजारी के अनुपात में और कभी बगैर अनुपात के लगान बढ़ाने की इजाजत दे दी जाती है।

११—लगान या मालगुजारी मुकरिर करते समय सरकार का यह कर्तव्य है कि वह खेती की वास्तविक आमदनी के आधार पर महसूल लगावे, लेकिन बदकिस्मती से न तो जमींदार और न सरकार इस किस्म की जाँच-पड़ताल करते हैं, बल्कि मुकाबले से बढाये हुए लगान पर ही सरकारी मुहर लगा दी जाती है। इसका किसान की आर्थिक स्थिति पर बड़ा भीषण प्रभाव पड़ता है।

दुनिया के दूसरे देश बहुत पहले इन कठिनाइयों को हल कर चुके हैं और अन्त में इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि जमीन का मालिक होकर ही किसान अपने को सुरक्षित समझने लगता है। जमीन से उसे प्रेम हो जाता है, जो और किसी तरीक़े से नहीं हो सकता। उन्होंने यह भी देखा कि चाहे

विदेशों में किसान को जमीन का स्वामी कैसे बनाया गया?

को आपरेटिव सोसाइटी हो या किसानों की निजी अलग अलग खेती हो, इससे किसान की साख बढ जाती है। यूरोप के अधिकाश देशों में सरकारें किसानों को ऐसी सुविधाए देती रहती हैं कि वे जमीदारोंसे जमीन खरीद सकें। उदाहरण के तौर पर उन्हें ३ फी सदी सूद पर सरकार रुपया देती है, जिसे ३० या ६० सालोंके लम्बे अरसे में क़िस्तवार वसूल करती है। इस दिशा में डेनमार्क का इतिहास बहुत लाभकारी और शिक्षाप्रद है। बहुत से निरीक्षकों की सम्मति में डेनमार्क की समृद्धि का मुख्य कारण यही है कि वहाँ के किसान खुद जमीन के मालिक हैं। १८५०ई० में उन काश्तकारों की सख्या जो जमीन के मालिक न थे, ४२ ५ फ़ीसदी थी। १९०५ में यह सख्या घट कर सिर्फ़ १० फीसदी रह गई और आज ९० फ़ीसदी किसान अपनी जमीन के खुद मालिक हैं। इसकी तुलना जरा पजाब के आँकड़ों से करिये। १९११ में ज़मीन की आम दनी पर गुज़ारा करनेवालों की सख्या ६ लाख २६ हजार थी, जो १९२१ तक बढकर १० लाख ८ हज़ार तक पहुँच गई। हमने पजाब का उदाहरण इसलिए दिया है कि वहाँ क़ानून इन्तकाल आराज़ी लागू है और खेती का पेशा न करने वाली जातियो को जमीन बेची नहीं जा सकती। दूसरे सूबो की हालत तो इससे भी खराब होगी।

इग्लैंड में १९०८ से १९१४ के बीच थोड़ी-थोडी भूमि हासिल करने के कानून से किसानो को ज़मीन हासिल करने में बड़ी सहायता मिली है। १८४८ ईसवी में वहाँ 'किसानों के दोस्त' के नाम से एक बडी जबरदस्त राजनैतिक सस्था बन चुकी थी। इस सस्था ने ऐसे कानून पास कराने पर खास जोर दिया, जिनके कारण तालुकेदारों को अपने प्राचीन अधिकार किसानो को बेचने के लिए विवश किया जा सके। दूसरी ओर जमींदारों ने भी

हाथ आगे बढ़ाया। जमींदारों की एक संस्था ने जमींदारों को यह सलाह दी कि वह बड़ी खुशी से अपनी ज़मीनें काश्तकारों के हाथ बेच दें। १८६१ ई० में ऐसा कानून पास हो गया, जिसके कारण जमींदारों में खुद अपनी जमीनें बेचने का आन्दोलन शुरू हो गया, लेकिन इसके साथ ही यह भी ख्याल रखा गया कि किसानों को जमीन का इतना अधिक मूल्य न चुकाना पड़े कि वे हमेशा के लिए उस बोझ से दब जायँ। दूसरी तरफ यह भी ख्याल रखा गया कि ईरान की तरह उन्हें इतना भारी रकबा भी न दे दिया जाय, जिसका सम्भालना उनकी ताक़त से बाहर हो। यद्यपि यह क़ानून १८६६ तक चालू रहा, लेकिन इससे बहुत पहले ही यह अपना उद्देश्य पूरा कर चुका था। १८६१ से १८६० तक इस क़ानून की वजह से बहुत-सी जमींदारियाँ किसानों की सम्पत्ति बन गईं। १८६६ ई० में वह प्रसिद्ध क़ानून पास हुआ, जिसमें मालिकों की संख्या बढ़ाने का प्रसिद्ध सिद्धान्त सामने रखा गया था। इस क़ानून के अनुसार खरीदारों को जायदाद की (जिसमें मकान और सामान भी शामिल था) कुल क़ीमत का ६० फ़ीसदी रुपया सरकार कर्ज देती थी। नई भूमि की भी कीमत नियत करदी गई, कर्ज के चुकाने की शर्तें भी बहुत आसान थीं। पहले पाँच सालों तक सिर्फ ३ फीसदी सूद लिया जाता था। इसके बाद जबतक कुल रकम अदा न हो जाय, मूल धन के तौर पर ? फीसदी और लिया जाता था। १६०६ ई० के क़ानून के अनुसार सार्वजनिक हित की कम्पनियों को भी कर्ज दिया जाने लगा। ये कम्पनियाँ बड़ी-बड़ी जायदादें खरीदती थीं और उनके छोटे-छोटे टुकड़े करके काश्तकारों के हाथ फरोख्त कर देती थीं। कर्ज अदा हो जाने के बाद ये किसान की निजी जायदाद हो जाती थीं। इन्हें बेचने का अधिकार तो था, लेकिन और ज्यादा बटवारे का हक़ न था। १६१६ के क़ानूनों के

अनुसार सरकार को छोटे-छोटे जोत बनाने के लिए और भी जमीनों पर अधिकार मिल गया।

प्राय सभी देशों में खेती की उन्नति के लिए यह जरूरी समझा जाता है कि किसान स्वय अपने खेतों का मालिक हो। इसलिए जमींदारों से जमीनें कम कीमत पर प्राप्त करने की कोशिशें की गईं। इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड की तरह जर्मनी जैसे व्यवसाय प्रधान देश में भी यह कोशिश की गई कि जमीन का मालिक किसान हो जावे। इससे यह स्पष्ट है कि जो मुल्क अपनी खेती की उन्नति चाहते हैं, उन्हें जमीन का मालिक किसान को बनाने की नीति पर अमल करना चाहिए अन्यथा किसान की हालत कभी सुधर नहीं सकती।

दूषित भूमि-व्यवस्था खेती की उन्नति में भी बाधक है। उत्तराधिकार का प्रश्न आते ही मुकदमेबाजी शुरू हो जाती है। लगान और मालगुजारी का क़ानून इतना सीधा-सादा होना चाहिए कि वकीलों और अदालतों की खर्चीली सहायता के बिना भी उसे समझा जा सके। पटवारी-जैसे सरकारी नौकर को वास्तव में जनता का सेवक होना चाहिए, उसे आजकल जैसा रिश्वतखोर और शरारती नहीं होना चाहिए। हिन्दुस्तान जैसे अशिक्षित और दरिद्र देश में खास तौर पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि काश्तकारों को बिना किसी कारण परेशानी और फ़जूल खर्ची बरदाश्त न करनी पड़े। महकमा माल में काश्तकार का शिजरा और विरासतकी सूची मौजूद रहनी चाहिए, ताकि उत्तराधिकार का कोई नया प्रश्न उठने पर उससे सहायता ली जा सके। इन्तकाल आराजी और उत्तराधिकार के क़ानून इतने सरल, सुबोध और लोगों की भाषा में होने चाहिए, कि साधारण जनता उन्हें स्वय पढ़ और समझ सके।

: ३ :

देश की आर्थिक पद्धति और किसानों को सहायता

आम तौरपर लोगों का खयाल है कि कृषि जन्य पदार्थों के दाम उनकी कुल उपज और माँग पर निर्भर होते हैं। एक चीजकी पैदावार दुनिया में बहुत हुई, लेकिन उसकी जरूरत या माँग कम हुई, तो दाम कम हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि पैदावार कम हुई और माँग ज्यादा हुई, तो वह चीज महगी बिकने लगती है। ढुलाई के साधनों का भी मूल्य पर प्रभाव पड़ता है। हिन्दुस्तान से इंग्लैंड जाने वाला अनाज यदि जल्दी, सुरक्षित और कम किराये में पहुँच गया, तो दाम कम होंगे और यदि जहाज अच्छे न हुए, किराया बहुत लगा और दिन भी ज्यादा लग गये, तो दाम बढ़ जायँगे।

पदार्थों का मूल्य निर्धारण

मूल्य के निर्धारण का यह सिद्धान्त सच है, लेकिन दरअसल कुछ और ताकतें भी हैं, जो मूल्य निर्धारण पर खूब असर डालती हैं। कुछ साल हुए इङ्गलैंड में कृषि-जन्य पदार्थों की कीमतें स्थिर करने के लिए एक कमेटी नियत की गई थी। इसने पदार्थों की कीमत निर्धारण करने वाली सब शक्तियों की खूब जाँच की थी। उन अर्थशास्त्री विद्वानों की सम्मतियाँ अलग अलग उद्धृत न कर यही कहना काफी होगा कि प्राय सभी विद्वानों ने उस कमेटी के सामने गवाही देते हुए यह बात बड़े जोरों से कही थी कि—"जब देश में मुद्रा ज्यादा हो जाती है, तो वस्तुओं के दाम बढ़ जाते हैं। जब बैंक आफ इङ्गलैंड (इङ्गलैंड में यही बैंक नोट वगैरह निकालती है) ज्यादा नोट निकाल देती है, तो चीजें महगी बिकने लगती हैं और जब वह बहुत से नोट वापस ले लेती है, तो चीजें सस्ती हो जाती हैं। उस कमेटी सब गवाहियों पर विचार करने के बाद इस परिणाम पर पहुँची थी कि मुद्रा या सिक्के, नोट आदि की क्रय-शक्ति किसी और

शक्ति की अपेक्षा मूल्य निर्धारण पर अधिक प्रभाव डालती है।"

यह उन विशेषज्ञों की सम्मति है, जिन्होंने कृषि-जन्य पदार्थों के उतार-चढाव की जांच की है। भारतवर्ष के राजनैतिक नेताओं, व्यापारियों, अर्थशास्त्रियो और व्यवसायियों की भी यही राय है। वे एक अरसे से लगातार चिल्ला रहे हैं कि सरकार सिक्के की कीमत कृत्रिम रीति से चढाये रखना बन्द कर दे, लेकिन सरकार आज तक अपने उसी इरादे पर दृढ़ है। अनेक प्रान्तीय सरकारा ने भी रुपये की क़ीमत पर कृत्रिम कठोर नियन्त्रण के विरुद्ध अपनी सम्मति प्रकट की है, लेकिन केन्द्रीय सरकार की ज़िद अभी तक क़ायम है। १९२६ से १९३० तक के पाँच सालों में सरकार ने प्रचलित सिक्कों में ६६ करोड ६७ लाख रुपये की कमी कर दी। जब एक देश की सरकार बाजार में चलते हुए सिक्को को कम कर देती है, तो स्वभावत कृषि-जन्य पदार्थों के दाम भी गिर जाते हैं। भारतवर्ष स्वभावत बहुत बड़ी मात्रा में कच्चा माल बाहर भेजता है। इसलिए विदेशी व्यापारियों का लाभ इसी में है कि कृषि-जन्य पदार्थों की कीमतें कम रहें। यह चीज प्रचलित सिक्कों की संख्या कम करने से आसानी से हो सकती है। सिक्कों की कमी-बेशी से मूल्य पर कितना भारी असर पड़ता है, इसका अध्ययन करने वाले जानते हैं कि पिछले कुछ सालों में किसानों को बिना उनकी किसी गलती के सिर्फ इसी एक शरारत की वजह से करोडों रुपयों का नुकसान हो गया है। किसी स्वतन्त्र देश में किसी सरकार को इतनी आपत्तिजनक कार्रवाही इतने सालों तक जारी रखने की इजाजत नहीं जाती। अभी बहुत साल नहीं गुज़रे, जब कि इङ्गलैंड की सरकार ने अपने देश के लाभ के लिए स्वर्णमान छोड दिया था, तब हमारे रुपये को नाजाइज़ तौर पर उसके साथ बाँध दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि

भारत सरकार की मुद्रा-नीति

रुपया बढ़ जाने से कृषि-जन्य पदार्थों की कीमतें भी कृत्रिम तौर पर ऊँची हो गई। भारत का अपनी मुद्रा-नीति पर कोई अधिकार नहीं है और न वह भारतीय हित को सामने रखकर ही नियत की जाती है। भारत के सब व्यापारी एक स्वर से यह माँग पेश कर रहे थे कि मुद्रा व विनिमय पर नियन्त्रण के लिए रिज़र्व बैंक खोला जाय, लेकिन सरकार ने उस पर कतई ध्यान नहीं दिया। जब केन्द्रीय असेम्बली में १६२८ में रिजर्व बैंक बिल पेश हुआ, तब भी सरकार ने इस बात पर बहुत आग्रह किया था कि बैंक पर असेम्बली का प्रभाव न हो। सरकार ने यह बिल वापस ले लिया और फिर पेश न किया। अब नये विधान के अनुसार १ अप्रैल १६३५ से रिजर्व बैंक कायम किया गया है, लेकिन उस पर असेम्बली के लोक प्रतिनिधियों का कोई नियन्त्रण नहीं रहगा। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार है कि वह अपनी समझ के अनुसार रिज़र्व बैंक के गवर्नर और डिप्टी-गवर्नर को नियुक्त करे या हटाये, डायरेक्टरों के केन्द्रीय बोर्ड को स्थगित करे या उसका दिवाला तक निकाल दे। "फैडरेशन के लिए सिक्का या नोट, विनिमय-दर अथवा रिजर्व बैंक के विधान व कार्यक्रम के सम्बन्ध में कोई संशोधन या बिल पेश करने के लिए पहले गवर्नर जनरल की मंजूरी लेना आवश्यक होगा।" इसका परिणाम यह होगा कि बैंकों और कल-कारखाना के लिए सारे देश की बैंक संस्थाओं पर सरकार का पूरा कब्ज़ा हो जायगा।

विनिमय-दर का भी प्रश्न कम महत्वपूर्ण नहीं। तमाम दुनिया में सोना विनिमय का माध्यम माना जाता है। शायद ही दुनिया में कोई ऐसा मुल्क हो, जिसमें चलन के लिए और विदेशों के सिक्के तब्दील करने के लिए सोने का सिक्का चालू न हो। अगर सोने का सिक्का जारी हो तो उसकी विनिमय-दर कृत्रिम रूप से नियत करने की जरूरत नहीं रहती। हिन्दुस्तान इस मामले में भी बहुत

बदकिस्मत है। भारत सरकार ने कई बार यहाँ सोने का सिक्का जारी करने का वायदा किया, लेकिन कभी स्थायी तौर पर जारी नहीं किया। हमें खूब अच्छी तरह याद है कि एक बार सोने का सिक्का जारी कर वापस ले लिया गया। एक-न-एक बहाने से हिन्दुस्तान को सोने के सिक्के से वंचित रखा जा रहा है और सोने की भी कृत्रिम कीमत स्थायी रखने की कोशिश की जाती है। अगर भारत सरकार का इरादा यहाँ सोने का सिक्का चालू करने का नहीं है, तो विनिमय-दर चाँदी के मूल्य पर निर्भर रहना चाहिये, न कि सोने के मूल्य पर, लेकिन मजा यह है कि यह भी नहीं किया जाता। रुपये की दर ज्यादा-से-ज्यादा ऊँची रखने की कोशिश की जाती है और इस तरह हिन्दुस्तान के सब साम्पत्तिक स्रोतों को बरबाद किया जा रहा है। सारा देश रुपये की दर १ शि० ४ पेन्स करने के पक्ष में है, लेकिन सरकार १ शि० ६ पेन्स की दर रखने पर अड़ी हुई है।

इसका परिणाम यह होता है कि किसानों को जबर्दस्ती अपनी सब चीजें कम दामों पर बेचने के लिए विवश होना पड़ता है। जब इङ्गलैंड ने स्वर्णमान छोड़ दिया, तब रुपये को भी उसके साथ बाँध दिया गया। उसे स्वतंत्र रखने से इङ्गलैंड की चीजें हिन्दुस्तान में आसानी से सस्ते में न आ सकतीं। आज भी इङ्गलैंड के सिक्के पौंड की विनिमय दर १३≈) है और इसी भाव से इङ्गलैंड की सब चीजें हिन्दुस्तान आती हैं। दूसरी ओर हिन्दुस्तान को इङ्गलैंड से भिन्न विदेशों के सामान की क़ीमत में [illegible] एक पौण्ड के बदले में २०) रुपये देने पड़ते हैं। इस तरह भारत को गैरब्रिटिश माल के लिये ६)रु० प्रति पौण्ड जबर्दस्ती ज्यादा देने पड़ते हैं। यदि रुपये को पौण्ड की पूछ मे न [illegible] दिया जाता, तो ऐसा न होता। इस तरह हिन्दुस्तान [illegible] जाता है कि गैरब्रिटिश माल के लिए ज्यादा [illegible]

ब्रिटेन से माल मगावे। अगर रुपये को पौण्ड के साथ न बाँध दिया जाता तो यह हालत न होती। इसी तरह इसी विनिमय-दर के कारण कृषि जन्य पदार्थों की कीमत इङ्गलैंड के अलावा दूसरे मुल्कों से कम मिलती है यानी एक पौण्ड के एवज में हिन्दुस्तान १३≡) का माल इङ्गलैंड को और बीस रुपये का माल दूसरे देशों को देता है, मिलता दोनों सूरतों में एक पौण्ड है। लेकिन इसके एवज में इङ्गलैंड को कम माल जाता है और दूसरे देशों को ज्यादा। इस तरह हमें इङ्गलैंड से ही व्यापार करना पड़ता है, चाहे वह हानिप्रद हो या फायदेमन्द। इस तरह पद-पद पर कृषि-जन्य पदार्थों की क़ीमतों के बारे में हमें कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसका नतीजा यह होता है कि कीमतें बुरी तरह गिरती जाती हैं। सरकार इस कृत्रिम विनिमय-दर को क़ायम रखने के लिए इतनी उत्सुक है कि नये विधान में भी विनिमय-दर के निर्धारण का अधिकार फेडरल असेम्बली को नहीं दिया गया। दूसरे राष्ट्रों ने इस सम्बन्ध में कैसा कदम उठाया और भारत सरकार ने उसके मुक़ाबले में कैसा, इसका विवेचन हम आगे करेंगे।

कृषि-जन्य पदार्थों के मूल्य पर एक और कारण से भी बुरा प्रभाव पड़ता है। सरकार ऊँचे दर पर कर्ज़ लेती है। इस तरह मुल्क का ज्यादातर रुपया सरकारी ख़ज़ाने में चला जाता है। यह न तो नये व्यवसायों में काम आ सकता है और न खेती की उन्नति में इस्तेमाल होता है। कर्ज लेते समय ज्यादा सिक्के भी जारी नहीं किये जाते। न यही लिहाज किया जाता है कि फ़सल कटते वक्त जबकि खुद किसान को ज्यादा रुपये की ज़रूरत होती है, कर्ज न लिया जाय। अगर ऐसे ख़ास मौक़े पर चलता हुआ रुपया सरकारी कर्ज की सूरत में जमा कर लिया जाय, और इस तरह सूद-दर बढ़ा दी जाय, तो यह स्वाभाविक ही है कि

कृषि जन्य पदार्थों की क़ीमतें बहुत गिर जावें। इसी तरह सरकार का यह भी फ़र्ज़ है कि फसल कटते समय रुपये की तादाद ज्यादा बढ़ादे, जिससे कम रुपया होने की वजह से किसान को कम दाम न मिलें, लेकिन हिन्दुस्तान की सरकार यह ख़याल नहीं करती।

इन आर्थिक प्रश्नों के सिवा तटकर और सरकारी सहायता भी पैदावार के मूल्य की दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। जब किसी ख़ास चीज़ को देश में पैदा करने की इच्छा हो, तब उत्पादक को ठोस सहायता देने से उसमें जरूर सफलता मिलती है। जर्मनी ने उत्पादकों को भारी सहायता देकर ही चुकन्दर की खेती में सफलता प्राप्त की। हिन्दुस्तान का चीनी-व्यवसाय बाहर की सहायता प्राप्त चीनी के कारण ही नष्ट हुआ। कुछ साल हुए, ब्रिटिश सरकार ने भी इंग्लैण्ड में गन्ने की खेती को प्रोत्साहन देने के लिए किसानों को सहायता दी थी। यह ठीक है कि इंग्लैण्ड अपने जलवायु के कारण पर्याप्त चीनी पैदा करने में समर्थ न होगा, लेकिन फिर भी अँग्रेज आत्म निर्भर होने के लिए ज्यादा भी ख़र्च करने को तैयार हैं। ब्रिटिश सरकार ने १९२४ ई० में चीनी सहायता क़ानून बना कर चीनी के प्रत्येक उत्पादक को भारी सहायता देनी शुरू की। १२ सितम्बर १९२४ से १ अक्टूबर १९२८ तक चीनी तैयार करने वाले को ८।। से १९।। शिलिंग प्रति हंडरवेट तक, १२ सितम्बर १९२८ से १ अक्टूबर १९३१ तक चीनी उत्पादक को १३ शिलिंग से ६ शि० ५ पेंस तक और ३० सितम्बर १९३१ से १ अक्टूबर १९३४ तक चीनी उत्पादक को ६।। शि० से ३ शि० तक इस क़ानून के अनुसार सहायता दी गई। भारतीय माप-तोल के हिसाब से पहले ४ साल चीनी उत्पादक को ६) रु० प्रति मन बढ़िया चीनी और ४) रु० घटिया चीनी पर सहायता दी गई। इन शर्तों पर कोई

किसान को सरकारी सहायता

भी हिन्दुस्तानी उत्पादक जावा के कारखानों से अच्छी तरह मुक़ाबला कर सकता था। जापान की सरकार भी इसी तरह अपने देश में चीनी उत्पादकों को भारी सहायता दे रही है। शुरू में यह सहायता बीज के खर्च, खाद के खर्च, खेती के खर्च और चानी तैयार करने के कारखानों के खर्च पर भी दी गई। इस क़ानून में पीछे से तबदीली हुई। वर्तमान चीनी सहायता क़ानून का सारांश निम्न लिखित है —

१–जिस शख्स के पास अपना निजी गन्ने का खेत हो और मशीनों से चीनी बनाता हो, सरकार उसे बीज मुफ्त में देगी।

२–गन्ने के खेतों में सिंचाई करने और नालियाँ बनाने के आधे खर्च सरकार स्वयं बरदाश्त करेगी और इस सिलसिले में जिन मशीनों व औज़ारों की जरूरत होगी, वे सरकार स्वयं कर्ज पर या मुफ्त देगी। सहायता की कुल रकम १५००० येन से ज्यादा न होगी।

३–सरकार जिसे उचित समझेगी, उसे चीनी की मशीनें व औजार काम के लिए देगी।

विदेशी चीनी के आयात पर भी भारी तट-कर लगाये गये। जहाँ तक हमारा ज्ञान है हिन्दुस्तान के किसान को किसी भी कृषि जन्य पदार्थ की तैयारी के सिलसिले में कभी कोई सहायता नहीं दी गई। सरकार ने यद्यपि करोड़ों रुपया चीनी पर तट-कर द्वारा प्राप्त किया, लेकिन इस जरूरी व्यवसाय की उन्नति के लिए कभी थोड़ी-सी भी रकम खर्च नहीं की गई।

विदेशी माल पर तट-कर लगा कर भी खेती की बहुत सहायता की जा सकती है। इंगलैण्ड हमेशा मुक्त द्वार नीति का पोषक

विदेशों में तट-करों से किसान की सहायता

बनने का दावा करता रहा है और हिन्दुस्तान को भी उसने यही पाठ पढ़ाया है। अर्थ शास्त्र के विद्यार्थी को यह अच्छी

तरह मालूम है कि जब इंग्लैंड ने मुक्त-द्वार नीति का समर्थन किया, तबतक वह व्यवसाय प्रधान देश बन चुका था। उसने अपने उद्योग धन्धों की जड़ें बहुत मजबूत कर ली थीं। कुछ स्वदेशी भावना और कुछ व्यावसायिक उन्नति के कारण इङ्गलैंड किसी भी दूसरे देश से व्यापारिक प्रतिस्पर्धा मजे मे कर सकता था। इंग्लैंड एक छोटा-सा द्वीप है, उसे अपने जीवन निर्वाह के लिए भोजन सामग्री और कारखानों के लिए कच्चे माल की जरूरत थी। दूसरी ओर उसे अपने तैयार माल को बेचना था। इसलिए उसका लाभ इसी में था कि दुनिया को मुक्त व्यापार का उपदेश दे। इंग्लैंड ने मुक्त-द्वार को सत्यता और न्याय के नाम पर नहीं अपनाया। यदि उसे मुक्त-द्वार के औचित्य पर अटूट विश्वास होता, तो वह भारतीय माल पर उन दिनों क्यों भारी भारी तट-कर लगाता ? और आजभी वह क्यों तट-कर नीति का समर्थन कर रहा है ? कारण स्पष्ट है कि इंग्लैंड के वस्त्र-व्यवसाय की उन्नति के लिए भारतीय उद्योग धन्धों को नष्ट करना जरूरी था और आज दूसरे व्यवसाय प्रधान देशों से, जो पिछले सालों में एक-दम चकाचौंध कर देने वाली तरक्की कर गये हैं, जबर्दस्त मुकाबला आ पड़ा है। आज फिर इंग्लिस्तान अपनी पुरानी नीति छोड़ कर वाणिज्य-रक्षा के सिद्धान्तको अपना रहा है।

जर्मनी में किसानो की सहायता के लिए तट-कर नीति का बहुत सहारा लिया गया। 'एग्रिकलचरल ट्रिब्यूनल आफ इनवेस्टिगेशन' से मालूम होता है कि—१८७९ तक मुक्त-द्वार की नीति का समर्थन करने के बाद जर्मनी ने भी तट-कर नीति को अपना लिया। १८७९ मे विदेशी अनाज के आयात पर थोड़े से तट कर लगाये गये, लेकिन जब इससेभी काम न चला और दाम गिरते ही गये, तब १८८५ में तट-कर बढ़ा दिये गये। १८८७ में तट-करों की दीवार और भी ऊँची करदी गई। तटकर कितने

भी हिन्दुस्तानी उत्पादक जावा के कारखाना से अच्छी तरह मुकाबला कर सकता था। जापान की सरकार भी इसी तरह अपने देश में चीनी उत्पादकों को भारी सहायता दे रही है। शुरू में यह सहायता बीज के खर्च, खाद के खर्च, खेती के खर्च और चीनी तैयार करने के कारखानों के खर्च पर भी दी गई। इस क़ानून में पीछे से तब्दीली हुई। वर्तमान चीनी सहायता क़ानून का सारांश निम्न लिखित है —

१–जिस शख्स के पास अपना निजी गन्ने का खेत हो और मशीनों से चीनी बनाता हो, सरकार उसे बीज मुफ्त में देगी।

२–गन्ने के खेतों में सिंचाई करने और नालियाँ बनाने के आधे खर्च सरकार स्वयं बरदाश्त करेगी और इस सिलसिले में जिन मशीनों व औजारों की जरूरत होगी, वे सरकार स्वय कर्ज पर या मुफ्त देगी। सहायता की कुल रकम १५००० येन से ज्यादा न होगी।

३–सरकार जिसे उचित समझेगी, उसे चीनी की मशीनें व औजार काम के लिए देगी।

विदेशी चीनी के आयात पर भी भारी तट-कर लगाये गये। जहाँ तक हमारा ज्ञान है हिन्दुस्तान के किसान को किसी भी कृषि-जन्य पदार्थ की तैयारी के सिलसिले में कभी कोई सहायता नहीं दी गई। सरकार ने यद्यपि करोड़ों रुपया चीनी पर तट-कर द्वारा प्राप्त किया, लेकिन इस जरूरी व्यवसाय की उन्नति के लिए कभी थोड़ी-सी भी रकम खर्च नहीं की गई।

विदेशी माल पर तट-कर लगा कर भी खेती की बहुत सहायता की जा सकती है। इंगलैण्ड हमेशा मुक्त-द्वार नीति का पोषक बनने का दावा करता रहा है और हिन्दुस्तान को भी उसने यही पाठ पढ़ाया है। अर्थ शास्त्र के विद्यार्थी को यह अच्छी

विदेशों म तट-करों से किसान की सहायता

तरह मालूम है कि जब इंग्लैंड ने मुक्त द्वार नीति का समर्थन किया, तबतक वह व्यवसाय प्रधान देश बन चुका था। उसने अपने उद्योग धन्धों की जड़ें बहुत मजबूत कर ली थीं। कुछ स्वदेशी भावना और कुछ व्यावसायिक उन्नति के कारण इङ्गलैण्ड किसी भी दूसरे देश से व्यापारिक प्रतिस्पर्धा मजे में कर सकता था। इंग्लैंड एक छोटा सा द्वीप है, उसे अपने जीवन निर्वाह के लिए भोजन सामग्री और कारखानों के लिए कच्चे माल की जरूरत थी। दूसरी ओर उसे अपने तैयार माल को बेचना था। इसलिए उसका लाभ इसी मे था कि दुनिया को मुक्त व्यापार का उपदेश दे। इंग्लैंड ने मुक्त-द्वार को सत्यता और न्याय के नाम पर नहीं अपनाया। यदि उसे मुक्त-द्वार के औचित्य पर अटूट विश्वास होता, तो वह भारतीय माल पर उन दिनों क्यों भारी भारी तट कर लगाता ? और आजभी वह क्यों तट-कर नीति का समर्थन कर रहा है ? कारण स्पष्ट है कि इ ग्लैण्ड के वस्त्र-व्यव साय की उन्नति के लिए भारतीय उद्योग धन्धों को नष्ट करना जरूरी था और आज दूसरे व्यवसाय प्रधान देशों से, जो पिछले सालों में एक-दम चकाचौंध कर देने वाली तरक्की कर गये हैं, जबर्दस्त मुकाबला आ पडा है। आज फिर इंग्लिस्तान अपनी पुरानी नीति छोड कर वाणिज्य-रक्षा के सिद्धान्तको अपना रहा है।

जर्मनी में किसानों की सहायता के लिए तट-कर नीति का बहुत सहारा लिया गया। 'एग्रिकलचरल ट्रिब्यूनल आफ इनवैस्टिगेशन' से मालूम होता है कि—१८७६ तक मुक्त-द्वार की नीति का समर्थन करने के बाद जर्मनी ने भी तट-कर नीति को अपना लिया। १८७६ म विदेशी अनाज के आयात पर थोड़े से तट कर लगाये गये, लेकिन जब इससेभी काम न चला और दाम गिरते ही गये, तब १८८५ मे तट-कर बढा दिये गये। १८८७ में तट करों की दीवार और भी ऊँची करदी गई। तटकर कितन

ज्यादा बढ़ाये गये, यह नीचे की तालिका से मालूम होगा —

एक मैट्रिक टन पर मार्कों में तट-कर

	गेहूँ	देवगन्धम*	जौ	जई (Oats)
१ १० १८७९ से ३० ६ १८८५ तक	१०	१०	५	१०
१ ७ १८८५ से २५ ११ १८८७ तक	३०	३०	१५	१५
२६ ११ १८८७ से ३१ १ १८९२ तक	५०	५०	४०	४०

गेहूँ पर शिलिंगों के हिसाब से प्रति क्वार्टर (लगभग १४ सेर) पर निम्नलिखित तट-कर था —

१८७९ में	२ शि० २ पे०
१८८५ में	६ ,, ६॥ पे०
१८८८ में	१० ,, १०॥ पे०
१८९२ में	७ ,, ७॥ पे०

लेकिन १९०६ में तट कर ११ शि० १० पे० तक बढ़ा दिये गये। उक्त ट्रिब्यूनल ने जर्मनी के तट-करों पर विचार करने के बाद मुक्त कण्ठ से यह स्वीकार किया है कि "इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि जर्मनी अपने किसानों को खेती पर रखने में बहुत सफल हुआ। कृषि अर्थ शास्त्र के विद्वानों की यह राय है कि इस सिलसिले में तट-करों से भी खूब सहायता मिली।" फ्रांस में भी यही हुआ। उक्त रिपोर्ट में भी यह बात इन शब्दों में स्वीकार की गई है —

"फ्रांस के अर्थ शास्त्रियों की इस राय से मतभेद रखने का कोई कारण नहीं दीखता कि यदि फ्रांसीसी किसान को तबाह

* निकम्मी क़िस्म का गेहूँ (Rye), जिसकी खेती जर्मनी में गेहूँ से तिगुनी होती है।

करने वाली प्रतिस्पर्धा मे न बचाया जाता, तो वह इस काबिल न रहता कि सहयोग या विज्ञान से लाभ उठा सके।" फ्रांस के राजनीतिज्ञ डेशनल (Deschannel) ने १८६१ में ठीक ही कहा था—"लोग कहते हैं कि खेती का सच्चा हल चुंगीघर नहीं, साइंस है। हो सकता है, यह सही हो, लेकिन चुंगीघर ही तो विज्ञान के लिए दरवाजा खोलता है। विज्ञान की समस्त उन्नति चुंगी पर ही निर्भर करती है।" इससे पाठको को मालूम हो गया होगा कि इङ्गलैंड, जर्मनी और फ्रांस जैसे महत्वपूर्ण देशों में भी किसान को बचाने के लिए काफी कोशिशें की गई। जर्मनी के राजनीतिज्ञों का यह सिद्धान्त है कि अपने देश में जिन चीजों की जरूरत हो, उन्हें बिना तट-कर के (या बहुत कम कर लगा कर) अपने देश में आने देना चाहिए। वे इस बात का खूब खयाल रखते हैं कि कोई चीज तैयार माल के रूप में उनके देश में बिना भारी तट-कर दिये न पहुँच जावे। वे यह अनुभव करते हैं कि यदि कोई भोजन-सामग्री बाहर से मगानी पडे, तो कम-से-कम उसकी तैयारी पर जो कुछ खर्च हुआ हो, वह तो अपने कारीगर या मजदूर भाइयों की जेब में जावे। वे गेहूँ पर ३ शि० ६ पेंस प्रति हंडरवेट चुंगी लगाते हैं, लेकिन गेहूँ के आटे पर ६ शि० ४ पे० चुंगी लगावेंगे, ताकि विदेशों से आटे की आमदनी पर नियन्त्रण किया जा सके। जो लोग यह कहते हैं कि हिन्दुस्तान को अनाज या तिल की बजाय आटा व तेल बाहर भेजना चाहिये, वे शायद यह भूल जाते हैं कि दूसरे विदेश इस खतरे मे बहुत अधिक सतर्क हैं, वे हिन्दुस्तान के तैयार माल को अपने देश में मगाकर अपने कारीगरों को भूखा मारना पसन्द नहीं कर सकते।

भारत-जैसे प्राचीन देशों के मुकाबले में कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि-जो नये-नये आबाद हुए हैं, और जिनके पास खेती के लिए विशाल भूमि पड़ी है, जरूर ही अच्छी और सस्ती

खेती कर सकते हैं। मुक्तद्वार की नीति पर अमल करने स प्राचीन देश जरूर तबाह हो जायगे। पाठकों को याद होगा कि कुछ साल पहले कनाडा और आस्ट्रेलिया के गेहूँ हिन्दुस्तान में, यहाँ के गेहूँ से कम क़ीमत पर बिके थे। सरकार ने बहुत देर बाद विदेशी गेहूँ पर तट-कर लगाने का औचित्य स्वीकार किया। यही हाल शक्कर का हुआ। यदि जावा की चीनी पर तट-कर न लगाये जाते तो भारत में चीनी की क़ीमत ५) मन तक गिर जाती और चीनी के कारखाने बिलकुल न पनप सकते। चीनी व्यवसाय की उन्नति इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि यदि तट करों की नीति का ठीक इस्तमाल किया जाय, तो यहाँ हजारों कारखाने जारी हो सकते हैं।

नये तमाम पुराने देश

ऊपर के तमाम विवेचन से पाठक यह जान गये होंगे कि ग़रीब किसान को उसकी मेहनत का मुआवजा मिल सके, इसके लिए यह जरूरी है कि उसके हित को लक्ष्य में रख कर आर्थिक नीति का निश्चय किया जाय, लेकिन दुर्भाग्य से भारतीय किसान को इन स्थितियों पर नियन्त्रण का कोई अधिकार नहीं है। उसकी ग़रीबी का—उसे कम दाम मिलने का यह भी एक कारण है।

आर्थिक नीति की कसौटी

सब देशों ने यह अनुभव कर लिया है कि जबतक किसान को यह विश्वास न दिलाया जाय कि पैदावार की अच्छी और स्थिर कीमतों के रूप में उसे उसकी मेहनत व पूँजी का अच्छा बदला मिल जायगा, तबतक किसान की सहायता करना असम्भव है। इसी सचाई को अनुभव करके कुछ देशों की सरकारों ने पैदावार की कुछ ऊँची कृत्रिम कीमतें नियत कर दी हैं। वे सारी पैदावार एक नियत मूल्य पर ख़रीद लती हैं और कम-से कम एक मूल्य निश्चित कर देती हैं। अपने मुल्क की जरूरत से जो पैदा

चार ज्यादा बच जाती है, वह बाहर भेजी जाती है और इस तरह जो नुकसान होता है, वह सरकारी खजाना बरदाश्त करता है। यह सुन्दर व्यवस्था हिन्दुस्तान के लिए तो अभी स्वप्न है।

इस सारे विवेचन से यह साबित हुआ कि किसान की खुश हाली बहुत-सी ऐसी कृत्रिम चीजों पर निर्भर है, जिन पर उसका कोई अधिकार नहीं, लेकिन जो उसे बना या बिगाड़ सकती है।

: ४ :

साधारण शिक्षा और खेती की वैज्ञानिक शिक्षा

खेती की उन्नति में कृषि शिक्षा और वैज्ञानिक खोज का भी बहुत महत्व है, लेकिन बिना जनता में साधारण शिक्षा के प्रचार के कृषि की वैज्ञानिक शिक्षा भी सम्भव नहीं है। शिक्षा एक ऐसी सुदृढ़ नींव है, जिस पर सभी किस्म के मकान खड़े किये जा सकते हैं। भारत में शिक्षा की जो दुर्दशा है, वह सब जानते हैं। भारत में साक्षरों का अनुपात ससार के सभी देशों से नीचा है। १९३१ की जन-सख्या के अनुसार भारत में कुल आबादी का ८ फीसदी भाग साक्षर था। यदि गाँवों की शिक्षा का अनुपात अलग रखा जाता, तो हमें मालूम होता कि इस थोड़ी सी सख्या में भी अधिकांश हिस्सा शहरियों का है। १० या ज्यादा उमर वालों का ११ फीसदी भाग ब्रिटिश भारत में साक्षर है, जबकि ग्रेट ब्रिटेन में यही अनुपात ९७ ५, फ्रांस में ९४, जर्मनी में ९९ ७, जापान में ९९ फीसदी और आस्ट्रेलिया में ९८ ३ फीसदी है। १९३०-३१ में ब्रिटिश भारत की कुल शिक्षण सस्थाओंकी सख्या २,९२,०९८ थी और इनसस्थाओं से पढने वालोंकी सख्या १,२९,८९,०८९ थी। इसका अर्थ यह हुआ कि कुल जन सख्या के १०२६ लोगों के लिए एक शिक्षालय। आश्चर्य की बात है कि १९३५-३६ में शिक्षण सस्थाओं की

सरकार की उदासीनता

सख्या बढ़नेकी बजाय कम होकर २,४४,२११ रह गई, हाँ, विद्यार्थियों की सख्या जरूर बढ़ी। ब्रिटिश भारत में शिक्षणालयों का इस्तेमाल जनता का कुल ४६७ फ़ीसदी भाग करता था, जबकि ग्रेट ब्रिटेन में यही सख्या १८८, जापान में १६, सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में २३७ और कनाडा में २४.२ थी। १६३६ में जाकर ब्रिटिश भारत में यह अनुपात ५०६ फ़ीसदी हो गया। भारत में प्रत्येक २१ के पीछे एक व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर रहा था, जबकि सयुक्तराष्ट्र अमेरिका व कनाडा में प्रति ४ के पीछे एक व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर रहा था। १६३३ में रूस में यही संख्या ६ के पीछे १ थी। सरकार भारत में शिक्षा पर कितना कम खर्च करती है, यह नीचे लिखे तुलनात्मक आँकड़ा से पता चलता है —

१६३०-३१ में ब्रिटिश भारत में शिक्षार्थियों पर कुल २८ करोड़ ३२ लाख रुपया खर्च किया गया अर्थात् प्रति शिक्षार्थी पर २२.३ रुपया और कुल आबादी के हिसाब से प्रति व्यक्ति १) रुपया। ये दोनों सख्याएँ क्रमश ग्रेट ब्रिटेन में १७२ और ३२ ४, कनाडा मे १६६ और ८८ और सयुक्त राष्ट्र अमरिका में २७५ और ६५ थीं। आर्थिक सकट का कुल्हाडा शिक्षा-विभाग पर ही सबसे ज्यादा पड़ा। १६३०-३१में शिक्षा पर भारत में २८, ३१,६१,५४६ रुपया व्यय हुआ था, लेकिन १६३२ ३३ में यह सिर्फ २५,७८,७५,८६८ रह गया। पीछे से खर्च बढ़ाने पर भी पहली सख्या तक नहीं पहुँचा। १६३५ ३६ में २७ करोड़ ३२ लाख से अधिक खर्च नहीं हुआ। पिछली जन-सख्या के अनुसार पेशे या दस्तकारी की शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या ब्रिटिश भारत में सिर्फ ६,८६,१०५ थी, जबकि इसी साल जापान जैसे छोटेसे देश में यह सख्या १५,८६,०६२ थी। स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के बाद वाचनालय और पुस्तकालय आदि के द्वारा भी शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। १६३०-३१ में ब्रिटिश भारत में कुल

१७ ८ अखबार थे, जिनमें से ७७१ दैनिक थे। अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं की प्रकाशित कुल सख्या प्रति दस लाख के पीछे १२ ६ थी, जबकि यही सख्या सयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में १७७, जापान में १५५ और रूस में १०० थी।

यह सन्तोप की बात है कि अब ब्रिटिश भारत में कॉंग्रेसी सरकारें शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ ज्यादा दिलचस्पी लेने लगी हैं, लेकिन शासन प्रबन्ध के भारी भरकम व खर्चीला होने के कारण वे भी पूरा ध्यान नहीं दे सकतीं।

वर्तमान शिक्षा के दोप

फिर जो थोडी बहुत शिक्षा यहाँ प्रचलित भी है, वह इतनी अधिक दूपित है कि आम लोग शिक्षितों के कार्य-सामर्थ्य पर विश्वास ही नहीं करते। लोगों का यह खयाल सा बन गया है कि पढा लिखा आदमी मेहनत कर ही नहीं सकता, वह अच्छा किसान बन ही नहीं सकता है। रोजमर्रा के व्यावहारिक जीवन से यह धारणा और भी पुष्ट हो जाती है। पढा लिखा हिन्दुस्तानी नौकरी की तलाश करेगा या पहले ही भरे हुए डाक्टरी अथवा वकालत के पेशे में जावेगा। वह और किसी काम के योग्य अपने को पाता ही नहीं।

दसवीं श्रेणी तक के स्कूलों में खेती की शिक्षा की कोई व्यवस्था ही नहीं। यदि कहीं है भी तो इतनी दूपित कि वह खेती की ऊँची शिक्षा में किसी काम नहीं आती। कालेज की शिक्षा बहुत छोटे पैमाने पर दी जाती है और वह भी ज्यादातर खोज-सम्बन्धी होती है। कृपि-कालेजों में पढे लिखे विद्यार्थी खेतों में काम करके साधारण किसानों को अपनी योग्यता से प्रभावित नहीं कर सकते। कृपि-कालेजों में भी खेती की ओर खास दिल चस्पी नहीं पाई जाती। उनमें और साधारण कालेजों में बाता

सख्या बढ़नेकी बजाय कम होकर २,४४,२११ रह गई, हाँ, विद्यार्थियों की सख्या जरूर बढी। ब्रिटिश भारत में शिक्षणालयों का इस्तेमाल जनता का कुल ४ ६७ फीसदी भाग करता था, जबकि ग्रेट ब्रिटेन में यही सख्या १८ ८, जापान में १६, सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में २३ ७ और कनाडा में २४ २ थी। १६३६ में जाकर ब्रिटिश भारत में यह अनुपात ५ ०६ फीसदी हो गया। भारत में प्रत्येक २१ के पीछे एक व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर रहा था, जबकि सयुक्तराष्ट्र अमेरिका व कनाडा में प्रति ४ के पीछे एक व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर रहा था। १६३३ में रूस में यही सख्या ६ के पीछे १ थी। सरकार भारत में शिक्षा पर कितना कम खर्च करती है, यह नीचे लिखे तुलनात्मक आँकड़ों से पता चलता है—

१६३०–३१ में ब्रिटिश भारत में शिक्षार्थियों पर कुल २८ करोड़ ३२ लाख रुपया खर्च किया गया अर्थात् प्रति शिक्षार्थी पर २२ ३ रुपया और कुल आबादी के हिसाब से प्रति व्यक्ति १) रुपया। ये दोनों सख्याएँ क्रमश ग्रेट ब्रिटेन में १७२ और ३२ ४, कनाडा मे १६६ और ८८ और सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में २७५ और ६५ थीं। आर्थिक सकट का कुल्हाड़ा शिक्षा विभाग पर ही सबसे ज्यादा पड़ा। १६३०–३१में शिक्षा पर भारत में २८, ३१,६१,४४६ रुपया व्यय हुआ था, लेकिन १६३२ ३३ में यह सिर्फ २५,७८,७५,८६८ रह गया। पीछे से खर्च बढाने पर भी पहली सख्या तक नहीं पहुँचा। १६३५ ३६ मे २७ करोड ३२ लाख से अधिक खर्च नहीं हुआ। पिछली जन-सख्या के अनुसार पेशे या दस्तकारी की शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या ब्रिटिश भारत में सिर्फ ६,४६,१०५ थी, जबकि इसी साल जापान जैसे छोटेसे देश में यह सख्या १५,८६,०६२ थी। स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के बाद वाचनालय और पुस्तकालय आदि के द्वारा भी शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। १६३०–३१ में ब्रिटिश भारत में कुल

१७८ अखबार थे, जिनमें से २२१ दैनिक थे। अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं की प्रकाशित कुल संख्या प्रति दस लाख के पीछे १२६ थी, जबकि यही संख्या संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में १७२, जापान में १४५ और रूस में १०० थी।

यह सन्तोष की बात है कि अब ब्रिटिश भारत में कॉंग्रेसी सरकारें शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ ज्यादा दिलचस्पी लेने लगी हैं, लेकिन शासन प्रबन्ध के भारी भरकम व खर्चीला होने के कारण वे भी पूरा ध्यान नहीं दे सकतीं।

फिर जो थोड़ी बहुत शिक्षा यहाँ प्रचलित भी है, वह इतनी अधिक दूषित है कि आम लोग शिक्षितों के कार्य-सामर्थ्य पर विश्वास ही नहीं करते। लोगों का यह ख़याल सा बन गया है कि पढ़ा लिखा आदमी मेहनत कर ही नहीं सकता, वह अच्छा किसान बन ही नहीं सकता है। रोजमर्रा के व्यावहारिक जीवन से यह धारणा और भी पुष्ट हो जाती है। पढ़ा लिखा हिन्दुस्तानी नौकरी की तलाश करेगा या पहले ही भरे हुए डाक्टरी अथवा वकालत के पेशे में जावेगा। वह और किसी काम के योग्य अपने को पाता ही नहीं।

वर्तमान शिक्षा के दोष

दसवीं श्रेणी तक के स्कूलों में खेती की शिक्षा की कोई व्यवस्था ही नहीं। यदि कहीं है भी तो इतनी दूषित कि वह खेती की ऊँची शिक्षा में किसी काम नहीं आती। कालेज की शिक्षा बहुत छोटे पैमाने पर दी जाती है और वह भी ज्यादातर खोज-सम्बन्धी होती है। कृषि-कालेजों में पढ़े लिखे विद्यार्थी खेतों में काम करके साधारण किसानों को अपनी योग्यता से प्रभावित नहीं कर सकते। कृषि-कालेजों में भी खेती की ओर खास दिलचस्पी नहीं पाई जाती। उनमें और साधारण कालेजों में वाता-

करण भिन्न नहीं मालूम होता। वहाँ दी जाने वाली शिक्षा पर सम्मति देना कठिन है, लेकिन यदि फल से वृक्ष पहचाना जाता है, तो हम बिना किसी सकोच के यह कह सकते हैं कि कृषि-कालेजों की शिक्षा बिलकुल असफल सिद्ध हुई है। यदि इन कालेजों के ग्रेजुएट स्वय खेतों पर काम नहीं कर सकते, तो इससे बढकर उनकी शिक्षा की निन्दा क्या हो सकती है? स्वय सरकार भी इस शिक्षा की असफलता को स्वीकार करती है। जब कभी कृषि-विभाग में कोई ऊँची जगह खाली होती है, वह इन कालेजों के ग्रेजुएटों को न देकर बाहर से विदेशियों को बुलाती है।

सरकार का खोज सम्बन्धी काम

सरकारी नीति का एक आश्चर्य यह है कि वह ऐसे विदेशी को भारत की कृषि समस्या का हल ढूँढने के लिए नियत करती है, जो न तो किसान के खेत पर जाकर उससे बात कर सकता है और न उसकी परिस्थितियाँ और आवश्यकताएँ ही समझ सकता है। वह इसकी परवा भी नहीं करता और अपने जो खयाल बन चुके हैं, उन्हीं को जबर्दस्ती अमली जामा पहनाने की कोशिश करता है। यह भी एक प्रधान कारण है कि भारत में खोज सम्बन्धी काम में खास सफलता नहीं हुई।

खेती-सम्बन्धी खोज आदि की वैज्ञानिक पुस्तकें प्रान्तीय भाषाओं में प्राप्त नहीं होतीं। सरकार की ओर से भी जो पुस्तकें, रिपोर्टें और पत्रिकाएँ निकलती हैं, व सब अँग्रेजी में, जिसके अक्षर किसानों के लिए भैंस बराबर होते हैं।

खेती पर भारत में खर्च

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "पजाब पीजैंएटस इन प्रौसपैरिटी एण्ड इन डैट" मे मि०, डार्लिंग लिखते हैं—निम्नलिखित तालिकाओं से मालूम होता है कि पश्चिमीय देशों की अपेक्षा यहाँ खेती का खर्च बहुत ही कम होता है —

देश	प्रति १००० व्यक्ति (रुपयों में)	प्रति १००० एकड़ खेती (रुपयों मे)
जर्मनी (१९१०)	६४५	७०५
स० रा० अमेरिका (१९१९-२०)	१०२०	२१०
इग्लैण्ड (१९२१)	६६०	१३८०
इटली (१९२५-२६)	२५५	१८६०
पंजाब (१९२६-२७)	१३९	६५
ब्रिटिश भारत (१९२४-२५)	३८	३०

इस तरह हमने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि पहले तो भारत में लोगों को ऐसी शिक्षा के मौक़े ही नहीं दिए जाते, जो कृषि-सम्बन्धी शिक्षा का आधार हैं, और दूसरे किसानों की असली कठिनाइयों को खोज कर के उनका हल करने की कोई कोशिश नहीं की जाती।

: ५ :

सहयोग

को-आपरेटिव सोसाइटी ही ऐसा तरीक़ा है, जिससे गरीब आपस में मिलकर अपना सुधार कर सकते हैं, लेकिन दुर्भाग्य से इस देश में यह भी सफल नहीं हुआ। जो-कुछ हुआ है, वह सिर्फ़ कर्ज़ सोसाइटियों के रूप में ही। कुछ प्रान्तों में को-आपरेटिव सोसाइटियाँ १५ से १८ फ़ीसदी सालाना तक का ऊँचा सूद लेती हैं। सरकार की सारी मशीनरी के पीठ पर होते हुए और स्टाम्प, अदालती फ़ीस आदि के बारे में अनेक क़ानूनी सहूलियतें होते हुए भी इन को-आपरेटिव सोसाइटियों को सूद का दर घटाने में

कोआपरेटिव कमेटियों की असफलता

कोई कामयाबी नहीं हुई। इस देश में सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि देश हित में दिलचस्पी लेने वाले शिक्षित भारतीय इस आन्दोलन में शामिल नहीं होते, क्योंकि वे सरकारी अफ़सरों की हाँ-में हाँ नहीं मिला सकते अत इन सोसाइटियों का कार्य-सचालन मुख्यतया सरकारी अफ़सरों को ही करना होता है। इसीलिए केन्द्रीय बैंक जाँच कमेटी ने इन सोसाइटियों पर से सरकारी नियंत्रण को कम करने की सलाह दी थी। कभी कभी इन को आपरेटिव सोसाइटियों से यह उमीद की जाती है कि ये सोसाइटियाँ साहूकार को तबाह कर डालेंगी, लेकिन हमारा यह शुरू से विश्वास रहा है कि केवल को आपरेटिव क्रेडिट सोसाइटियाँ इस देश में बहुत सफल नहीं हो सकतीं। किसान कर्ज के लिए कोई अच्छा जमानत नहीं दे सकते, क्योंकि न वे जमीन के मालिक होते हैं, न बैलों के। इसका परिणाम यह होता है कि इन सोसाइटियों के बहुत से सदस्य भी कुछ सालों बाद साहूकार के शिकंजे में फँस जाते हैं। वास्तविक कर्जा कम होने के बजाय ज्यादा बढ़ जाता है। शायद ही किसी गाँव में ऐसी सोसाइटी होगी, जिसका कोई सदस्य अपने सदस्य-काल में कर्ज-रहित होगया हो। इसका कारण स्पष्ट है। शाही खेती-कमीशन ने ठीक ही कहा है कि "किसान की कठिनता यह नहीं है कि उसे कर्ज नहीं मिलता। उसकी असली मुश्किल यह है कि वह अपना कर्ज चुका नहीं सकता।" इसके लिए उसकी कमाने की शक्ति बढ़ानी लाजमी है। और देशों में, जहाँ ये सोसाइटियाँ बहुत कामयाब हुई हैं, किसान अपनी जमीन का मालिक होता है, उसकी जमानत पर वह रुपया उधार ले सकता है। फिर इन संस्थाओं के संयोजकों की हलचलें सिर्फ कर्ज देने तक सीमित नहीं रहतीं। वे किसान की आमदनी बढ़ाने के लिए भी सभी उपाय बरतती हैं। ऐसे कार्यों के लिए बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, लगन और योग्यता आदि गुणों का संचालकों में

होना जरूरी है। ऐसा काम सिर्फ़ उत्साही सार्वजनिक कार्य-कर्त्ता कर सकते हैं, लेकिन बदकिस्मती से भारत में राजनीतिक मत-भेद के कारण ऐसे कार्यकर्त्ताओं का सहयोग सरकार अवांछनीय समझती रही है।

गाँवों में अक्सर अच्छे किसान को आपरेटिव सोसाइटियों में शामिल होने की चिन्ता नहीं करते, क्योंकि इस तरह की सम्मिलित व सीमित जिम्मेवारियों में तरह तरह के खतरे आ पड़ते हैं। दूसरी बात यह भी है कि अच्छे किसानों को को आपरेटिव सोसाइटियों की अपेक्षा कम सूद पर दूसरे स्थानों से रुपया मिल जाता है और लेन-देन लोगों में प्रकट भी नहीं होने पाता, लेकिन सोसाइटियों में वे अपनी देनदारी को छिपा नहीं सकते। अच्छा किसान यह बरदाश्त नहीं करता। सोसाइटी के साधारण सदस्यों में भी पारस्परिक सहयोग की सच्ची भावना नहीं पाई जाती। वे न सहयोग का मूल सिद्धान्त समझते हैं और न इसकी उन्हें चिन्ता ही रहती है। वे तो सिर्फ इतना ही जानते हैं कि यह कर्ज लेने का आसान तरीक़ा है। इससे ज्यादा उनके लिए सोसाइटी का कोई महत्त्व भी नहीं। यदि एक बार किसान सहयोग की सच्ची भावना को समझ जावें, और इसके लाभ उन्हें बताये जावें, तो इसमें सन्देह नहीं कि उनकी आर्थिक स्थिति और मानसिक विचार दोनों में बहुत तरक्की होगी।

सहयोग समितियों के दोष

हम यह पहले भी लिख चुके हैं कि हिन्दुस्तानी किसान खेती से दौलत कमाने और उसके सिलसिले में लाभ-हानि का हिसाब लगाने का आदी नहीं। इसीलिए वह ज्यादा सूद-दर का बोझ भी महसूस नहीं करता। न वह कम सूद-दर के लाभ समझता है। जबतक उसे नफा-नुक्सान का हिसाब करना न सिखाया जायगा, वह इन कमेटियों की झंझटों में पड़ने के लिए भी तैयार

लेन-देन का काम करने वाली किसीभी सस्था की—चाहे वह मामूली व्यापारिक बैंक हो या को आपरेटिव बैंक—सफलता राष्ट्र की बचत पर निर्भर करती है। इसके बिना कोई भी देश आर्थिक उन्नति नहीं कर सकता। आम लोगों की इस बचत को किसी अच्छी विश्वसनीय जगह रखने या लगाने की व्यवस्था से हिन्दुस्तान के किसान में भी बचत के लिए उत्साह होगा और वह अपनी आमदनी के मुताबिक खर्च करने की कोशिश करेगा, फजूल खर्चियो से बचेगा। उसकी जेब में पड़ी हुई बैंक की पासबुक उसमें आत्म-विश्वास और आशा का सचार करेगी। वह अपने धार्मिक या सामाजिक समारोहों के लिए रुपया जमा करना सीखेगा और साहूकारों के दरवाजों पर गिड़गिड़ाना छोड़ देगा। किसानों की बचत से चलने वाले सेविंग बैंक उसे कम सूद पर रुपया भी दे सकेंगे। इन किसान-बैंकों और तिजारती बैंकों में व्यापारिक सम्बन्ध देश की समृद्धि में भी सहायक हो सकता है। डाकखानों के सेविंग बैंक यह काम नहीं कर सकते। इसके लिए तो अलग ही किसान-सेविंग बैंक होने चाहिये, भले ही इन बैंकों से उनका व्यापारिक सम्बन्ध हो।

प्रजा की बचत

ऐसी को आपरेटिव सोसाइटियाँ भी क़ायम की जानी चाहिये, जो किसानों के लिए जरूरी बीमा किया करें। बैल की आकस्मिक मृत्यु, सूखा, बाढ या कीड़ों से फ़सल की बरबादी वग़ैरह किसानों पर आने वाली आफ़तों के बीमा करने से किसान को बहुत फ़ायदा पहुंचेगा। और देशों में ऐसी बीमा कम्पनियें सफलता से चल रही हैं। यह काम बहुत विशाल है और सरकार को ही इसमें [illegible] चाहिये। यह भी ध्यान में रख[illegible] कि इन [illegible] नियां का सगठन और इन्त[illegible]

खेती का बीमा

दूसरे देशों की सरकारें को-आपरेटिव सोसाइटियों को तरह तरह से सहायता पहुँचाती हैं। फ्रांसमें १८६४ में एक कानून द्वारा कर्ज कमेटियों की स्थापना की इजाजत दी गई। इसके अगले वर्ष १८६५ में कानून बनाया गया कि सब सेविंग्स बैंक अपनी पूँजी का पाँचवाँ हिस्सा और अपनी सारी आमदनी स्थानीय संस्थाओं को सहायता के लिए दें। १८६७ में बैंक आफ फ्रांस का पट्टा इस शर्त पर फिर से जारी किया गया, कि किसानों को कर्ज देने के लिए यह बैंक ४ करोड फ्रैंक सहायता देय और अपने सालाना नफे का भी एक भाग किसानों की मदद के लिए दिया करे। १८६६ ई० म को-आपरेटिव बैंक क़ायम किये गये। १९१० ई० में क़ानून बना कर किसानों को कर्ज की और भी सहूलियतें दी गईं, ताकि किसानों को जमीन खरीदने और उसकी उन्नति करने के लिए बहुत कम सूद की दर पर और लम्बी मुद्दतों के लिए रुपया मिल सके। इस तरह फ्राँस में किसानों को कर्ज देने का पूरा इन्तजाम है और इस काम में सरकार का भी काफ़ी रुपया लगा हुआ है। स्थानीय को-आपरेटिव बैंकों को सरकार सिर्फ़ २ फीसदी सूद पर कर्ज देती है, जब कि बैंक अपने सदस्यों को ८ फ़ीसदी सूद पर कर्ज देते हैं।

सहयोग समितियों को सरकारी सहायता

लेकिन क्या भारत में भी यह संभव है? सरकार से तो यह आशा नहीं कि वह काफ़ी रुपया इस काम में खर्च करेगी। वह स्वयं ३ और ४ फीसदी सूद पर रुपया लेती है, किसानों के बैंकों को २ फीसदी पर कहाँ से देगी? लेकिन वह निजी बैंकों को उनके अपने लाभ का कुछ हिस्सा किसान-बैंकों को देनेके लिए बाधित कर सकती है। और भी इसी प्रकार अनेक उपाय किये जा सकते हैं।

: ६ .

मवेशियों की उन्नति

इस देश मे मवेशियों की नसल सुधारने का इतिहास भी बहुत दु खपूर्ण है। इस देश में सबसे पहला काम यह किया गया है कि अच्छी चुनी हुई गौओं को विदेशों से मगाये गये साडा से मिलाया गया। यह परीक्षण बहुत पहले शुरू किया गया था और आज तक भी फौजी महकमे में जारी है। शुरू से ही यह नतीजा देखा गया कि पहली सन्तति तो अच्छी होती है, और दूध भी बढ जाता है, लेकिन अगली नसल यहाँ की बीमारियों से नहीं बचायी जासकी और इसतरह उनकी आगामी नसल तबाह हो जाती है। मवेशियों की नसल व राष्ट्रीय व्यवसाय दोनों की दृष्टि से इसके हानिकारक होते हुए भी इस प्रथा को महज इसलिए जारी रक्खा जारहा है कि भारी भारी तनख्वाह पाने वाले लोगों का ख्याल अब तक नहीं बदला जासका। इस तरह हिन्दुस्तान की अच्छी अच्छी गौए चुन ली जाती हैं, उन्हें विदेशी सॉडो से मिलाया जाता है और वे तबाह हो जाती हैं। इसका परिणाम होता है देश के व्यवसाय की भारी हानि। यदि सरकार के दिल में देश के लिये जरा भी हित-बुद्धि है, तो विना एक मिनट विलम्ब किये इस प्रथा को बन्द कर देना चाहिये।

हानिप्रद उपाय

दु ख की बात तो यह है कि हमारे देश में सुधार या उन्नति का हर एक काम बड़ी-बडी तनख्वाह पाने वाले विदेशी विशेषज्ञों के हाथा में सौंप दिया जाता है। वे न भारत की आबोहवा से वाक़िफ होते हैं और न यहाँ की दूसरी परिस्थितियों से। वे इसकी चिन्ता किये बिना ही अपने देश में बरते गये तरीक़ो को यहाँ भी शुरू कर देते हैं। वे

विदेशी विशेषज्ञ

एक-पर-एक परीक्षण करते जाते हैं, चाहे कोई लाभ हो या न हो। वे इस देश के अनुभवी आदमियों से इस सम्बन्ध में कोई सहायता नहीं लेते। इससे शायद उनकी मान हानि होती है, फिर वे किसान की भाषा भी नहीं जानते और उनका रहन-सहन भी बिलकुल अलग होता है। वे उस देश की, जिसकी सेवा करने यहाँ आये हैं, भाषा तक जानने की कोशिश नहीं करते। हिन्दुस्तान जैसे कृषि प्रधान देश में पशु-पालन कोई नई चीज़ नहीं। शाही खेती कमीशन की रिपोर्ट में यहा के चरवाहों की प्रशसा करते हुए लिखा है—"अगर युक्त प्रान्त के पवार, पजाब के हरियाना व सहेवाल, सिंध के थारपरकार और सिंधी (करांची), मध्य भारत के मालवी, गुजरात के काकरेज, काठियावाड़ के भीर, मध्य प्रान्त के गाओलाओ और मद्रास के ओंगोले नसलों की जाँच की जाय, तो पता लगेगा कि इनकी खूबी का असली कारण पेशेवर चरवाहों की असाधारण अहतियात में है।"—यह खोज कृषि-विभाग के स्थापित होने के ७० साल बाद उस समय हुई, जब बदक़िस्मती से ये अनुभवी लोग ख़तम हो चुके हैं।

पशुओं की नसल में सुधार करने से पहले यह निश्चय कर लेना चाहिये कि हमारा—जनता का—या सरकार का उद्देश्य और नीति क्या है। बदक़िस्मती से इस देश में टैक्स देने वाली जनता अशिक्षित है, वह नहीं जानती कि क्या करना चाहिये। सरकार

विदेशी थ्योरिया का चकाचौंध

नई-नई थ्योरियों के चकाचौंध में फस गई है और विदेशी विशेषज्ञों पर उचित से अधिक विश्वास करती है। वह उन्हें किसी नीति या आदर्श के बारे में कुछ बता ही नहीं सकती। विदेशी विशेषज्ञ भी ऐसे हैं, जो यह कभी मान ही नहीं सकते कि इस देश के पुराने तरीक़ों में भी कोई ख़ूबी है। सरकार यह भी नहीं देखती कि एक विशेषज्ञ ने जो आदर्श अपने सामने रक्खा था

और जो तरीका अपनाया था, उसके उत्तराधिकारी विशेषज्ञ ने उसे जारी भी रक्खा है या नहीं और उस प्रयोग व जाँच का *सिलसिला कायम रक्खा है या नहीं ?* हमेशा से यही देखने में आता है कि जहाँ एक अफसर अलग हुआ और उसकी जगह दूसरा आया, एक दम पुराना तरीका खतम होगया और बिल्कुल नये असूलों पर नये सिरे से काम शुरू हो गया। इसका परिणाम यह होता है कि खोज की असफलता की जिम्मेवारी कोई अपने *सिर नहीं लेता। प्राय प्रत्येक विशेषज्ञ* अपने से पहले विशेषज्ञ की कार्य नीति की निन्दा करता है, इसका नुक़सान देश को उठाना पड़ता है।

जिस देश मे कुछ समय पहले दूध की नदियाँ बहती थीं, उस देश में आज न दूध मिलता है न अच्छे मवेशी। भारतवर्ष जैसे *शाकाहारी देश में तो, जहाँ दूध ही सब* से अधिक पोषक भोजन है, पशुओं की उपेक्षा बरदाश्त नहीं की जा सकती। आज भारत में अन्य देशों की अपेक्षा दूध की औसत खपत बहुत कम है और बच्चों की मृत्यु-सख्या बहुत ज्यादा। इसका अर्थ यह है कि हम अपनी भावी सन्तति को उचित पोषक भोजन के अभाव से मार रहे हैं। समय-समय पर हमें यह कह कर कोसा जाता है कि हम मवेशियो को ठीक खुराक नहीं देते और उनका भली भाँति पोषण नहीं करते, लेकिन इल्जाम लगानेवाल यह भूल जाते हैं कि हमारी अपनी हालत क्या है? हमें स्वय ही खाने को नहीं मिलता, मवेशियों के चारे के लिए पैसा कहाँ से लावें? यदि हमारी आमदनी बढ जाय, दूध के धन्धे से कुछ अच्छी आय होने लगे, तो सब शिकायतें खुद ब खुद दूर हो जावेंगी। हमें दोष देने से पहले सरकारी विदेशी *विशेषज्ञ क्या इसका जवाब देंगे कि कृषि-विभाग, जिसे* स्थापित हुए ७० साल हो गये, अबतक क्या भावी नीति और आदर्श को

भी तय कर सका है ? क्या उसका आदर्श प्रति व्यक्ति ज्यादा दूध देने वाले मवेशी पैदा करना रहा है या ज्यादा भार खींचने वाले मवेशी पैदा करना या इन दोनों का समन्वय ? अब तक इस विभाग द्वारा स्वीकृत नीति से इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं मिलता। कभी एक नीति पर अमल होता है, तो कभी दूसरी नीति पर। काम का यह ढिलमिल तरीक़ा और गरीब करदाता के रुपये से यह खेल दरअसल बहुत अफ़सोसनाक है।

विदेशी विशेषज्ञ भारतीय पशुओं की दुर्दशा का एक कारण हिन्दुओं की गौ के प्रति धार्मिक भावना बताते हैं।

हिन्दुओं की धर्म भावना

उनका कहना है कि हिन्दुओं की इस भावना के कारण गौएँ मारी नहीं जातीं, लूली-लँगड़ी कमजोर या बूढ़ी गौओं की भारी मख्या चारे का बहुत बड़ा भाग खा जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि अच्छी तन्दुरुस्त गौओं को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता और वे कमजोर हो जाती हैं। इसलिए वे इसका इलाज दूध देने के अयोग्य गौओं की हत्या बताते हैं, लेकिन विशेषज्ञों का यह काम नहीं है कि वे किसी जातीय भावना के औचित्य या अनौचित्य पर बहस करें। उन्हें तो यह देखना है कि किन हालतों में काम करना है। हर एक जाति के कुछ विश्वास होते हैं। उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हिन्दुओं की गौ के लिये आदरबुद्धि की उपेक्षा करना खतरनाक होगा। गौ के नाम पर हिन्दू अपना सिर कटा देने को तैयार हैं। इस भावना को मूर्खतापूर्ण कह कर विशेषज्ञ अपनी जिम्मेवारी से बच नहीं सकते। उन्हें हिन्दुओं के देश के लिए इलाज सोचना है और वह इलाज गौहत्या नहीं हो सकता। हिन्दू बूढ़ी गौ को खाना देते समय कभी दिल में सकोच नहीं करता। ऐसी नाकाम गौओं के लिए पिंजरापोल और गौशालाएं बनी हुई हैं। विदेशी विशेषज्ञों के तरीक़े से इस समस्या को नहीं

सुलझाया जा सकता। इसका हल तो एकमात्र चारे की ज्यादा पैदावार और चरागाहों की ज्यादा स्थापना से ही होगा। यह समस्या विदेशी विशेषज्ञों को परेशान कर रही है, लेकिन दरअसल उन्होंने इसे स्वयं ही बना लिया है। प्राचीन भारत में पेशेवर चरवाहे थे। जहाँ आजकल के विशेषज्ञ परेशान हो जाते हैं, वहाँ वे सफल हो जाते थे।

पिछले ७० सालों में विशेषज्ञों से पूर्ण सरकार के कृषिविभाग ने क्या किया है? यदि हजारों रुपया लगाकर दो-चार मवेशी

सरकारी कृषि विभाग

अच्छे पैदा कर लिये, तो इससे इस विशाल देश की समस्या हल नहीं हो जाती। क्या सरकार के विशेषज्ञों ने इतने विशाल देश में एक भी ऐसा फार्म खोला है, जहाँ से पालने के लिए मवेशी खरीदे जा सकें और मवेशियों की नसल विश्वास-योग्य हो। अगर ७० सालों के दीर्घ काल में एक भी ऐसा फार्म नहीं खोला जा सका, तो आगे के लिए क्या उम्मीद हो सकती है? दरअसल सरकारी विशेषज्ञों की बातें ही निराली होती हैं। एक विशेषज्ञ गौओं का दूध बिलकुल नहीं निकालते थे और न गौओं के दूध की मात्रा रजिस्टर में लिखते थे। आश्चर्य यह है कि यू० पी० कौंसिल में खेती विभाग के डाइरेक्टर ने उनके इस कार्य का समर्थन किया था। हिसार के फार्म में मुझे यह देखकर बहुत दुःख हुआ कि वहाँ न तो दूध का हिसाब रक्खा जाता था और न भिन्न भिन्न जानवरों के खानदानी हालात आसानी से मालूम हो सकते थे। खुराक तक ठीक ठीक नहीं दी जाती थी।

मवेशियों की नसल खराब होने का एक बड़ा कारण यह है कि सरकार घी-दूध में मिलावट पर रोक लगाने की जरा भी फिक्र

मिलावटी घी-दूध की खुली छुट्टी

नहीं करती। यूरोपियन देशों की सरकारें दूध घी की मिलावट पर बड़ी-बड़ी बन्दिशें

लगाती हैं। मिलावट करना वहाँ एक जुर्म समझा जाता है और इसके लिए काफी सजाएं मिलती हैं। दरअसल मिलावटी दूध बाजार से अच्छे दूध को निकाल देता है। शाही खेती कमीशन को यह जान कर आश्चर्य हुआ था कि ब्रिटेन के बड़े शहरों की अपेक्षा भी यहाँ के अनेक शहरों में दूध महगा बिकता है। ६ आना प्रति सेर (बम्बई का सेर) होते हुए भी बम्बई में शुद्ध दूध बहुत कम मिलता है। ज्यादातर लोग मिलावटी दूध बेचते हैं। प्राय सभी देशों में लोग दूध घी में मिलावट करते हैं, लेकिन उन देशों की सरकारें इसके लिए कड़ा दण्ड देती हैं। इटली में मुसोलिनी ने जो कठोर नियम बनाये हैं, उनमें से एक पानी मिला दूध बेचने के लिए जेल, जुरमाना या दुकान-बन्दी की सजा देना भी है। इटली के हर एक शहर मे कई दुकानें बन्द कर दी गईं, कई जेल में भेज दिये गये। आज वहाँ मिलावट देखने को नहीं मिलती। फ्राँस और ब्रिटेन में भी ऐसे नियम बने हुए हैं।

मिलावटी दूध की तरह से मिलावटी घी की भी समस्या बहुत कठिन है। शुद्ध घी के नाम से मिलावटी घी बेचा जाता है। इग्लैंड में भी नकली घी के आविष्कार के समय यह समस्या पैदा हुई थी। उस समय वहाँ क़ानून बना कर नकली घी को घी के नाम से बेचना जुर्म करार दिया गया था। नकली घी या वनस्पति घी का बनाना तो रोका नहीं जा सकता, गरीबों के लिए सस्ता घी मिलना ही चाहिए, लेकिन असली के नाम से नकली घी को बेचना तो धोखा है, इसे तो रोकना ही चाहिए। केन्द्रीय धारा-सभाओं में जनता के प्रतिनिधियों ने बीसियों बार सरकार का ध्यान घी के नाम से बिकने वाले तेल और वनस्पति घी पर पाबन्दी लगाने के लिए खींचा, अखबारों और सभाओं द्वारा भी सरकार से सैकड़ों बार अनुरोध किया

गया, लेकिन सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी।

यह बात नहीं कि हिन्दुस्तान में अच्छे मवेशी कभी थे ही नहीं। बहुत समय से हिन्दुस्तान का किसान नसल की तरक्की पर खास ध्यान देता आया है। पहले जमाने में हिन्दुस्तान के गाँवों में एक रिवाज प्रचलित था कि सबसे बढ़िया साँड गाँव को भेंट कर दिये जाते थे और गलियोंमें छोड़ दिये जाते थे। यह एक धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता था, लेकिन किसानों की गरीबी, दस्तकारियों की तबाही और जमीन पर ज्यादा बोझ आ पड़ने के कारण चरागाहों की भी खेतो में तब्दीली, चरने के लिए जगलों की पाबन्दी आदि के कारण देश की अच्छी गौए और भैंसे शहरों में ले जाई जाने लगी हैं और वहाँ एक बार दूध देना बन्द करने पर कसाइयों के हाथ बेच दी जाती हैं। फ़ौजी महकमा भी बढ़िया गौओं को खरीदता है और वहाँ विदेशी साँडों से मिला कर नसल तबाह करदी जाती है। फिर भी आज हिन्दुस्तान में बहुत बड़ी तादाद में अच्छे मवेशी पाये जाते हैं, जिनसे नसल सुधार का काम अच्छी तरह शुरू किया जा सकता है।

हिन्दुस्तान में पशु पालन

बीजों का सुधार भी किसान की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें सन्देह नहीं कि सरकारी कृषि विभाग ने इस दिशा में बहुत-कुछ उल्लेख-योग्य कार्य किया है। बहुत-सी नई बढ़िया-बढ़िया क़िस्में निकाली गई हैं, लेकिन इनसे फायदा बहुत कम उठाया गया है। इसका कारण यह नहीं है कि हिन्दुस्तानी किसान किसी नये परिवर्तन को पसन्द नहीं करता। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि सरकारी विशेषज्ञों ने नये बीजों की खेती करके और उससे अच्छी पैदावार करके किसानों के सामने कोई आदर्श नहीं रखा। दूसरा कारण यह है कि नये बीजों की फ़सल के लिए

अच्छे बीज लोकप्रिय नहीं हुए

बाजार का संगठन नहीं किया गया। हिन्दुस्तान के बाजार की हालत बहुत खराब है। यहाँ बढ़िया और घटिया माल के दामों में बहुत कम अन्तर है। अमेरिकन सरकार माल को विभिन्न श्रेणियों में बाँटने पर बहुत बड़ी रक़म खर्च करती है और यही कारण है कि उसका कृषिजन्य पदार्थों का व्यापार लगातार बढ़ रहा है।

खेती के कीड़ों और बीमारियों की खोज पर भी हिन्दुस्तान की सरकार काफ़ी रुपया खर्च कर चुकी है, लेकिन अबतक कोई खास फ़ायदा नहीं हुआ। पुरानी बीमारियाँ अभी तक भी पहले की तरह मौजूद हैं और कुछ नयी बीमारियाँ भी पैदा हो गई हैं। इन बीमारियों को रोकने के लिए जो तरीक़े हमें विदेशी विशेषज्ञ बताते हैं वे या तो कार्य के योग्य ही नहीं होते या इतने ज्यादा खर्चीले होते हैं कि किसान की ताक़त से बाहर होते हैं। खेतों में जो घास पात पैदा हो जाता है, उसके बारे में भी कोई खोज नहीं की गई है।

कीड़ों व बीमारियों की खोज

---

७ :

यातायात के साधन

अच्छा बाजार पाने और माल की निकासी के लिए आने-जाने के साधनों की सहूलियतों का होना जरूरी है। जब तक सारे देश में पहुँचने और माल भेजने का सन्तोषजनक इन्तजाम न हो, तब तक अच्छा बाजार नहीं मिल सकता। संसार के अन्य देशों की अपेक्षा भारत इस दृष्टि से भी बहुत पीछे है। ब्रिटिश

भारत में १६३५-३६ में कच्ची पक्की कुल मिला कर ३,०६,७१७ मील सड़कें थीं। इस में से ८२,२८४ मील पक्की और २,२४,४३३ मील कच्ची थीं। भारत में कुल रेल लाइन ४८,०२१ मील लम्बी है अर्थात् प्रति दस लाख व्यक्तियों के पीछे सिर्फ १०८ मील, लेकिन सं०रा० अमेरिका में प्रति दस लाख के पीछे २१३२ मील, इंगलैंड में ४६० मील, जापान में २०६ मील लम्बी लाइन है। इसमें कोई शक नहीं कि पहले की अपेक्षा आजकल यातायात के साधनों में बहुत उन्नति हो चुकी है। हिन्दू या मुस्लिम काल में इतने बड़े पैमाने पर और इतने विशाल प्रदेश में आने जाने की ऐसी सुविधायें न थीं, लेकिन देखना यह है कि ये सहूलियतें हमारे लिये लाभदायक साबित हुई हैं या इन से भी हमारी तकलीफें बढ़ गई हैं। इसमें किसी को शक नहीं कि आजकल एक जगह से दूसरी जगह माल भेजना या रेल की सवारी कर स्वयं यात्रा करना पहले की बनिस्बत बहुत आसान होगया है, लेकिन हमें हिन्दुस्तानी किसान की दृष्टि से इस बात पर विचार कर लेना जरूरी है कि इन रेल गाड़ियों ने उनकी आर्थिक स्थिति पर कैसा असर डाला है ?

रेलवे से भारत को हानियां

रेलें हिन्दुस्तान के लिये सिर्फ लाभदायक साबित नहीं हुई। इस तस्वीर का एक और पहलू भी है। इन के कारण मुल्क को वह बड़ा भारी बोझ भी उठाना पड़ा है, जो विदेशी रेल कम्पनियों को सहायता और रियायतों के तौर पर दिया गया है। १६३५-३६ तक रेलवे पर ८,७६,४८,८३,००० रु० पूंजी लगी हुई थी और यह प्राय सारी विदेशी थी। हर साल भारी रकम इन कम्पनियों को सूद के तौर पर हिन्दुस्तान के गरीब कर-दाताओं को देनी पड़ती है, इसकी चर्चा हमारे विषय क्षेत्र से बाहर की बात है, लेकिन हम यह जरूर कहेंगे कि रेलें हिन्दुस्तान को बहुत महंगी पड़ी हैं और आज भी उनके प्रबन्ध व ऊपरी

रेल-रेख में बेहद खर्च किया जाता है। इसलिये हिन्दुस्तान में दूसरे मुल्कों से किराया व भाड़ा भी बहुत ज्यादा लिया जाता है। तमाम मशीनरी और छोटे-छोटे पुर्जे तक इंगलैंड या दूसरे यूरोपियन देशों से काफ़ी ज्यादा क़ीमत पर खरीदे जाते हैं। जब तक रेलने का इन्तजाम व ऊपरी देख रेख का भारी खर्च कम नहीं किया जाता, जब तक विदेशी पूँजी को हटा कर देशी पूँजी नहीं लगाई जाती, जब तक कल पुर्जे हिन्दुस्तान में नहीं बनाये जाते, तब तक रेल के किराये भाड़े में भी कमी होने की उम्मीद नहीं की जा सकती। हिन्दुस्तान की खानों में लोहा और कोयला भारी परिमाण में मौजूद है, इसलिये भारत सरकार के लिये यह कोई प्रतिष्ठा की बात नहीं कि आज भी हिन्दुस्तान में मशीनरी बनाने का इन्तजाम न हो और इस के लिये विलायत का मुँह ताकना पड़े।

रेलने के इस खर्चीले इन्तजाम ने हिन्दुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक किसानों पर बहुत बुरा असर डाला है। कृषिजन्य पदार्थों के इधर उधर ले जाने का खर्च इतना ज्यादा होता है कि जिन्सों की माकूल क़ीमत नहीं उठती। रेल के किराये निश्चित हैं, उन्हे कोई घटा बढ़ा नहीं सकता। इसलिए माल बाहर भेजने वाले व्यापारी को यह फ़िक्र रहती है कि वह खेतों पर सस्ते से सस्ता माल खरीदे और दूसरी जगह महगे से महगा माल बेच कर खूब नफा कमाये। किसान को लाचार होकर अपनी पैदावार कम क़ीमत पर बेचनी पडती है। इसके अलावा उसे दूसरे ऐसे मुल्कों से मुक़ाबला भी करना होता है, जो कम क़ीमत पर अपनी पैदावार बेच सकते हैं, क्योंकि एक तो उन देशों में फ़ी एकड़ पैदावार ज्यादा होती है और दूसरे किराये या महसूल पर उन्हें बहुत कम खर्च करना पडता है। हिन्दुस्तान के किसी बाजार में जाकर हम देखें, तो हमें

किसान की तबाही

मालूम होगा कि सारे बाजार में विदेशी वस्तुओं की बाढ़ सी आई हुई है। इसका मुख्य कारण माल लाने की सहूलियत और बाजारी कम खर्ची है। आज हिन्दुस्तान सभी देशों का बाजार बना हुआ है। सारे देश को सब के लिए सुलभ बना देने का—यातायात के मार्ग बिछा देने का यह खतरा जरूर उठाना पड़ता है। इसलिए जहाँ एक मुल्क में यातायात के साधनों का विकास किया जावे, वहाँ उसके साथ ही उसकी व्यावसायिक उन्नति करना भी जरूरी है। बिना उद्योग धन्धों को उन्नत किये केवल रेलों का जाल बिछा देने से देश का कला कौशल नष्ट हो जाता है। हिन्दुस्तान के मामले में यही हुआ है। रेलों के कारण कुछ शहर जरूर खुशहाल हुए हैं, लेकिन देहातों को तो भारी आर्थिक हानि हुई है। इसमें कोई शक नहीं कि रेलों के कारण किसानों के उस माल को भी बाजार मिल गया है, जो पहले बिक नहीं सकता था, लेकिन पैदावार बेचने से एक ओर जहाँ उसे थोड़ा-बहुत लाभ हुआ है, वहाँ उसे दूसरी ओर इससे भी ज्यादा नुक्सान होने लगा है। सब कारीगरों का अब सिर्फ जमीन ही एकमात्र आसरा रह गया है।

हिन्दुस्तान के व्यापारिक इतिहास पर सरसरी नजर डालने से यह भली भाँति मालूम हो जायगा कि रेलें हमेशा भारत के लिए हितकर ही साबित नहीं हुई।

रेलवे की हानिकारक नीति

१९२९-३० ३१ के सालों में हमने देखा था कि आस्ट्रेलिया और कनाडा का गेहूँ हजारों मील से आकर हिन्दुस्तान के बाजार में यहाँ के गेहूँ से भी सस्ता बिकता था। इसका कारण यह है कि विदेशों के जहाज हजारों माल दूर से ८ आना प्रति मन किराये में यहाँ विदेशी गेहूँ पहुँचाते थे, जब कि हिन्दुस्तान की रेलवे अपने देश में ही लायलपुर से कलकत्ता तक, जो मुश्किल से १००० मील दूरी होगी, १।।) फी मन किराया लेती थी। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दुस्तानी किसान को आस्ट्रेलिया

या कनाडा के किसान से तीन-गुना ज्यादा किराया देना पड़ता था। इसी तरह जावा से हिन्दुस्तान के बन्दरगाहों तक चीनी के पहुँचने में सिर्फ ।।) मन लगते हैं, लेकिन बम्बई या कलकत्ते से मेरठ तक उसी चीनी पर रेलों का किराया पिछले दिनों में घटाने पर भी एक रुपये से अधिक देना होता है। आज यह गुप्त भेद सभी को मालूम हो चुका है कि हिन्दुस्तान के बन्दरगाहों पर भेजे जाने वाले माल के लिए रियायती किराया लिया जाता था, लेकिन उसी माल को अपने ही मुल्क में किसी दूसरी जगह भेजने पर रियायत नहीं दी जाती थी। इसका परिणाम यह होता था कि भारत के कल-कारखाने कच्चे माल के लिए तरसते रह जाते थे, जब कि विदेशी कल-कारखाने हिन्दुस्तान के कच्चे माल से अपना माल तैयार कर धड़ाधड़ हिन्दुस्तान में भेज सकते थे। शाही खेती कमीशन की रिपोर्ट के सूक्ष्म अध्ययन से यह मालूम हो जायगा कि हिन्दुस्तान की रेलें किसानों के हित में नहीं चलाई जातीं। यों तो उक्त कमीशन किसानों की सच्ची शिकायतों के बारे में फूँक फूँक कर चला है, लेकिन यह उन सचाइयों से इन्कार नहीं कर सका, जिनसे वर्तमान पद्धति की बुराइयाँ प्रकट हो जाती हैं। कमीशन ने यह स्वीकार किया है कि रेलवे जंगलों से किसान के दरवाजे तक लकड़िया को सस्ता पहुँचाने में कामयाब नहीं हुई। इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ है कि उसे ईंधन की जगह गोबर का क़ीमती खाद जलाना पड़ता है और इस तरह खेती को बड़ा भारी नुक़सान पहुँचता है। जो लोग किसानों को गोबर का क़ीमती खाद जलाने के लिए कोसते हैं, उनकी आँखें कमीशन के बयान से जरूर खुल जावेंगी। शाही कमीशन लिखता है कि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि गोबर का जलाना तब तक नहीं रुक सकता, जब तक कि उसकी जगह उससे भी सस्ता ईंधन न मिल जाये। कमीशन ने आगे यह भी लिखा है कि सिर्फ ५० मील दूर से भी रेलवे के जरिये

ईंधन को लाना सस्ता नहीं पड़ता। चारे के बारे में भी उसकी यही सम्मति है। जब जगल में बडे भारी परिमाण में चारा मिल सकता है, तब थोडे से फ़ासले से भी रेलवे उसे किसान के दर वाजे तक नहीं पहुँचा सकती। यह दरअसल बहुत दु ख की बात है कि रेलवे सिस्टम के दोप के कारण किसान को इतना भारी नुक़सान उठाना पड़ता है। यह देख कर आश्चर्य होता है कि आबादी के इलाक़ों मे ही रेलों का इन्तज़ाम क्यों किया गया और जगलों को क्यों छोड़ दिया गया, हालाँकि देश को इससे काफी आमदनी हो सकती थी। सयुक्तप्रान्त के जगलो से सिर्फ़ आठ आने फी एकड़ की आमदनी सरकार को होती है। अगर इसमें से ख़र्च घटा दिया जाय, तो शायद ही कुछ बचता हो। यह क्या कम हैरानी की बात है कि विविध जल-वायु के कारण इतने विशाल देश के जगलों में प्राय हर एक किस्म की लकडी मिल जाती है, फिर भी हमें अपने देश की जरूरत को पूरा करने के लिए विदेशों से लकड़ी मगानी पडती है। अभी कुछ साल पहले तक ख़ुद रेलवे भी अपने लिए स्लीपर विदेशों से मगाती थी। पैंसिलों और दियासलाइयो के धन्धे विदेशी लकड़ी से ही चलते हैं। इस तरह रेलें न सिर्फ़ भारतीय उद्योग धन्धों की उन्नति में मदद नहीं करतीं, बल्कि उसके रास्ते में रुका वट डालती हैं। हम यहाँ सिर्फ़ दो-तीन आश्चर्य में डालने वाले उदाहरण देकर बस करेंगे और यह फैसला पाठकों पर छोड़ेंगे कि हमारी सम्मति कहाँ तक ठीक है। रियासत सितारा के लालटेन के एक कारखाने वाले ने इन पक्तियों के लेखक को बताया था कि वह चार रुपये टन के हिसाब से कोयले की खान पर कोयला ख़रीदता है, लेकिन कारखाने तक पहुँचते पहुँचते वह कोयला २६) रुपये टन पड जाता है, यानी सिर्फ़ रेल-भाड़ा २२) रुपये टन देना होता है। उन्होंने यह भी बताया कि ओगलवाड़ी

से बम्बई सिर्फ ७०० मील है, इतने से फ़ासले पर लालटेनों के एक सन्दूक पर जो खर्च आता है वह जर्मनी से बम्बई तक आने के किराये से भी चार आना ज्यादा होता है, हालाँ कि जर्मनी और बम्बई में हजारों मील का फासला है। ऐसी हालत में देशी उद्योग धन्धों के लिए विदेशी कल-कारखानों का मुक़ाबला करना असम्भव है। हिन्दुस्तान को तो अपने कच्चे माल व तैयार माल दोनों के लिए बहुत ज्यादा रेल भाड़े के रूप में देना पड़ता है। इसी रियासत में एक और कारखाना भी है, जो खेती के औजार तैयार करता है। यह भी रेलवे महसूल के बहुत ज्यादा होने की वजह से तरक्क़ी नहीं कर पाता। इसने बहुत दफा अपना मामला रेलवे बोर्ड के सामने रखा, लेकिन बोर्ड ने कोई ध्यान नहीं दिया। केन्द्रीय बैंक जाँच कमेटी को भी यह मानना पड़ा है कि हड्डी और शोरा यद्यपि बहुत बढिया खाद हैं, लेकिन फिर भी इनके मुक़ाबले में विदेशी खाद पर रियायत दी जाती है। हिन्दुस्तान के जगलों में बड़ी भारी तादाद में सडी हुई पत्तियाँ मिलती हैं, जो खाद के तौर पर इस्तैमाल हो सकती हैं, लेकिन महज रेलों के भारी महमूल की वजह से वे किसानों तक नहीं पहुँच सकतीं। इसके विपरीत विदेशों की नकली खाद को हजारों मील से लाकर रेलें किसानों के घरों तक पहुँचा देती हैं। न्यूयार्क में तो १५० मील तक से दूध आकर बिकता है, लेकिन हिन्दुस्तान म रेल की सतोप जनक व्यवस्था न होने के कारण पचास मील से भी दूध नहीं आ सकता।

रेलवे विभाग जल्दी खराब होने वाली चीजों को भी जल्दी पहुँचाने की जिम्मेवारी नहीं लेता। यह सभी जानते हैं कि व्यापारी को इस बात की गारन्टी कभी नहीं मिलती कि माल कितने दिनो में पहु च जायेगा। एक व्यापारी को तार द्वारा सूचना मिलती है कि अमुक स्थानपर अमुक वस्तु ऊँचे दामों में बिक रही

है। वह नफ़े के लिये वह चीज ख़रीद कर वहाँ रवाना कर देता है, लेकिन १० या १५ जितने दिनों में वह चीज वहाँ पहुँचती है, उस चीज के दाम कम हो जाते हैं और उसे लाभ के बजाय हानि हो जाती है। ऐसी हालत का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि व्यापारी अनिश्चय के भय से इधर-उधर माल भेजने में संकोच करते हैं। रेलवे के बरख़िलाफ शिकायतों के विस्तार में यहाँ हम नहीं जाना चाहते, लेकिन इतना हम जरूर कहना चाहते हैं कि रेलें किसान को जितना लाभ पहुँचा सकती हैं, उतना भी नहीं पहुँचातीं। १६२१ में अमेरिकन किसानों को जितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, उनकी जाँच करते हुए वहाँ के सरकारी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में रेलवे द्वारा किसानों को दी जा सकने वाली सहायता का उल्लेख किया है। उसमें लिखा है कि किसानों का कारोबार फिर से ठीक तौर पर चलाने और उनकी ख़ुशहाली के लिए यह निहायत जरूरी है कि रेलें खेती की पैदावार पर किराया भाड़ा एकदम कम कर दें। इसलिए हम सिफ़ारिश करते हैं कि रेलवे बोर्ड और दूसरी प्रतिनिधि संस्थाओं को इधर ख़ास ध्यान देना चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि कमीशन की राय में किसान की ख़ुशहाली के लिए महसूल कम करना बहुत जरूरी है, लेकिन हमारा रेलवे बोर्ड ठीक किसानों के संकट के समय भाड़ा बढ़ा देता है, ताकि सरकार का बजट संतुलित रह सके। दोनों की नीतियों में इस मत भेद की टीका करने की कोई जरूरत नहीं। रिट्रेंचमेन्ट कमीशन और एग्रिकल्चरल कमीशन की यह सम्मति है कि "माँग के साथ-साथ अगर माल ले जाने का ख़र्च भी बढ़ा दिया जाय, तो इसका परिणाम यह होता है कि ख़र्च हमेशा के लिए बढ़ जाते हैं और लागत भी इस तरह हमेशा बढ़ती जाती है।" लेकिन हमारे रेलवे बोर्ड पर इस दलील का कोई असर नहीं पड़ता। उसका कार्य क्रम यह है कि पहले ख़र्च बढ़ा

लना और फिर उसे पूरा करने के लिए किराया भाड़ा बढ़ा देना। इस तरह यह सिलसिला हमेशा जारी रहता है और देश का व्यापार नष्ट होता चला जाता है। खेती जाँच ट्रिब्यूनल ने भी रेल भाडे की कमी के महत्व को स्वीकार करते हुए बलजियम का उदाहरण पेश किया है, जहाँ छोटी रेलों का एक जाल सा बिछा हुआ है और सारे माल को इधर से उधर पहुँचा दिया जाता है। हिन्दुस्तान में कुछ सालों से रेलों ने चीनी व्यवसाय को जो थोड़ी-सी सहायता दी है, उसका परिणाम भी काफ़ी सन्तोषजनक हुआ है। यह इस बात का प्रमाण है कि रेलें व्यवसाय की उन्नति में बहुत सहायक हो सकती हैं।

रेलवे का किसी देश के व्यापार-व्यवसाय की उन्नति में कितना भारी भाग है, यही समझ कर सरकार ने नये विधान में रेलवे को जनता के प्रतिनिधियों की असेम्बली के नियन्त्रण से बाहर रखा है। रेलवे के प्रबन्ध के लिए सरकार ने एक स्थायी रेलवे बोर्ड बनाया है, जिस पर लोकमत का अधिकार या नियन्त्रण न हो सकेगा। इसका साफ़ अर्थ यह है कि भविष्य में भी हम भारतीय व्यवसाय के हित को मद्देनजर रखते हुए रेलवे की नीति का निर्धारण न कर सकें। ब्रिटिश सरकार इंग्लैंड के हितों को भारतीय हितों पर तरजीह देती रहेगी और भारतीय व्यवसाय चमक न सकेगा।

रेलवे बनाम नहरें

कभी कभी यह दलील दी जाती है कि रेलें कभी जहाजों का मुकाबला नहीं कर सकतीं, क्योंकि रेलवे का चालू खर्च जहाजों से बहुत ज्यादा होता है। यदि यह ठीक है, तो क्या हम पूछ सकते हैं कि तब फिर अँग्रेज सरकार ने भारत के जल-मार्ग से चलने वाले व्यापार को, जो उनके आने से पहले ही यहाँ अच्छी हालत में था, क्यों निरुत्साहित करके खत्म कर दिया? सर काटन ने एक स्थान पर लिखा

है "मेरा बड़ा सवाल तो यह है कि भारत जो चीज चाहता है, वह जलमार्ग के निकास से पूरी हो सकती है। रेलें अब तक बिलकुल असफल हुई हैं। वे कम महसूल पर सामान नहीं ले जा सकतीं। स्टीम बोटों की नहरों पर रेलों से आठवाँ हिस्सा खर्च होगा। नहरों से बहुत सस्ते में और जल्दी माल पहुँचाया जा सकता है।" नदियों व नहरों की कमी नहीं है। यदि जहाजों से माल ले जाने का खर्च कम होता है, तो जहाजी व्यापार को नये वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से फिर उन्नत करने से किसी को दुःख न होगा। हम जिस बात पर जोर देना चाहते हैं, वह यह है कि रेल हो या न हो, जहाज हो या न हो, सरकार का यह फ़र्ज़ है कि वह माल ढोकर ले जाने का सस्ता इन्तजाम करे। यदि सरकार किसानों की कुछ भी मदद करना चाहती है, तो खेती की पैदावार के वितरण का खर्च बहुत कम हो जाना चाहिये।

देहाती इलाक़ों के आन्तरिक भाग के यातायात साधनों के बारे में तो कुछ कहना ही बेकार है। देहातों में न तो पक्की सड़कें हैं और न कच्चा। गाँवों के पुराने रास्ते भी खेतों में शामिल कर लिये गये हैं।

हिन्दुस्तान में प्राकृतिक और कृत्रिम झरनों की कमी नहीं है, जिनसे बहुत कम खर्च में बहुत ज्यादा बिजली पैदा की जा सकती है। यदि किसी देश में बिजली बहुत सस्ती तैयार हो, तो उसकी ताक़त से बहुत से कल-कार खाने भी कम खर्च में चलाये जा सकते हैं। कोयला हिन्दुस्तान के सिर्फ़ एक हिस्से में मिलता है और इसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का खर्च भी बहुत ज्यादा पड़ता है। इसलिए कोयले की सहायता से सस्ती भाफ तैयार नहीं की जा सकती। मिट्टी का तेल भी भारत में नहीं मिलता। बरमा का तेल आता है, तो उस पर अंग्रेजी कम्पनी का अधिकार है। यह

बिजली की ताक़त

खूब महगे दामों तेल बेचती है, इसलिए उससे भी सस्ती शक्ति पैदा करना असभव है। गाँवों मे धन्धों की तरक्की के लिए सस्ती ताक़त को पैदा करना बहुत जरूरी है। बहुत-स स्थानों पर जहाँ न नहर हैं और न कुए, १०० फीट नीचे से पानी निकालने क लिए भी सस्ती ताक़त का किसानो को मिलना जरूरी है। हिन्दु स्तान में भाग्य से बहुत सी नदियाँ, नहरें और प्रपात हे, जिनसे बिजली पैदा की जा सकती है। इस दिशा में सरकार ने बहुत कम काम किया है। पश्चिमी सयुक्तप्रॉत में थोडा बहुत काम हाल में जरूर हुआ है, लेकिन अभी वह बहुत थोड़ा है और वहाँ के दर भी अभी ज्यादा हैं। किसान अपनी आमदनी में से इसका भारी बिल आसानी से नहीं चुका सकता।

रूस ने यह सिद्ध कर दिया है कि मुल्क की उन्नति क लिये सबसे पहली जरूरी चीज कम खर्च पर बिजली की ताक़त पैदा करना है। उसने महसूस किया कि आजकल के जमाने में चाहे खेती की उन्नति हो या धन्धों की, दोनो की सफलता का रहस्य इसी में है। रूस में ऐसे स्थान की कमी नहीं है, जहाँ से मिट्टी का तेल निकल सकता हो, लेकिन फिर भी खेती की उन्नति के लिये उसने बिजली की ताकत पैदा करने पर इतना जोर दिया। यों तो देश की सभी प्रकार की उन्नति के लिये बिजली जरूरी हैं, लेकिन खेती के खयाल से इसकी जरूरत और भी ज्यादा है, क्योंकि खेती के धन्धों में सबसे कम लाभ होता है। खेती की उन्नति सिंचाई और खाद पर निर्भर है। कुँओं से सिंचाई सस्ती ताक़त पर निर्भर है और खाद की समस्या भी उस समय तक आसानी से हल नहीं हो सकती जब तक वायु से कृत्रिम तौर पर नाइट्रोजन प्राप्त न की जावे। शाही खेती कमीशन ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि—"यहाँ खाद में नाइट्रोजन की बहुत कमी

खेती के लिये बिजली का उपयोग

है।" हिन्दुस्तान में नकली खाद का प्रचार नहीं हुआ और न उसके तब तक प्रचार होने की उम्मीद है, जब तक कि पैदावार के दाम इतने ज्यादा गिरे हुये रहते हैं। विदेशों में जो तरीका सफल हुआ है, वह यह है कि हवा में बिजली की एक जबर्दस्त लहर छोड़ने से नकली खाद पैदा होती है। सस्ती खाद बनाने के लिये भी बिजली की ताकत का सस्ती होना जरूरी है।

यह बात खास ध्यान देने योग्य है कि १९२२ में जर्मनी में बिजली की ताक़त के इस्तेमाल करने के लिये १४०० देहाती को आपरेटिव कम्पनियाँ थीं। इससे भी विचित्र हाल डैनमार्क का है, क्योंकि वहाँ सस्ती बिजली पैदा करने के लिये जर्मनी, नार्वे और स्वीडन की तरह न तो कोयला है और न पानी, परन्तु इन कठिनाइयों के बावजूद भी बिजली पैदा करने और आम लोगों तक पहुचाने के लिये सारे देश म सोसाइटियों का जाल बिछा हुआ है। पचास एकड़ तक के खेतों पर वहाँ जरूर बिजली मिलेगी। डैनमार्क में टेलीफ़ोनों का आम रिवाज है। वहाँ के ज्यादातर किसानों को बिजली, रोशनी और टेलीफ़ोन सुलभ हैं। ये तीनों चीजें खेती के धन्धे के लिये जरूरी हैं। हिन्दुस्तान में टेलीफ़ोन रखना भी बहुत खर्चीला है। शहरों में ही जहाँ टेली फोन काफ़ी सख्या में होते हैं, ७००) रु० सालाना खर्च होता है। देहातों में इससे कहीं ज्यादा खर्च पड़ेगा। जो किसान अपने खेतों में बिजली का प्रयोग करते हैं, उनके लिये भी टेलीफ़ोन का कोई ऐसा इन्तजाम नहीं कि जरूरत के वक्त वे बिजली के ठेकेदार या प्रबन्ध-कर्ता से किसी नुक्स की शिकायत कर सकें।

शाही खेती कमीशन ने लिखा है कि "जर्मनी, आस्ट्रेलिया और यूरोप के कुछ दूसरे छोटे-छोटे देशों में ग्रामीण धन्धों पर गांवों के घरेलू खास ध्यान दिया गया है। हिन्दुस्तान में जमीन धन्धे पर बढ़ते हुये भार को यदि कम करना है तो

लोगों का ध्यान उद्योग-धन्धों की ओर खींचना चाहिये।" इस कमीशन ने बहुत-से धन्धों के नाम भी गिनाये हैं। उनके विस्तार में न जाकर हम सरकार व जनता का ध्यान इस ओर खींचना चाहते हैं कि दूध, अनाज और तेल से सम्बन्ध रखने वाले धन्धे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और हर एक गाँव में चालू करने चाहिये। खाद्य पदार्थों के आयात के आँकड़ों पर सरसरी नजर डालने से ही यह स्पष्ट हो जायगा कि इनका आयात लगातार बढ़ता जा रहा है। हजारों लाखों मन जौ और जई पैदा करने वाले भारत के लिए क्या यह शर्म की बात नहीं है कि वह 'कुनेकर्न-ओटम,' 'पर्ल बारले' और 'ओट मील' के लिए दूसरे देशों का मुँह ताके? सालाना लाखों मन आलू, चावल, मक्का और दूसरे अनाज पैदा करने वाले मुल्क के लिए क्या यह कम शर्म की बात है कि वह अपने कल-कारखानों के लिए निशास्ता आदि दूसरे देशों से मगावे? कुछ सालों से फल भी बाहर से आने लगे हैं। इसका एक मात्र कारण यह है कि देहाती व्यवसायों की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। देश के धन्धों की उन्नति के खयाल से ही नहीं, बल्कि इस खयाल से भी इधर ध्यान देना जरूरी है कि किसान की आमदनी बढ़े बिना वह कभी सुखी नहीं हो सकता। देहाती व्यवसायों की उन्नति सामान्य व्यवसायों की उन्नति से भिन्न चीज है। देहाती धन्धों में थोड़ी पूँजी, लेकिन अच्छे संगठन और संरक्षण की जरूरत है। इनकी उन्नति से न सिर्फ किसान की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा, प्रत्युत साथ ही साथ उसका मानसिक दृष्टिकोण भी उदार होगा।

जिस जमीन पर और कोई फसल पैदा नहीं हो सकती, उस जमीन में जंगल लगाना भी बहुत महत्त्वपूर्ण चीज है। अगर घाटियों, बंजर व रेतीली जमीनों में ठीक क़िस्म के वृक्ष लगाये जायें और उनकी देखभाल की जाय,

नये जंगल लगाना

तो सस्ता ईंधन और चारा बहुतायत से मिल सकता है। यद्यपि प्रकृति ने इस दृष्टि से हमें काफी साधन दिये हैं, लेकिन उनसे फायदा नहीं उठाया जाता। किसान गोबर का क़ीमती खाद जला न डालें, इसलिए उन्हें सस्ता ईंधन देने की सख्त जरूरत है और इस खयाल से जंगलों का बनाना और दरख्तों का लगाना बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। वैज्ञानिकों का कहना है कि जंगलों से दो लाभ और भी होते हैं। एक तो वे बाढ़ों को रोकते हैं और दूसरे सूखा या अनावृष्टि भी नहीं होने देते। यही कारण है कि दूसरे देश इस दिशा में बहुत ध्यान दे रहे हैं। फ्रांस ने पिछली सदी में ३० लाख एकड़ों में नये जंगल लगाये। जर्मनी ने पिछले ५० सालों में १० लाख एकड़ जंगल लगाये। डेनमार्क में ६ लाख एकड़ जंगल है, इसमें से ७ लाख एकड़ सिर्फ १८७८ से १६०८ तक जंगल बनाये गये हैं। भारत में जंगल बनाने की दिशा में बहुत ही कम काम हो रहा है।

: ८ :

गैर-सरकारी व सरकारी संगठन

आर्थिक संकट के इन दिनों में जनता व सरकार दोनों को मिल कर इस संकट को दूर करने के लिए काम करना चाहिए था, लेकिन यदि जनता की ओर से किसान की तकलीफ़ों की जाँच करने के लिए कोई संगठित प्रयत्न होता है, तो सरकार उसे शक व शुबह की नजरों से देखती है। देश ने कई बार जोरों से यह माँग पेश की कि सरकार खेती सम्बन्धी

गैर-सरकारी संस्थाओं का अभाव

आँकड़ों का संग्रह कर यह जाँच करे कि क्या खेती के पेशे से कुछ आमदनी भी होती है या किसान लगातार घाटा ही उठा रहा है? क्या खेती की आमदनी से वह लगान व आबपाशी के खर्च भी बरदाश्त कर सकता है? लेकिन सरकार लोगों की इस उचित माँग पर भी चुप्पी साधे रही है और वह पुरानी रफ्तार से माल गुजारी व आबपाशी के टैक्स वसूल करती रही है। लगान की छूट के बारे में उसकी दलील यह रही है कि सरकार व किसान के बीच लगान का, कोई ठेका नहीं है, इसलिए सरकार को इससे कोई मतलब नहीं है। इसीलिए मालगुजारी व लगान में बहुत थोड़ी छूट दी जाती रही है। किसान ने जब कभी लगान व माल गुजारी में कमी करने की आवाज उठानी चाही है, सरकार कठोरता से उसे दबाती रही है। यह हमारी बदनसीबी है कि यहाँ किसानों की सेवा करने वाले सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को सरकार खतरनाक समझती रही है। यदि कभी किसी सार्वजनिक संस्था ने किसानों के सम्बन्ध में कोई आन्दोलन चलाया भी, तो सरकार उसे बागी करार देती रही है और उस संस्था के कार्य-कर्ताओं को जलों में बन्द करना उसकी नीति रही है। इसका नतीजा यह हुआ कि दूसरे मुल्कों में गैर सरकारी संस्थाएं किसानों की जो सेवा कर रही हैं, उससे भारत के किसान अबतक वंचित रहे हैं।

खेती की उन्नति के लिए यह निहायत जरूरी है कि एक अखिल देशीय किसान सभा हो, जिसकी शाखाए एक एक गाँव में फैली हुई हों। कार्य-कर्ताओं की एक ऐसी श्रेणी तैयार हो, जो किसानों की सेवा को अपना फर्ज समझे और इस सम्बन्ध में सब प्रकार कष्ट सहन व बलिदान करने को तैयार हो। सिर्फ सरकार पर आश्रित रहने से कभी काम न चलेगा। डैनमार्क में शिक्षा और सहयोगसम्बन्धी सारा काम गैर सरकारी संस्थाओं ने किया है। यह और बात है कि इन संस्थाओं को वहाँ सरकार की

ओर से भी आज सहायता मिलती है, लेकिन शुरूआत में तो जनता ने स्वयं ही कार्य आरम्भ किया है। इसी तरह जर्मनी में भी को आपरेटिव आन्दोलन को जन्म एक सार्वजनिक कार्य कर्ता ने दिया था और काफ़ी समय तक यह गैर-सरकारी तौर पर ही चलता रहा। यह प्रसन्नता की बात है कि हिन्दुस्तान के परिवर्तित वातावरण में जनता भी इधर ध्यान देने लगी है और किसान संगठित हो रहे हैं।

दूसरे देशों में जहाँ जनता जागृत है, वहाँ सरकार भी उदासीन नहीं है। उनमें कौण्टी कौंसिलों व खेती कौंसिलों का जाल-सा बिछा हुआ है, जिनके द्वारा किसान का संबंध केन्द्रीय संस्था से जुड़ा हुआ है। हर एक देश की संस्थाओं का आदर्श अपने अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार अलग अलग होता है, लेकिन यह हमारा दुर्भाग्य है कि भारत की विदेशी केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों का न कोई खेतीसम्बन्धी आदर्श रहा है और न स्थिर नीति, जिस पर खेती का महकमा अमल करे। कभी सारा काम केन्द्रीय कर दिया जाता रहा है, तो कभी अलग अलग क्षेत्रों में बाँटा जाता रहा है। सरकार के महकमों में आपसी सहयोग का भी अभाव रहा है। खेती के महकमे पर सरकार बहुत कम खर्च करती रही है, लेकिन इससे भी दुःख की यह बात है कि जितना खर्च किया गया है, उससे भी पूरा लाभ नहीं उठाया गया। नये विधान के जारी होने से पहले तक सरकार की यह नीति कोई नहीं समझ सका कि खेती का महकमा तो भारतीय मंत्री के हाथ में सौंप दिया, लेकिन नहरों और जंगलों का महकमा सरकार ने अपने हाथ में रक्खा। भारत जैसे गरम देश में खेती की उन्नति आबपाशी पर निर्भर है और जंगलों से मवेशियों को चारा मिलता है। फिर जब ये महकमे भी हिन्दुस्तानी मंत्री के सुपुर्द न किये जाय, जो हर हालत में किसानों की जरूरतों व कठिनाइयों से ज्यादा

सरकारी संस्थाएं

परिचित होता है, तो फिर किसान की उन्नति की क्या उम्मीद हो सकती है ? इन तीनों महकमों का एक दूसरे से इतना गहरा सम्बन्ध है कि यह देखकर आश्चर्य होता है कि ये महकमे क्यों अलग-अलग अधिकारियों के सुपुर्द किये गये ?

सरकार की आबपाशी नीति

हम पहले कहीं लिख चुके हैं कि किसान को नहरी पानी के लिए बहुत ज्यादा क़ीमत चुकानी पड़ती है। नहरों पर जो भारी रक़म लगी हुई है, उसका सूद भी उसे ही चुकाना पड़ता है। हमें महकमा आबपाशी की ऊंची दरों पर भी कोई शिकायत न होती, यदि उसका सारा ध्यान किसान की सहायता करने के बजाय अपनी आमदनी और लाभ दिखाने की ओर न रहता। उसके सामने हमेशा एक ही उद्देश्य रहता है कि चाहे फ़सल को नुक़सान पहुँच जाय, लेकिन उसका पानी बच जावे। जब नहरें बनाई गई थीं, तब किसान को हर प्रकार की सहूलियतें दी जाती थीं, लेकिन जब लोग नहरी पानी के आदी हो गये, तो सरकार ने हर साल उसी नहर में से नई-नई शाखें बनानी शुरू कर दीं ताकि ज्यादा रकबे में पानी पहुँचा कर ज्यादा पैसे वसूल किये जा सकें, लेकिन उन्होंने इससे होने वाले दुष्परिणाम की चिन्ता नहीं की। नदियों में पानी तो एक सीमा में रहता है और उसे बढाना अधिकारियों के बस की बात नहीं है। आबपाशी का क्षेत्र बढ़ाने का अर्थ यह है कि अफसरों की राय में नहरों में पानी बहुत है, लेकिन इस बात की कोई अफ़सर गारंटी नहीं दे सकता कि उतना ही पानी हमेशा मिलता रहेगा। जब नदियों में पानी की कुछ कमी होती है, तब सारे सिंचाई क्षेत्र को नुकसान होता है। यदि बढाये गये नये सिंचाई-क्षेत्र को उसी हालत में पानी मिलता, जब कि नहरों में काफी ज्यादा पानी आता, तब तो

कोई शिकायत न थी, लेकिन जब यह रकबा भी हमेशा के लि
सिंचाई क्षेत्र का अंग बन जाता है, तब इसकी हानियाँ उन दि
साफ़ नजर आने लगती हैं, जब कि पानी की कमी हो। पा
की कमी होने पर न पहले वाले रकबे को ठीक पानी मिलता
और न पीछे बढ़ाये गये रकबे को। सरकारी विशेषज्ञों व अफ
सरों का कहना है कि नहरों का उद्देश्य फ़सलों की रक्षा करन
है—जब बारिश न होती हो तो फसलों को तबाह होने से बचान
है, इसलिए जितने ज्यादा-से-ज्यादा रकबे को पानी पहुँच सके, पहुँ
चाना चाहिये, लेकिन वे इसकी जिम्मेवारी अपने ऊपर नहीं ले
कि फसलों को तैयार होने के लिए जितना पानी जरूरी हो, उत
पहुँचावें। अगर सरकार की यह स्थिर नीति है, तो नहरों क
क़ीमत दुर्भिक्ष के बीमे के सिवा कुछ नहीं है। अगर यह हाल
है, तो सरकार को जमीन पर मालगुजारी बढ़ा कर आबपाशी क
टैक्स लेना छोड़ देना चाहिये, लेकिन हम जानते हैं कि सरका
नहर से सींची जाने वाली जमीनों से आबयाने के सिवा माल
गुजारी भी ज्यादा वसूल करती है। फिर कुछ समय बाद माल
गुजारी और भी बढ़ा देती है। इस तरह नहरी इलाक़े के किसान
को बढ़ी हुई मालगुजारी और आबयाना दोनों देने पड़ते हैं।
दोहरा टैक्स वसूल करने का सरकार के पास कोई जवाब नहीं।
यदि नहरें आबपाशी की सुविधाएँ पहुँचाने के लिए हैं, तो फिर
सरकार की यह जिम्मेवारी है कि पानी ठीक समय पर और उचित
मात्रा में पहुँचावे। ऐसी हालत में यदि पानी की कमी के कारण
फ़सल खराब होती है, तो उसकी भरपाई सरकार को करनी चाहिये,
लेकिन बीसियों बार हमारा अपना यह बहुत बुरा अनुभव है कि
जब सारी फ़सल बिलकुल तबाह हो जाती है, तब भी आबयाने में
कोई छूट नहीं की जाती। किसान में इतना साहस ही नहीं है कि
वह अफ़सरों तक पहुँच सके। क़ानून के अनुसार भी नुक़सान की

मांग नहीं की जा सकती, इस विषम स्थिति से किसान को बहुत हानि होती है। कभी-कभी पानी महीने में सिर्फ एक बार मिलता है, गन्ने-सी क़ीमती पैदावार भी, जिसमें काफ़ी रुपया लगाना पड़ता है, कभी-कभी महीने में एक बार भी पानी न मिलने से सूख जाती है। कभी-कभी गेहूँ या अन्य फसलों को सिर्फ एक बार पानी मिलता है और फिर भी आबयाना पूरा का-पूरा वसूल कर लिया जाता है। सारे देश में एक भी हिस्सा ऐसा नहीं है, जहाँ कि किसान को पानी की कमी से नुक़सान न उठाना पड़ता हो।

इस सब के अलावा रेलों और नहरों की वजह से मुल्क के कुदरती पानी के निकास को बहुत नुक़सान पहुँचा है। १६७७ ई० में उत्तरी बंगाल का प्रसिद्ध दुर्भिक्ष रेल की सड़क के कारण पानी रुक जाने से ही हुआ था। अक्सर देहातों में निकास का इन्तज़ाम न होने से पानी रुक कर बदबू करने लगता है और बीमारियाँ फैलाने लगता है। कुदरती पानी के निकास का प्रबन्ध नहरी महकमे को करना चाहिए, लेकिन नहरी अफ़सर कभी इधर ध्यान नहीं देते। कई इलाकों में नहरों ने कुछ ज़मीनों को खेती के ही अयोग्य बना दिया है।

पानी के निकास का प्रबंध

भारत सरकार व प्रान्तीय सरकारों की कृषि-नीति निश्चित होनी चाहिए। कृषि-नीति का मूलभूत आधार किसान की खुशहाली होनी चाहिए। यह प्रसन्नता की बात है कि प्रान्तीय शासन विधान के बाद से प्रान्तों की लोकप्रिय पार्टियों के हाथ में प्रान्तों का शासन-सूत्र आ गया है और वे, खास कर काँग्रेसी सरकारें किसानों की ओर पिछली भयंकर उदासीनता को छोड़ कर किसानों के लिए तरह-तरह के क़ानून बनाने लगी हैं। यद्यपि वे अभी तक किसानों के हित के लिए सब उपाय अमल में लाने में

समर्थ नहीं हैं (जैसे कि विनिमय-दर तक को वे बदल नहीं सकतीं), लेकिन फिर भी वे किसानों की उन्नति का प्रयत्न करने में लगी हैं। इससे आशा होती है कि किसानों का भाग्य भी अब पलटने लगा है।

भाग ४—उपाय

: १ :

अप्रत्यक्ष उपाय

"खेती सिर्फ फसल उठा कर पैसा पैदा करने का नाम नहीं है। न खेती महज एक व्यवसाय या व्यापार ही है। यह तो एक आवश्यक सार्वजनिक सेवा है। राष्ट्र के हित के लिए व्यक्ति निजी तौर पर जमीन का इस्तेमाल व देख भाल करके यह सेवा करते हैं। किसान जब अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने या निजी लाभ उठाने के लिए भी खेती करता है, तब भी वह राष्ट्रीय जीवन के मूल आधार की रक्षा ही करता है। खेती पर हमेशा राष्ट्र के हित का स्पष्ट और निर्विवाद रूप से असर पड़ता है। खेती का महत्त्व राष्ट्रीय हित की दृष्टि से बहुत ऊँचा है और राष्ट्र को उसके बारे में दूरदर्शितापूर्ण नीति से खूब सोच समझ कर चिन्ता करनी चाहिए। यह सिर्फ इसलिए नहीं कि देश के प्राकृतिक और मानवीय साधनों की रक्षा करनी है, बल्कि इसलिए भी कि उनके द्वारा राष्ट्र की रक्षा हो, देश की सर्वांग समृद्धि हो और देश की राजनैतिक व सामाजिक योग्यता पैदा हो।"

—बिजिनैस मैन्स कमीशन पृ० ७०

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में नियुक्त कमीशन के विद्वान सदस्यों की ऊपर लिखी सम्मति दरअसल बहुत महत्त्वपूर्ण है। संसार के हर एक देश पर यह सचाई लागू होती है कि किसान के हितों की रक्षा करना प्रत्येक देश की जनता और सरकार का पहला काम है। देश की

देशव्यापी योजना

भूखी जनता की उदर-पूर्ति महज बड़े-बड़े भारी पाण्डित्यपूर्ण या हृदय-स्पर्शी शब्दों से नहीं हो जाती। शानदार वक्तृताओं से किसी खास बात के लिए जोश तो पैदा किया जा सकता है, लेकिन उससे किसानों की जीवनसम्बन्धी शिकायतें दूर नहीं हो सकतीं। उपर्युक्त कमीशन ने ठीक ही कहा है कि "किसानों का बहुत समय से चली आने वाली बीमारी सिर्फ शक्कर लिपटी राजनैतिक गोलियों से दूर नहीं हो सकती।" सैकड़ों देशी विदेशी लेखकों ने हिन्दुस्तानी किसान की करुण कहानी लिखी है, और अब यह निहायत जरूरी है कि उनकी हालत सुधारने के लिए बाक़ायदा एक योजना तैयार की जाय। हम इन पृष्ठों में कुछ उन प्रमुख उपायों का निर्देश करेंगे, जिन से किसान की ज्यादातर शिकायतें दूर हो सकती हैं। सोवियट रूस ने अपने देश की जनता के लाभ के लिए जो योजना बनाई है, उसके गुण दोषों की आलोचना में न जाते हुए भी इतना हम कह सकते हैं कि उसकी पांचसाला योजना ने सभी लोगों का ध्यान विशेष रूप से अपनी ओर खींच लिया है। सारा-का-सारा राष्ट्र ही एकदम इस योजना को अपनाने के लिए कमर कस कर खड़ा हो गया। प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बालक या बूढ़ा उसकी सफलता के लिए सरकार को सहयोग देने के लिए तैयार हो गया। इसका परिणाम भी आश्चर्यकारक हुआ। संसार के प्रायः सभी राजनीतिज्ञों ने शुरू में इस योजना का मज़ाक उड़ाया था और इसकी असफलता की भविष्यवाणी की थी, लेकिन थोड़े समय बाद ही उन्हें मालूम हो गया कि उनकी भविष्यवाणी झूठी थी। रूसियों ने जो महत्त्वाकाँक्षापूर्ण योजना बनाई थी, उसे पूरा करने में ५ साल भी नहीं लगे। चार साला में ही वह बड़ी भारी योजना पूरी होगई। इसकी सफलता का मुख्य कारण यह था कि समस्त राष्ट्र ने इस योजना की सफलता को ही अपना लक्ष्य मान लिया था। उसने

पूरी ईमानदारी, श्रद्धा, और लगन के साथ इस कामयाब बनाने की पूरी कोशिश की। इसलिए जनता को वर्तमान अवनति के गहरे गढ़े से निकालने के लिए सब से पहले जिस चीज़ की ज़रूरत है, वह यह है कि जनता में खुद अपने भाग्य निर्माण और उन्नति के लिए दृढ़ सकल्प पैदा हो। हमें पूर्ण विश्वास है कि अनेक दोषा, त्रुटियों और कमियों के होते हुए भी यदि किसी निश्चित सुधार-योजना को पूरा करने का जनता दृढ़ सकल्प कर ले, तो खुशहाली का युग जल्दी ही आ सकता है।

भाग्यवाद के विरुद्ध जहाद

बिज़िनैस मैन्स कमीशन ने एक स्थान पर ठीक ही लिखा है कि—"साधारणत किसान चतुर और बहुत सोच-समझ कर काम करने वाला होता है, लेकिन उसकी खुशहाली ज्यादातर ऐसी शक्तियों पर निर्भर करती है, जो उसके नियन्त्रण के बाहर होती हैं, इसलिए उसके दिल पर भाग्यवाद की छाप जम जाती है। और वह अपने पेशे में लापरवाह भी हो जाता है। तक़दीर पर हाथ धरे बैठना या लापरवाही दोनों ही किसी धन्धे की उन्नति के लिए खतरनाक हैं।" (पृ० १११)

भारतीय किसान के लिये तो यह वर्णन और भी ठीक है। इस लिए सब से पहला काम हमे जो करना होगा, वह किसानों में इसी भाग्यवाद और उसके परिणामस्वरूप सुस्ती और लापरवाही के विरुद्ध जहाद है। जब तक उनमें यह खयाल घना हुआ है कि उनकी दुर्दशा का कारण उनकी बदक़िस्मती है, तब तक उन्नति नहीं हो सकती। लगातार पीढ़ियों से आने वाली दुर्दशा के कारण किसानों के दिलो में ऐसा विश्वास घर कर गया है कि सुधार का उपाय जानते हुए उनमें कुछ करने का उत्साह पैदा नहीं होता। इस लिए पहला काम उनमें आशावाद का सचार करना है। हमें उन्हें यह विश्वास दिलाना चाहिये कि

प्रकृति ने उन्हें बहुत साधन और सुविधायें दे रखी हैं। यदि उन्हें शिक्षित भाइयों के असली सहयोग और सहायता का भी आश्वासन दिया जाय, तो इसमें सन्देह नहीं कि ये भी आशा और उत्साह से कमर कस कर खड़े हो जायगे। बस, आधी लड़ाई की जीत यहीं हो गई। हम यह मानते हैं कि यह काम बहुत बड़ा और कठिन है, लेकिन धैर्य, बुद्धिमत्ता और खास तरीक़े से काम करने पर सब कठिनतायें दूर हो जावेंगी। 'असफलता का भय और आत्म विश्वास की कमी राष्ट्रीय पाप हैं, भाग्यवाद और निराशावाद राष्ट्र के सब से बड़े शत्रु हैं।' हमें उनमें आशा, साहस और उत्साह का सचार करके कहना चाहिये—"उद्योगिन पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी।"

पिछले पृष्ठों को पढ़ने से पाठक शायद समझें कि हम फिर पिछले दिनों को जब हर एक गाँव आत्मनिर्भर और आत्मसन्तोषी था, वापस लाना चाहते हैं। उन दिनों के तरीक़े अच्छे थे या बुरे, वे भारत के लिये अनुकूल हैं या नहीं, इस चर्चा में गये बिना भी हम यह नि सकोच कह सकते हैं कि अब पुराना ज़माना फिर वापस नहीं आ सकता। आज १६३६ ई० में उसे फिर वापस लाने का आन्दोलन कोई असली हल नहीं है। आज के वैज्ञानिक युग में लोगों से फिर वही बाबा आदम के तरीक़े इस्तेमाल करने के लिए कहना अक़्लमन्दी नहीं है। आज रहन-सहन का जो ऊचा पैमाना बन चुका है, उसे फिर से पहले की निचली सतह पर लाना सभव नहीं। आज पुराने ज़माने की सादगी लोगों के दिलों को अपील नहीं कर सकती। यह तभी सभव हो सकता है, जब भारतवर्ष इतना अधिक शक्तिशाली हो जाय कि यह समस्त ससार के भी लोकमत को बदल सके। जब हिन्दुस्तान को बाहरी दुनिया के साथ चलना है, तब उसे

पिछला समय नहीं आ सकता

पीछे की ओर चलना बन्द करना पड़ेगा। उसकी मुक्ति वर्तमान सभ्य राष्ट्रों के आधुनिक मार्ग पर चलने में ही है।

जनता में संगठन की शक्ति और महत्व का प्रचार करना चाहिये। वर्तमान सभ्यता में सफलता पाने की पहली सीढ़ी संगठन है। हिन्दू शास्त्रों ने भी 'संघे शक्ति कलौ युगे' कह कर संगठन की शक्ति को मंजूर किया है। हम कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों, संगठित संसार से मुकाबला नहीं कर सकते। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में 'संगठन' हमारा आदर्श होना चाहिये।

संगठन

यदि आज भी हम अकेले रहने या व्यक्तिवाद में विश्वास करते रहेंगे, तो हमारा भविष्य अन्धकारमय होगा।

यह निश्चित है कि भारतवर्ष में केवल खेती का व्यवसाय ३७ करोड़ निवासियों का पेट नहीं भर सकता। जमीन पर पहले ही इतना भार है कि अब उसे वह कुछ दिन और भी बरदाश्त नहीं कर सकती। इस का यह अर्थ नहीं है कि हमारी धरती की उपज हमारे देश वासियों को भोजन नहीं दे सकती। प्रत्युत भारत भूमि ७० करोड़ प्राणियों की उदरपूर्ति कर सकती है, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन आज के अन्तर्राष्ट्रीय युग में कच्चे माल का निर्यात भी तो आवश्यक है। जबतक भारतवर्ष को सैकड़ों तरह के माल के लिए विदेशों पर निर्भर रहना है, तबतक उसे आयात के बदले में अपने कच्चे माल का निर्यात करना ही होगा। वह संसार से अपने को अलग कर ही नहीं सकता। फिर जबतक विदेशों से कच्चे माल की माँग आती है, और अच्छा मूल्य मिलता है, तबतक कच्चा माल वहाँ जायगा ही, चाहे उसके कारण यहाँ के गरीब भारतीयों को भूखा ही रहना पड़े। इसके लिए जरूरी है कि यहाँ के गरीब किसानों की क्रय-शक्ति बढ़ाई जाय और वे अपनी दयनीय आर्थिक

स्वदेशी का व्रत

स्थिति के कारण अपने आप भूखे रह कर अपनी फ़सल बेचने को बाधित न हों। उद्योग धन्धों की उन्नति के बिना क्रयशक्ति नहीं बढ सकती। इसका इलाज यह है कि खेती पर गुजारा करने वाली भारी संख्या में से एक बड़े हिस्से को दूसरे धन्धों की ओर लगाया जाय। बिज़िनैस मैन्स कमीशन की रिपोर्ट में लिखा है कि वैज्ञानिक खेती से पैदावार बढने का परिणाम सदा किसान का फ़ायदा नहीं होता, उसे तो बहुत दफ़ा नुक़सान भी उठाना पड़ता है। यही कारण है कि खेती में वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग इतने धीरे धीरे बढ रहा है। इसके बाद कमीशन इस नतीजे पर पहुँचा है कि किसान की आमदनी बढाने का एकमात्र तरीक़ा ज़मीन पर गुज़ारा करने वालों की सख्या घटाना है। यह उस देश के प्रामाणिक विद्वानों की सम्मति है, जहाँ सिर्फ़ २५ फ़ीसदी जनता खेती पर गुज़ारा करती है, भारत में तो, जहाँ ७० फ़ीसदी जनता खेती पर निर्वाह करती है, यह दलील और भी ज़ोरों के साथ लागू होती है। इसलिए हमें अपनी काफ़ी बड़ी तादाद खेती से हटा कर दूसरे धन्धों में लगानी पड़ेगी। १८८० ई० में दुर्भिक्ष कमीशन ने भी अकाल के भयकर परिणामों पर विचार करने के बाद यह राय दी थी कि "इसका मुकम्मल हल खेतीके अलावा और ऐसे धन्धों की तरक्की पर है, जिन पर अतिवर्षा, अनावृष्टि आदि प्राकृतिक विपत्तियों का बहुत कम असर पड़ता है।" यह सम्मति आज से ६० साल पहले दी गई थी, जबकि ५८ फ़ीसदी आबादी खेती पर गुज़ारा करती थी। आज तो, जबकि ७३ फ़ीसदी जनता खेती पर निर्वाह करती है, यह सचाइ और भी आदरणीय है।

देश में उद्योग धन्धों की तरक़्क़ी यद्यपि आसान नहीं है, तथापि असम्भव भी नहीं है। यदि पूँजीपतियों को यह विश्वास दिलाया जा सके कि उनकी पूँजी से काफ़ी आमदनी मिल सकेगी तो कारख़ाने चलाने के लिए शीघ्र ही धन सचय हो सकता है।

सरकारी कागजों और सेविंग बैंकों में काफी रुपया पड़ा हुआ है। यदि सरकार कारखानों की सहायता का वचन दे तो एकदम हमारा सारा कच्चा माल मूल्यवान वस्तुओं में परिणित हो सकता है। जापान ने थोड़े ही वरसों में सरकारी सहायता से अपने उद्योग-धन्धों की तरक्की की है। फिर पूँजीपति भी रुपया लगाने को तैयार हो जावेंगे। यदि उन्हें यह विश्वास हो जावे कि उनका माल चाहे विदेशी माल से थोडा-सा महँगा भी हो, बिक जावेगा। इसके लिए देश में स्वदेशी की भावना पैदा करनी होगी।

यदि हम ३५ करोड़ भारतीय एक बार स्वदेशी-व्रत का दृढ सकल्प कर लें, तो फिर न हमें सरकारी सहायता की अपेक्षा करनी होगी और न विदेशी माल के मुक़ाबले का डर। हिन्दुस्तान का आन्तरिक व्यापार विदेशी व्यापार से ११ गुना है। इतने बड़े बाजार के होते हुए यदि हमारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बन्द भी हो जाय, तो खास चिन्ता की बात नहीं। सिर्फ़ जरूरत है, दृढ़ सकल्प की। चाहे स्वदेशी माल कुछ घटिया भी हो, महँगा भी हो, तो भी स्वदेशी माल लेने की दृढ भावना से हमारे देश की आर्थिक समस्या हल हो सकती है। 'स्वदेशी खरीदो' यह हमारा मूल मत्र होना चाहिए। हम सदियों से गुलाम हैं और सगठन, आत्म-विश्वास और दृढ सकल्प के बल को भूल चुके हैं। ससार में कोई ऐसी शक्ति नहीं, जो ३५ करोड भारतीयों के दृढ़ सकल्प का मुक़ाबला कर सके।

महात्मा गान्धी ने चरखे और खद्दर का नया आर्थिक आन्दोलन जारी किया है। इस धन्धे के कारण आज लाखों प्राणियो का उदर निर्वाह हो रहा है। चरखा सघ की १६३७ की रिपोर्ट से मालूम होता है कि चरखा सघ के बुनकरों और कत्तिनों की सख्या क्रमश १३५६८ और १७७८६६ थी। इसके अलावा, धोबियों, रगरेजों आदि की सख्या भी हजारों में

घरेलू धन्धे

है। इसी तरह यदि और धन्धों की तरफ़ ध्यान दिया जाय, तो लाखों करोड़ों आदमियों को रोज़गार मिल सकता है। और इसका परिणाम यह होगा कि ज़मीन पर किसानों में प्रतिस्पर्धा कम हो जायगी, लगान कम हो जायगा, कृषिजन्य पदार्थों के दाम बढ़ जायेंगे तथा किसान खुशहाल हो जायगा।

निर्यात में कमी का भय

कभी-कभी स्वदेशी व्यवसाय के प्रोत्साहन के विरुद्ध यह दलील दी जाती है कि यदि हम विदेशों से तैयार माल न मंगावेंगे, तो उसके बदले में वे भी हमारे देश से कच्चा माल मंगाना बन्द कर देंगे। इसका परिणाम यह होगा कि किसानों के माल की माँग कम होगी और उन्हें कम पैसा मिलेगा, लेकिन दरअसल इस दलील में कोई वज़न नहीं है। पहली बात तो यह है कि विदेशी व्यापार के आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि यह ज़रूरी नहीं है कि जो देश जितना अधिक माल भेजता है, उतना ही अधिक माल हमारे यहाँ से मंगाता है। इंग्लैंड कपड़ा ज़्यादा भेजता है, लेकिन रूई कम मंगाता है। दूसरी बात यह है कि कच्चे माल के बाज़ार में यदि भारत अन्य देशों से मूल्य और पदार्थ की उत्तमता में मुक़ाबला कर सकता है, तो विदेशों में भारतीय कच्चा माल खपेगा ही, चाहे हम उनसे उतनी मात्रा में पक्का माल मंगाते हों, या न मंगाते हों। इसके विपरीत यदि हमारे कच्चे माल का दाम ज़्यादा और माल घटिया है, तो विदेश हमारा माल नहीं खरीदेंगे, फिर भले ही हम उनसे कितनी भारी तादाद में पक्का माल मंगाते हों। तीसरी बात यह है कि हम यदि यह फ़र्ज़ भी करलें कि विदेशों में कच्चा माल जाना बन्द हो जायगा, तो इससे हमें कोई हानि नहीं होगी। हम अपने कच्चे माल से अपने ही देश में तैयार माल करके विदेशों में भेजेंगे और कुछ समय बाद उन देशों से अच्छी तरह मुक़ाबला कर सकेंगे, जिन्हें कच्चे माल के लिए विदेशों का मुँह ताकना

पड़ता है। इस बारे में डैनमार्क का इतिहास हमारी आँखें खोल देगा। वह पहले कच्चा माल बाहर भेजता था, लेकिन जब से उसने खुद माल तैयार करना शुरू किया, तो दो एक साल तक उसका निर्यात गिरने के बाद तैयार माल का बाहर जाना पहले की बनिस्बत बहुत बढ़ गया।

हमारे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की सब से पहली और सब से मुख्य समस्या करोड़ों जनता में, जिनमें ज्यादातर किसान हैं, शिक्षा का प्रचार है। टर्की और रूस ने पुनर्निर्माण करते हुए सब से पहला जो काम किया, वह था निरक्षरता और जहालत के विरुद्ध जहाद। दोनों देशों ने यह उद्देश्य बना लिया कि एक भी तुर्क और रूसी अशिक्षित न रहे। इसका फल भी चमत्कारपूर्ण हुआ। आज दोनों देश कुछ ही अरसे में एक सदी आगे बढ़ गये हैं। अब प्रान्तीय सरकारों का ध्यान अशिक्षा—निवारण की ओर जा रहा है, यह प्रसन्नता का विषय है, लेकिन सिर्फ सरकार के भरोसे ही हमें न बैठ जाना चाहिये। बहुत से सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को शिक्षा प्रचार अपने जीवन का उद्देश्य बना लेना चाहिये। एक बार जहाँ लोगों में पढ़ने की रुचि पैदा हो गई, वहाँ फिर शान्त नहीं हो सकती। प्रत्येक धर्मशाला, प्रत्येक मन्दिर और प्रत्येक मस्जिद और चर्च शिक्षा के मन्दिरों के रूप में बदल दिये जाने चाहिये। राष्ट्र के चेहरे पर से अशिक्षारूपी कलक को धोने के बाद ही हम दूसरी दिशाओं में भी कुछ उन्नति कर सकेंगे। प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा आज हमारे राष्ट्र की सब से बड़ी जरूरत है और इसे पूरा करने के लिये हमें सब ओर से अशिक्षा-रूपी पिशाच पर एक साथ मिल कर आक्रमण करना चाहिये।

शिक्षा का प्रचार

प्रत्यक्ष उपाय

भारतवर्ष की गरीबी की समस्या दरअसल पेट का सवाल है। हिन्दुस्तानी गरीब को खाने को भी नहीं मिलता। यही

गरीबी का सवाल

कारण है कि वह अच्छा खाने वाले यूरोपियन मजदूर की तरह पूरी ताक़त और योग्यता से काम नहीं कर सकता। गरीबी के सवाल को हल करना चाहिये, और जल्दी ही करना चाहिये। इसमें देर की जरा भी गुंजायश नहीं है। सरकारी अफ़सर, देशभक्त कार्यकर्ता और प्रत्येक सुधारक, मतलब यह कि प्रत्येक ऐसे मनुष्य की सारी ताक़त इसी सवाल को हल करने में लग जानी चाहिये, जो सोचने के लिये दिमाग, अनुभव करने के लिये हृदय और काम करने के लिये हाथ रखता है। यदि हम मानव सम्पत्ति की भी रक्षा न कर सके, तो हमारा आन्दोलन, हमारे धुआधार भाषण, नये नये पाण्डित्यपूर्ण सिद्धान्त, योजना और नई खोज आखिर किस काम की है? इस लिये हमें कमर कस कर खड़े हो जाना चाहिये और समय रहते इस सवाल को हल कर लेना चाहिये।

लेकिन सब से बड़ा सवाल तो यह है कि यह करें कैसे? दान और चन्दों से यह काम नहीं चल सकता, क्योंकि दान की

करें कैसे?

मात्रा कितनी भी ज्यादा क्यों न हो, उससे करोड़ों लोगों का पेट नहीं भर सकता। इसलिए इसका असली हल यही हो सकता है कि किसानों से ठीक क़िस्म का भोजन ज्यादा मात्रा में पैदा करायें और इस बात का इन्तज़ाम करायें कि उन्हें खाने के लिए भी काफी बच जाये और भाव भी न गिरे।

इसमें जो सब से बड़ी आधार भूत कठिनता है, और जिसका

हम पहले भी जिक्र कर चुके हैं, यह यह है कि पिछले जमाने में जो किसान खेती को स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने की एक पद्धति मानता था, आज वही किसान परिस्थितियों से विवश होकर खेती को एक व्यापार के तौर पर करता है। एक पेशे को व्यापारिक दृष्टि से सफल बनाने के लिए एक दूसरी ही मनोवृत्ति और दूसरी ही योग्यता चाहिए। इसलिए हमें कोई ऐसी सूरत निकालनी चाहिए कि चतुर और व्यापारियों का सा हानि-लाभ का हिसाब लगाने वाला दिमाग खेतों पर मेहनत व मशक्कत करने वालों के साथ शामिल हो जावे। हम पहले देख चुके हैं कि हिन्दुस्तान का किसान पैदा करने वाला, बेचने वाला, मजदूर और पूँजीपति सभी कुछ एकसाथ है। एक अशिक्षित किसान से यह आशा करना कि उसने इन सभी के गुण बिना कुछ पढे सीखे होंगे, असम्भव की आशा करना है। जब यह बात हमने मान ली, तब फिर जरूरत इस बात की है कि व्यापारिक बुद्धि रखने वाले को किसान से मिला दिया जाय। दोनों को एक-दूसरे के साथ मिला देना चाहिए ताकि दोनों एक-दूसरे की कमी पूरी कर सकें। जब कभी किसान अपना माल दलाल के जरिये से बेचता है, तो दलाल इससे अनुचित लाभ उठाता है। यदि किसान का काम केवल माल पैदा करना रहे और उसके माल की बिक्री का कार्य उसके हित की दृष्टि से कोई और करे तो यह आपत्ति दूर हो सकती है।

कहा जाता है कि रूस ने इस समस्या को हल कर लिया है। इस के लिये वहाँ तमाम जमीन सरकार ने अपने हाथ में ले ली है।

रूस का हल ठीक नहीं

वहा सरकार हर एक मनुष्य को काम देती है और खाने पहिनने की जरूरतें भी पूरा करती है। यद्यपि समाजवाद का यह विचार बहुत आकर्षक है तथापि यह समस्या का सच्चा हल नहीं है। सब से पहली बात तो यह है कि तुम ऐसा करनेका गरीब किसान से वही पेशा छीन लेना

चाहते हो, जिस की हालत तुम सुधारना चाहते हो और गरीब का राज्य के अफसरों की दया पर छोड़ देना चाहते हो। रूसी पद्धति का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि थोड़े-से इने गिने ऊंचे अफसर सारे राष्ट्र के लिये काम करते और सोचते हैं। इस पद्धति में सब से बड़ा दोष यह है कि व्यक्ति अपने किसी काम में स्वतन्त्र नहीं रहता। इस में एक मनुष्य को दूसरे का औजार सा बना दिया जाता है। हिन्दुस्तान जैसे देश में इतने विस्तृत अधिकार अफसरों के हाथ में सौंप देने को कोई राजी न होगा।

मानव प्राणी को मशीन-सा बना देने का, दूसरों की इच्छा के आधीन काम करने का विचार ही हिन्दुस्तानी बरदाश्त नहीं कर सकते। भारतीय विचार धारा के अनुसार परमात्मा ने हर एक मनुष्य को कार्य करने में स्वतन्त्र बनाया है। इस लिये रूस की पद्धति भारत में सफल नहीं हो सकती और न हमें पसन्द ही आ सकती है। इस के अलावा भी यदि हम रूस का इतिहास पढ़ें तो हमें मालूम होगा कि उसे भी अपना यह विचार छोड़ना पड़ा और लाचार होकर किसानों को कुछ जमीन पर अपनी मरजी के मुताबिक बीज बोने की आजादी देनी पड़ी। यह ठीक है कि उस पर सरकार की आम देख-रेख व निरीक्षण जरूर रहा।

इस तरह हम यह कभी नहीं मान सकते कि अपने स्वतन्त्र पेशे के कारण एक समय समाज में किसान की जो इज्जत थी, उससे यह वंचित कर दिया जाये, लेकिन इसके साथ ही हम उसे भूखों मरता भी नहीं देख सकते।

हमारा लक्ष्य

हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम जितना आज पैदा करते हैं, उससे कहीं ज्यादा पैदावार करें, लेकिन यह ज्यादा पैदावार किसान के पास ही अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए रहनी चाहिए, न कि बाजार में आकर कृषि-जन्य पदार्थों का मूल्य

घटाने के लिए गिरा दे।

इसी उद्देश्य को सामने रखते हुए हमारी यह सम्मति है कि शिक्षित, समझदार व सजीदा लोगों को किसानों में सामूहिक और मिश्रित खेती का प्रचार करना चाहिए।

सामूहिक खेती से हमारा मतलब यह है कि तमाम गाँव को किसानों की टुकड़ियों में बाँट दिया जाय और हर एक टुकड़ी के किसान एक साथ मिलकर अपनी खेती करें। जिन किसानों के खेत पास पास हों, उन्हें इस खयाल से कि ज्यादा अच्छे तरीक़े से खेती हो सके, मिला देना चाहिए और तमाम मजदूरी, पूँजी व औजारों को एक जगह इकट्ठा कर देना चाहिए, ताकि काफी बडा खेत निकल आवे और छोटे-छोटे खेतों को, जिन्हें आजकल ठीक तौर से नहीं बोया जा सकता, ज्यादा अच्छी तरह काश्त किया जा सके। हर एक किसान को मेहनत व पूँजी के अनुपात से पैदावार में से हिस्सा मिलना चाहिए। इस तरह से फिर खेतों के एक स्थान पर एकत्रीकरण की भी जरूरत महसूस न होगी। अच्छे औजार, बढिया बीज और सिंचाई आदि की सहूलियतें भी आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं। अच्छी साख की वजह से रुपया भी, जो आजकल कम मिलता है, थोड़े सूद पर मिलने लगेगा। एक लाभ यह भी होगा कि भिन्न भिन्न लोगों के अनुभव, समझदारी और मेहनत का भी एक साथ फ़ायदा उठाया जा सकेगा। इस पद्धति से न केवल आर्थिक लाभ होंगे, बल्कि और भी अप्रत्यक्ष लाभ मिल सकते हैं। किसान सगठन शक्ति के महत्त्व को समझेंगे, उनको अनुकूल बाजार मिलेगा, वे बढ़िया माल पैदा कर सकेंगे और अपनी सन्तान की शिक्षा-दीक्षा की ओर ध्यान दे सकेंगे। मुकदमेबाजी की बीमारी दूर हो जायगी तथा उनका

सामूहिक खेती

भविष्य ज्यादा खुशहाल और आशाजनक हो जायगा। जिन छोटे-छोटे टुकड़ों से आज कोई लाभ नहीं हो रहा, व भी बड़े खेत का अंग बन कर कुछ ज्यादा पैदावार देने लगेंगे।

सामूहिक खेती का ख्याल तो बहुत पुराना है और आज से ३० वर्ष पूर्व तक ग्रामों के अनेक खेती के कार्य सामूहिक रूप में हुआ करते थे। परन्तु आधुनिक समय में रूस देश में यह कार्य बड़े जोर के साथ किया जा रहा है। हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे इसके सम्बन्ध म पूरी पूरी जानकारी प्राप्त करें। इस छोटी सी पुस्तिका में इसका पूरा पूरा ब्योरा देना असम्भव है, तथापि हम वहाँ का कुछ थोड़ासा हाल लिख देना उचित समझते हैं।

रूस में ६६ फ़ीसदी खेती सामूहिक रूप से होती है। सन् १९१७ तक खेती करने वाले किसान अपने २ खेत जोतते थे। चाहे वे उनके स्वयं मालिक थे या जमींदारों से लगान पर लेते थे। रूस सरकार रुपये में विश्वास नहीं करती, प्रत्युत यह समझती है कि देश की सब वस्तुओं की मालिक वहाँ की सरकार या वहाँ रहने वालों का जनसमूह है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी अपनी योग्यतानुसार काम करना चाहिये और प्रत्येक मनुष्य को उस की जरूरत के अनुसार वस्तुएं प्राप्त होनी चाहिये। इस प्रकार संसार में न कोई गरीब होगा और न अमीर। न कोई पूँजीपति होगा न कोई किसी वस्तु का मालिक। यह आयोजना क्रांति का मुख्य कारण थी। पुराने राज्यक्रम को समाप्त कर के पहिले तो सरकार ने बैंक, कारखानों आदि को अपने कब्जे में कर लिया और उस समय किसानों को अपने २ खेतोंका स्वामी छोड़ दिया गया, अलबत्ता बड़े-बड़े जमींदारोंकी जमीन तथा सम्पत्ति छीन-छीनकर सब किसानों में बाँट दी गई। यद्यपि सामूहिक खेतों में सरकारी नेताओं को पूर्ण विश्वास था, परन्तु १९२७ तक इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसके पश्चात् किसानों को सरकार की

ओर से यह शिक्षा दी गई कि वे अपने लाभ को स्वय ध्यान में रख कर सामूहिक खेती आरम्भ करें। जो लोग ऐसा करेंगे, उन्हें सरकार मैशीन आदि से सहायता देती थी, परन्तु १६२८ तक इस में विशेष उन्नति न हो सकी। सरकार किसानों के विद्रोह से डरती रही और उसने किसानों को सामूहिक खेतीके लिये विवश करना उचित न समझा। १६२८ में जब सरकारने यह देखा कि किसानों से अन्न आदि इकट्ठा करने में बड़ी कठिनाई होती है, तो उन्हों ने एकदम सामूहिक खेती की बडे पैमाने पर नींव डाल दी और खाते पीते किसानों को विवश किया गया कि वे साधारण ग़रीब किसानों के साथ मिलकर खेतीबाड़ी करें। इस विवशता का एक ओर तो यह परिणाम हुआ कि मालदार किसानो ने अपनी सम्पत्ति तथा बैल, गाय, घोड़ों को मार डाला और दूसरी ओर काफी ट्रैक्टरों तथा अन्य मशीनों का पूरा पूरा प्रवन्ध न होने तथा उचित प्रकार के सुशिक्षित आदमियों के न मिलने से सब कार्य अस्त व्यस्त हो गया। कहीं बीज न होने से खेत नहीं बोये गये। कहीं मशीन ठीक समय पर न मिलने से समय पर खेत न जोते जा सके, इत्यादि २। सन् २८ से ३३ तक का इतिहास बडे दु ख का इतिहास है, जिस में किसानों को बडे कष्ट उठाने पडे। जो महानुभाव सामूहिक खेती में विश्वास रखते हो, उन्हें इस समय का इतिहास पढने से वे सब त्रुटिया, जिन के कारण रूस में कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं, समझ में आजायँगी। उसके बाद से कार्य ठीक चल रहा है। अब सारे रूस के ६६ फीसदी खेत सामूहिक खेती द्वारा जोते जाते हैं। १००० एकड़ से प्राय बड़े बडे फार्म रूस में अधिकतया पाये जाते हैं। छोटे छोटे खेत सब मिलकर बडे २ खेत बन चुके हैं। अलबत्ता किसानों की खाने पीने की अवस्था को देख कर अब प्रत्येक घर को थोडी थोड़ी धरती के बोने तथा कुछ दूध के मवेशी रखने का हक़ दे दिया गया है, जिस

से प्रत्येक किसान अपनी तरकारी तथा भोजन की सामग्री स्वयं पैदा कर सके। लाखों ट्रेक्टर अब रूस में चलाये जाते हैं और लाखों एकड़ रकबा, जिस में कुछ भी पैदा न होता था, स्वादिष्ट अन्न फल पैदा करता है।

यद्यपि रूस जैसा विप्लव पैदा कर के यहाँ सफलता होने की आशा नहीं है और न इतने बड़े २ खेत यहां बनाये जाना और ट्रेक्टरों का उपयोग देश में लाभकारी हो सकता है, तथापि यदि छोटे २ किसान एक जगह मिल कर अपनी प्रसन्नता से कार्य करें तो खेती की उपज बहुत बढ़ सकती है, खेती करने के ढंग में उन्नति हो सकती है तथा रहन सहन का तरीका उत्तम हो सकता है और आने वाली संतान अधिक उपयोगी कार्य करने योग्य तथा खुशहाल बनाई जा सकती है।

मिश्रित खेती मे हमारा मतलब यह है कि खेती के काम के साथ-साथ दूध मक्खन, अण्डे आदि का धन्धा भी शुरू किया जाय।

मिश्रित खेती

इस से किसान को कई लाभ होंगे। पहला लाभ तो यह है कि इस से किसान को भी दूध-दही मिलने लगेगा। यदि वह मक्खन बेच देंगे तो भी उसे मक्खन निकला दूध या छाछ मिलेगा, जो आज कल के बिल्कुल रद्दी भोजन से तो कहीं अच्छा है। मवेशियों के गोबर की शक्ल में उसे बढ़िया खाद भी मिलेगा। किसान और उस के परिवार को काम भी मिलेगा।

इस योजना पर दो ऐतराज किये जा सकते हैं। पहला तो यह कि किस तरह जुदा जुदा जमीनों या किसानों को एक साथ मिलाया जा सकता है? यह कई तरीक़ों से किया जा सकता है। इन में सब से अच्छा उपाय को-आपरेटिव सोसाइटियां बनाना है, बशर्ते कि इन पर सरकारी अफ़सरों का नियंत्रण न हो। इस तमाम योजना की सफलता दरअसल इस बात पर निर्भर है कि लोग खुशी खुशी इस में सम्मिलित हों। अपने आदर्श तक पहुँचने का यह

सब से कम खर्चीला उपाय है।

सामूहिक खेती का दूसरा तरीक़ा यह है कि किसान ज्वायंट स्टाक कम्पनियां बना लेवें। इस सूरत में सरकार रजिस्टरी की मामूली-सी फीस रख दे। रजिस्ट्रार ऐसी कम्पनियों के हिसाब किताब की देख भाल करता रहे, ताकि कोई गड़बड़ी न होने पावे।

इसमें दूसरा ऐतराज़ यह हो सकता है कि खेतों को मिला देने से बहुत-से किसान बेकार हो जावेंगे और इस तरह हमारा मूल उद्देश्य ही नष्ट हो जायगा, लेकिन इसीलिए हम सामूहिक खेती के साथ मिश्रित खेती की भी सलाह दे रहे हैं। हमारा ख़याल है कि सामूहिक और मिश्रित खेतियां को अलग अलग नहीं किया जा सकता। एक के बग़ैर दूसरी में सफलता नहीं मिल सकती। सामूहिक खेती से बहुत-से किसानों की जो मेहनत बच जावेगी, उसके दो उपयोग हो सकते हैं। एक तो मिश्रित खेती, दूध, मक्खन, घी आदि का धन्धा, दूसरे नये साधनों और नई सुविधाओं के कारण खेती और भी बड़े पैमाने पर होने लगेगी, उसमें बेकार लोग लग सकेंगे। फसल पैदा करने का तरीक़ा भी बदल जायगा। आलू, गाजर, शलगम, प्याज आदि जड़ों वाली फ़सलें आजकल से ज्यादा पैदा करनी होंगी। इनके बोने से किसान और उसके मवेशियों को अच्छा भोजन भी मिल सकेगा। अलग अलग स्थानों की परिस्थितियों के अनुसार इन सब पर और भी विचार किया जा सकता है।

दूसरा ऐतराज़

हर एक काश्तकार को, जो अपने हाथ या बैलों से खेती पर कोई भी काम करता है, मुआवज़ा नक़दी में न मिल कर पैदावार के रूप में मिलेगा। इसके भी दो कारण हैं। पहला तो यह कि इसमें आसानी से वेतन दिया जा सकता है। दूसरा कारण यह कि इससे किसान को अपने खाने और पहनने के लिए भोजन और

रुई आदि मिल जायगी। इसी उद्देश्य से तो यह योजना चलाई गई है। हमें इसमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं कि यदि इस स्कीम पर निस्स्वार्थ और ईमानदार लोग सच्चे दिल से अमल करें तो इसमें सफलता जरूर मिलेगी और ग़रीब किसान की बहुत-सी मुसीबतें इससे दूर हो जायेंगी।

किसान की उन्नति के लिए सबसे पहली और जरूरी चीज भूमि-व्यवस्था है। दुनिया के दूसरे सभी देशों में जमींदारी या सामन्तशाही करीब-करीब खतम हो चुकी है, लेकिन हिन्दुस्तान में अभी तक बदक़िस्मती से खूब फल फूल रही है। भूमि पद्धति में एक दम क्रान्तिकारी सुधार की आवश्यकता है। भारतवर्ष की ख़ुशहाली में सबसे बड़ी रुकावट यह है कि यहाँ सब रुपया जायदादों में लगाया जाता है और फिर वहीं रुक जाता है। इसलिए न तिजारत के काम आता है, न उद्योग धन्धों के। महाजन यह सोचते हैं कि जायदाद को रहन रख कर कर्ज ज्यादा सुरक्षित रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि कुछ समय बाद वे खुद जमींदार बन जाते हैं और उनका रुपया जमीन जायदाद में रुक जाता है अर्थात वह रुपया किसी नये व्यापार या व्यवसाय में लगाने लायक़ नहीं रहता। हिन्दुस्तान के कई बैंक, जो ज्यादातर ताल्लुक़ेदारों व जमींदारों से लेन-देन करते हैं, एक अरसे बाद खुद बड़ी बड़ी जायदादों के मालिक बन जाते हैं और इस तरह उनका सारा रुपया रुक जाता है तथा देश के धन्धों को बढ़ाने में जरा भी मदद नहीं मिलती और वह बैंक बन्द हो जाते हैं

ज़मीन किसान की हो

भूमि परमात्मा की देन है और किसी राष्ट्र को उसे बिगाड़ने का, उसका दुरुपयोग करने का अधिकार नहीं है। यदि कोई देश भूमि का दुरुपयोग करता है, तो रुद्र प्रकृति का कठोर दण्ड भी उस देश को जरूर मिलता है। इसलिए वही भूमि-व्यवस्था सर्वो-

तम मानी जायगी, जिसमें भूमि राष्ट्र को ज्यादा-से-ज्यादा पैदावार दे। इसका सबसे अच्छा तरीका यह है कि जमीन बोने वाले किसान की अपनी जायदाद होनी चाहिए। एक राष्ट्र की खुशहाली के लिए यह जरूरी है कि किसानों को जमीन का मालिक बनाने के मूल भूत सिद्धान्त को अमल में लाया जाय। कृषकस्वामित्व (Peasant Proprietor ship) के असूल को पश्चिम के प्राय: सभी देशों ने अपनाया । हमें भी यह अपनाना चाहिए।

हम यह नहीं कहना चाहते कि जमींदारों को उनकी विरासत में मिली हुई या खरीदी हुई जायदाद से एकदम अलग कर दिया जाय। न यह अमली तरीक़ा ही है। हम व्यक्तिगत स्वामित्व के सिद्धान्त की क़दर करते हैं, लेकिन उसके साथ ही राष्ट्र या देश के हित के लिए व्यक्तिगत हितों के बलिदान के सिद्धान्त पर भी विश्वास रखते हैं। हमारी यह दृढ सम्मति है कि सरकार और लोगों को जमीन की मिलकियत जमींदारों के हाथ से निकाल कर किसानों के हाथ में करने का एक दृढ और निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए। सरकार की सहायता से इस काम में बहुत आसानी मिल सकती है। अगर किसानों को कम सूद पर रुपया मिल सके, जो उनसे ४०-६० सालों के अरसे मे छोटी-छोटी किस्तों में वसूल किया जाय और जिस जमीन को वे काश्त करते हैं, उसे उचित मूल्य पर अदालतों के द्वारा खरीदने की आज्ञा हो तो बहुत थोडे समय में बहुत से किसान अपनी जमीनों के मालिक हो सकते हैं। कोर्ट आफ वार्ड्स भी इस बारे मे बहुत मदद कर सकते हैं। वे नीलामी आदि द्वारा जमीन-जायदाद न बेच कर और उसके छोटे-छोटे टुकडे करके किसानों को ही बेच सकते हैं। ऐसे किसानों को मूल्य चुकाने के लिए सरकार लम्बी क़िस्तों में वसूल करने की शर्त पर रुपया दे सकती है। आजकल जैसे किसान प्रति वर्ष

बोलशेविज़्म नहीं

लगान देता है, उसी तरह दस-बीस या तीस साल तक लगान के साथ-साथ मूल्य की भी किस्त देता रहे, तो उतने अरसे बाद ज़मीन उसकी अपनी मिलकियत हो जायगी। ज़मींदारों के अधिकारों को बिना कोई चोट पहुँचाये ज़मीन की मिलकियत किसानों के हाथ में सौंपने के और भी कई तरीक़े निकल सकते हैं। ज़मींदार की अपनी काश्त के लिए एक वाजिब हिस्सा छोड़ कर बाकी सब ज़मीन किसानों को बेचने के लिए क़ानून द्वारा भी सहायता ली जा सकती है। यदि किसानों के स्वामित्व की नीति को स्वीकार कर लिया जाय, और आवश्यक क़ानून की सहायता से इस नीति पर ईमानदारी से अमल किया जाय, तो फिर किसानों के जोत की रक्षा आदि के लिए सुधारों की जरूरत ही न रहेगी।

खेती के सुधार के सिलसिले में तरह-तरह की आधुनिक मशीनों को चालू करने के ख़याल का हम समर्थन नहीं करते। इन मशीनों को चालू करने का सब-से बड़ा परिणाम यह होगा कि बहुत-से आदमी बेकार हो जायँगे।

बड़ी मशीनें नहीं

जिन देशों में मजदूर कठिनता से मिलते हैं और मजदूरी ज्यादा देनी पड़ती है, वहाँ तो महनत बचाने वाली मशीन ज़रूर लाभ पहुंचा सकती है, लेकिन जिस देश में किसान साल में छः महीने बेकार रहता है या जहां बेकारी ४० फ़ीसदी तक पहुंच गई है, वहाँ महनत बचाने वाली मशीनों को जारी करना महज समय, धन और शक्ति का दुरुपयोग है।

आबपाशी और खाद की सहूलियतें पहुंचा कर हम खेती की उन्नति में सहायक हो सकते हैं। खेती की उन्नति के लिए यह सब से ज़रूरी है कि नहरों से या अन्य साधनों से सिंचाई की सहूलियतें किसान को दी जायें। नहर महकमे को यह बात दिल से निकाल देनी चाहिये कि किसान भी आमदनी का एक साधन है। नहरें किसानों के लिये हैं। सिंचाई की दर पैदा-

सिंचाई

चार की क़ीमत और ख़र्च के लिहाज़ से नियत करनी चाहिये। नहरी पानी ठीक समय पर और उचित मात्रा में मिलने की व्यवस्था होनी चाहिये। सरकार का यह पहला फ़र्ज़ है कि वह कम ख़र्च में ज्यादा-से-ज्यादा कुए बनवाये और उन से नलों के द्वारा पानी निकालने की कम ख़र्चीली योजना चालू करे। जब तक सिंचाई का ठीक इन्तज़ाम नहीं होता, तब तक खेती के औज़ारों व बीजों की उन्नति और तरह तरह की रिसर्च के लिये भारी-भारी तनख़ा वाले अफ़सर रखना बिल्कुल फ़जूल सा है। खेती के सुधार के लिये सब से पहली और ज़रूरी चीज़ पानी है और इसलिये जब कभी किसान की उन्नति का कोई कार्यक्रम बनेगा, सिंचाई की सुन्दर व्यवस्था उसका पहला अँग होगी।

कृत्रिम वैज्ञानिक खाद हिन्दुस्तान में खूब बिकने लगेंगे, यह एक ऐसा स्वप्न है जो कभी पूरा नहीं होगा। रेलवे और सरकारी

खाद

अफ़सरों के वैज्ञानिक खाद को इतना उत्तेजन देने के बाद भी किसान उसे नहीं ख़रीदता। कितने अफ़सोस की बात है कि जिस देश में हवा से नाइट्रोजन प्राप्त करने के लिए सब अनुकूल परिस्थितियाँ मौजूद हों, वहां अब तक इस की ज़रा भी कोई कोशिश नहीं की गई कि पौदों को यह ज़रूरी ख़ुराक किस तरह से प्राप्त हो। हमारे यहां शोरा और खारी काफी तादाद में प्राय सभी स्थानों पर पाये जाते हैं, लेकिन एक्साइज़ (कर-नीति) और रेलवे के कारण ये चीज़ें, जिन से इस देश की नाइट्रोजन-समस्या हल हो सकती थी, किसानों तक नहीं पहुच पातीं। यद्यपि ये भारत की ही चीज़ें हैं लेकिन, इन्हें किसान की पहुच के अन्दर ख़र्च में उसके दरवाज़े तक पहुचाने की कोई कोशिश नहीं की जाती। हड्डियां इस देश में बहुतायत से मिलती हैं, लेकिन वे भी लाखों मन की तादाद में हर साल विलायत भेज दी जाती हैं। अखिल भारतीय खेती बोर्ड की सिफ़ारिश के

बावजूद हड्डियों की निकासी नहीं रोकी गई। हैरानी तो यही है कि सभी कृषि विशेषज्ञ अफसर नकली वैज्ञानिक खादों को दृष्टि में रख कर ही अपनी सारी कोशिशें करते हैं लेकिन हिन्दुस्तान की देसी खादों की ओर कोई अँगुली तक नहीं उठाता। पाठकों को यह जानकर शायद कम आश्चर्य नहीं होगा कि वैज्ञानिक कृत्रिम खाद के मुकाबले में पिसी हुई हड्डी, शोरा और खाद पर रेल का महसूल ज्यादा लिया जाता है। हिन्दुस्तानी किसान के क्रियात्मक दृष्टिकोण से गोबर वगैरा बहुत बढ़िया खाद होती है। यह बहुत ही सादी और अपने तौर पर बिल्कुल मुकम्मिल होती है। सरकारी विशेषज्ञ भी इसे मन्जूर करते हैं, लेकिन अच्छे तरीक़े से इसे सड़ाने के लिये अब तक किसी क़िस्म की खोज करने की ज़रा भी किसी अफ़सर ने तकलीफ़ नहीं की। कृषि विभाग के अफसरों की समझ में साधारण बात नहीं आती कि किसान गोबर को अपनी मूर्खता से नहीं जलाता, प्रत्युत और कोई सस्ता ईंधन जबतक उसे नहीं मिलता, वह गोबर को ही ईंधन के लिये काम में लायगा। अत: हमारा परिश्रम सस्ता ईंधन किसान को देकर गोबर को बचाने का होना चाहिए न कि किसान को मूर्ख बता कर अपनी मूर्खता का परिचय देना।

भारतवर्ष प्राय: शाकाहारी देश है, इसलिये इसकी समस्या का हल केवल मिश्रित खेती से ही सकता है। हमारी सब कोशिशें इसीलिये होनी चाहियें कि मिश्रित खेती लाभ प्रद व्यवसाय हो जावे। इस से हमारी खाद की

दूध का व्यापार

समस्या भी खुद-ब-खुद हल हो जायेगी। दूध देने वाले जानवरों की देख भाल और दूध, दही, मक्खन का धन्धा तभी पनप सकता है जब वनस्पति या मिलावटी घी दूध पर देश भर में कठोर नियंत्रण हो। मिलावटी दूध या अशुद्ध दूध के बारे में हम पहले भी लिख चुके हैं, लेकिन जब तक पूरी ताक़त के साथ इसे हिन्दुस्तान खातम

नहीं किया जायेगा, तब तक दूध देने वाले मवेशियों के पालन और दूध, घी, मक्खन के धन्धे पर रुपया खर्च करना बिल्कुल बेकार है। सरकार को पहले मिलावट रोकनी चाहिये, फिर पशुओं की नस्ल में सुधार का प्रयत्न करना चाहिये। यदि मिश्रित खेती की योजना सफल न भी हो, तो भी स्वतन्त्र धन्धे के तौर पर दूध घी का धन्धा किसानों की आर्थिक उन्नति के लिये बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण है। विदेशों में मिलावट को रोकने के लिये कितने जोर से प्रयत्न किये गये हैं, इसका उल्लेख हम पहले [प्रकरण ३ अध्याय ६ में] कर चुके हैं।

खेती के बारे में नई-नई खोजों का सवाल भी दर असल सिंचाई और खाद की उचित व्यवस्था के बाद ही किसानों के लिये कुछ फायदेमन्द हो सकता है।

गाँव के धन्धों की उपयोगिता की हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं। इनमें सबसे मुख्य धन्धा दूध, घी, मक्खन का धन्धा है, जिसका हमने अभी जिक्र किया है। सब्जियों और फलों को सुरक्षित रखने व उन्हें टीन के डब्बों में बन्द करना भी एक बहुत लाभदायक धन्धा है। आज इस धन्धे को यहाँ बहुत आसानी से चालू किया जा सकता है। यद्यपि भारतवर्ष में हर साल ६०-७० लाख रुपये के टीनों में बन्द फल वगैरह आते हैं, फिर भी अबतक इधर कोई ध्यान नहीं दिया गया। भारतवर्ष में आम बहुतायत से पाया जाता है। अगर सरकार देश के हित को अपना हित समझती, तो जरूर वह आम की ओर बहुत ध्यान देती और दुनिया के दूसरे देशों में इसे भेजने का इन्तजाम करती, जिससे किसानों को करोड़ों रुपयों का फायदा हो सकता था। बहुत कोशिशों के बाद मार्केटिंग बोर्ड क़ायम हुआ है और इसका हम स्वागत करते हैं, लेकिन सच तो यह है कि समुद्र में एक बूँद से ज्यादा इसका कोई लाभ

गांव के धन्धे

राष्ट्र अमेरिका तक को आर्थिक संकट का मुकाबला करने के लिए स्वर्णमान छोड़ने के लिये विवश होना पड़ा। इंग्लैंड अपनी स्वर्णमान की मुद्रा-नीति पर बहुत घमण्ड करता था, लेकिन उसे भी स्टर्लिंग की क़ीमत कम करने के लिये स्वर्णमान छोड़ना पड़ा। आस्ट्रेलिया ने भी अपना विनिमय-दर कम कर दिया। जर्मनी ने यात्रियों और निर्यात आदि के लिये मार्क की क़ीमत कम कर दी है। डेनमार्क की सरकार ने भी, जिसकी आमदनी का मुख्य ज़रिया निर्यात व्यापार है, विनिमय-दर कम कर दिया है। जापान पर तो सारी दुनिया ही यह इल्ज़ाम लगाती है कि वह अपने सिक्के येन की क़ीमत बहुत गिराकर विदेशों में अपना माल बहुत सस्ते दामों में बेच रहा है। वह शायद पहला देश है, जिस ने भीषण आर्थिक संकट के समय में भी आश्चर्यकारक रीति से तमाम दुनिया में अपना व्यापार फैला लिया है, लेकिन हिन्दुस्तान में, जहां कि पहले ही रुपये की क़ीमत कृत्रिम रीति से बढ़ाने की शिकायत थी, इंग्लैंड के स्वर्णमान छोड़ने पर रुपये को फिर स्टर्लिंग से बांध दिया गया। यदि हम स्वतन्त्र होते, तो रुपया बाज़ार में अपनी क़ीमत स्वयं तलाश कर लेता। रुपये की क़ीमत बढ़ा कर उसे स्टर्लिंग के साथ बांध देने का असर किसानों पर बहुत बुरा हुआ है। हिन्दुस्तान का निर्यात व्यापार मारा जा रहा है। इस कमी को भारतवर्ष से सोना बाहर भेज कर पूरा किया जा रहा है। पिछले कुछ सालों में २॥ अरब रुपये का सोना सदा के लिये हिन्दुस्तान से विदा हो गया है। और मज़ा यह है कि स्वर्ण निर्यात को भी निर्यात के आँकड़ों में शामिल कर के भारत सरकार के अर्थ-सदस्य सदा गर्व के साथ भारतीय व्यापार की अनुकूलता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। जब कि अन्य देश सोने के निर्यात पर ज़्यादा-से ज़्यादा पाबन्दी लगा कर सोने की रक्षा करने का प्रयत्न कर रहे हैं, तब भारत सरकार अपने ऊपर

दस्ती बांधे गये विनिमय दर की रक्षा के लिये स्वर्ण प्रवाह को उत्साहित कर रही हैं। कैसी है यह विडम्बना !

किसी देश की आर्थिक उन्नति में विदेशी व्यापार बहुत अधिक सहायक होता है। निर्यात और आयात के आँकडों से ही

विदेशी व्यापार पर नियन्त्रण

हम विदेशी व्यापार के महत्त्व का अनुमान नहीं कर सकते। देश के उद्योग धन्धों पर भी इसका प्रभाव कम नहीं पड़ता, लेकिन हमारी बदकिस्मती और सरकार की उदासीनता से आज हमारे विदेशी व्यापार की हालत बहुत बुरी है। न केवल आँकड़ों की दृष्टि से, लेकिन इस दृष्टि से भी कि इससे देश के उद्योग धन्धों को सहायता नहीं मिलती। हम कच्चा माल पैदा करते हैं, लेकिन उसे उसी रूप में बाहर भेज देते हैं और विदेशी व्यवसायी उस कच्चे माल की सैकड़ो चीजें बना कर हमारे हाथ बेच देते हैं और खूब नफा कमाते हैं। भारत के विदेशी व्यापार में दूसरी बड़ी कमी यह है कि हमारा तमाम विदेशी व्यापार विदेशी जहाजी कम्पनियों और विदेशी बैंकों की मार्फत होता है। यदि भारतीय जहाजी कम्पनियाँ और संसार के तमाम बड़े-बड़े देशों में भारतीय एक्सचेंज बैंक हों, तो वे भारतीय उद्योग धन्धों को तरक्की देने के लिए बहुत सहूलियतें दे सकते हैं। सरकार हमारे रास्ते में बाधक बनी हुई है। वह कभी भारतीय जहाजी कम्पनियों व बैंकों को उत्साहित नहीं करती। आज क्या यह कम हैरानी की बात है कि कृषि प्रधान भारतवर्ष में तीन करोड़ रुपये से भी ज्यादा की भोजन-सामग्री आय ? एग्रिकलचरल डिपार्टमेंट और एग्रिकलचरल रिसर्च कौंसिल पर भारतवर्ष का लाखों रुपया व्यय होता है, लेकिन इससे हमें लाभ ही क्या, जबकि विदेशों से आने वाले आलू, सेब, प्याज, मिर्च या दूसरे फलों व सब्जियों की आमदनी लगातार बढ़ती जा रही है। इनकी आमदनी पर निय

राष्ट्र अमेरिका तक को आर्थिक सकट का मुक़ाबला करने के लिए स्वर्णमान छोड़ने के लिये विवश होना पड़ा। इग्लैंड अपनी स्वर्णमान की मुद्रा-नीति पर बहुत घमण्ड करता था, लेकिन उसे भी स्टर्लिंग की क़ीमत कम करने के लिये स्वर्णमान छोड़ना पड़ा। आस्ट्रेलिया ने भी अपना विनिमय-दर कम कर दिया। जर्मनी ने यात्रियो और निर्यात आदि के लिये मार्क की क़ीमत कम कर दी है। डैनमार्क की सरकार ने भी, जिसकी आमदनी का मुख्य जरिया निर्यात व्यापार है, विनिमय-दर कम कर दिया है। जापान पर तो सारी दुनिया ही यह इल्ज़ाम लगाती है कि वह अपने सिक्के येन की क़ीमत बहुत गिराकर विदेशों म अपना माल बहुत सस्ते दामो म बेच रहा है। यह शायद पहला देश है, जिस ने भीषण आर्थिक सकट के समय में भी आश्चर्यकारक रीति से तमाम दुनिया म अपना व्यापार फैला लिया है, लेकिन हिन्दुस्तान में, जहा कि पहले ही रुपये की क़ीमत कृत्रिम रीति से बढा न की शिकायत थी, इग्लैंड के स्वर्णमान छोड़ने पर रुपये को फिर स्टर्लिंग से बांध दिया गया। यदि हम स्वतन्त्र होते, तो रुपया बाज़ार में अपनी क़ीमत स्वय तलाश कर लेता। रुपये की क़ीमत बढ़ा कर उसे स्टर्लिंग के साथ बाँध देने का असर किसानो पर बहुत बुरा हुआ है। हिन्दुस्तान का निर्यात व्यापार मारा जा रहा है। इस कमी को भारतवर्ष से सोना बाहर भेज कर पूरा किया जारहा है। पिछले कुछ सालों में ३॥ अरब रुपये का सोना सदा के लिये हिन्दुस्तान से विदा हो गया है। और मजा यह है कि स्वर्ण निर्यात को भी निर्यात के आँकडों में शामिल कर के भारत सरकार के अर्थ-सदस्य मन गर्व के साथ भारतीय व्यापार की अनुकूलता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। जब कि अन्य देश सोने के निर्यात पर ज्यादा-से-ज्यादा पाबन्दी लगा कर सोने की रक्षा करने का प्रयत्न कर रहे हैं, तब भारत सरकार अपने जयर

न्ती वाने गये विनिमय-दर की रक्षा के लिये स्वर्ण प्रवाह को उत्साहित कर रही है। कैसी है यह विडम्बना !

किसी देश की आर्थिक उन्नति में विदेशी व्यापार बहुत अधिक सहायक होता है। निर्यात और आयात के आँकड़ों से ही हम विदेशी व्यापार के महत्त्व का अनुमान नहीं कर सकते। देश के उद्योग धन्धों पर भी इसका प्रभाव कम नहीं पड़ता, लेकिन हमारी बदकिस्मती और सरकार की उदासीनता से आज हमारे विदेशी व्यापार की हालत बहुत बुरी है। न केवल आँकडो की दृष्टि से, लेकिन इस दृष्टि से भी कि इससे देश के उद्योग धन्धो को सहायता नहीं मिलती। हम कच्चा माल पैदा करते हैं, लेकिन उसे उसी रूप में बाहर भेज देते हैं और विदेशी व्यवसायी उस कच्चे माल की सैकड़ों चीजें बना कर हमारे हाथ बेच देते हैं और खूब नफ़ा कमाते हैं। भारत के विदेशी व्यापार में दूसरी बड़ी कमी यह है कि हमारा तमाम विदेशी व्यापार विदेशी जहाजी कम्पनियों और विदेशी बैंकों की मार्फ़त होता है। यदि भारतीय जहाजी कम्पनियाँ और ससार के तमाम बड़े-बडे देशों में भारतीय एक्सचेंज बैंक हों, तो वे भारतीय उद्योग धन्धों को तरक्की देने के लिए बहुत सहूलियतें दे सकते हैं। सरकार हमारे रास्ते में बाधक बनी हुई है। वह कभी भारतीय जहाजी कम्पनियो व बैंकों को उत्साहित नहीं करती। आज क्या यह कम हैरानी की बात है कि कृषि प्रधान भारतवर्ष में तीन करोड रुपये से भी ज्यादा की भोजन-सामग्री आय ? एग्रिकलचरल डिपार्टमेंट और एग्रिकलचरल रिसर्च कौंसिल पर भारतवर्ष का लाखों रुपया व्यय होता है, लेकिन इससे हमें लाभ ही क्या, जबकि विदेशों से आने वाले आलू, मेवे, प्याज, मिर्च या दूसरे फलों व सब्जियों की आमदनी लगातार बढ़ती जा रही है। इनकी आमदनी पर निय-

विदेशी व्यापार पर नियन्त्रण

न्नरण लगाना जरूरी है। विदेशी व्यापार की उन्नति के लिए वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग करना चाहिए।

सरक्षण व तटकर—प्रत्येक देश का अपने बाजार पर पूरा अधिकार है। यदि कोई दूसरा देश अपना माल वाजवी से भी कम दामों में भेज कर उस देश क व्यापार को क्षति पहुँचाता है, तो उस देश को यह अधिकार है कि विदेशी माल पर तटकर लगा कर या उसका आना बिलकुल रोक कर अपने देश के आन्तरिक व्यापार की रक्षा करे। मुक्तद्वार के प्रधान समर्थक इग्लैंड तक को आज यही नीति अपनानी पडी है। कुछ पदार्था पर तो उसने ४० फ़ीसदी चुँगी लगाई है, लेकिन भारत में तो हालत बिलकुल उलटी है। यहाँ बहुत कम वस्तुओं पर चुँगी लगी हुई है।

नियत मात्रा—बहुत-से देश विदेशा से व्यापारिक सधि कर के यह निश्चित कर लेते हैं कि अमुक पदार्थ इस नियत मात्रा से अधिक नहीं मगावेंगे और इसके बदले में हमारा यह पदार्थ इस नियत मात्रा में अवश्य मगाना पड़ेगा। भारत ने भी ओटावा पैक्ट किया, और हाल ही में इन दिनो ब्रिटेन से एक नया समझौता किया है, लेकिन ये समझौते वस्तुत सच्चे भारतीय प्रतिनिधियों द्वारा नहीं किये गये। इसलिए ये भारत क लिए अधिक प्रतिकूल हैं। ओटावा पैक्ट ने भारत का कम अहित नहीं किया। इग्लैंड पर तो पाबन्दी बहुत कम लगी, लेकिन भारत को उससे बहुत बध जाना पडा। असेम्बली के ओटावा पैक्ट को समाप्त करने का निश्चय करने के बाद भी सरकार इसे तीन साल तक इस नाम से चलाती रही कि नया कोई समझौता नहीं हुआ। अब जो नया समझौता किया गया है, वह भी भारत के अनुकूल नहीं है। असेम्बली के इसे रद कर देने पर भी गवर्नर जनरल ने उसे अपने विशेषाधिकार से पास कर दिया है।

विदेशों का बाजार—यद्यपि हम करीब २। अरब रुपय का

माल हर साल बाहर भेजते हैं, तथापि विदेशी व्यापार को सग-ठित करने का कोई बाक़ायदा प्रयत्न नहीं किया जाता। सभी लोग मनमाने तौर पर विदेशी व्यापार कर रहे हैं। न वे इस बात की चिंता करते हैं कि माल ठीक तरह से जाता है और न माल को वे अलग अलग क़िस्मों में बाँटने की ही कोशिश करते हैं। फल यह होता है कि विदेशों में भारतीय माल बदनाम होता है। भारत सरकार का कर्तव्य है कि वह साख बिगाड़ने वाले व्यापारियों को दण्ड दे और सिर्फ़ उन्हीं को निर्यात व्यापार करने का अधिकार दे, जो ईमानदार हों और विदेशों में हिन्दुस्तान की साख बनाये रख सकें। हर एक माल को अलग अलग श्रेणियों में बाँटने की व्यवस्था भी बहुत जरूरी है, जिस से व्यापारियों को जिस श्रेणी का माल मगाना हो, वही मिल सके। ऐसा न हो कि वे बढ़िया माल चाहते हों और उन्हें घटिया माल मिल जावे। मिलावट को एक सख्त जुर्म करार देना चाहिए। इसी तरह यह भी देखने की जरूरत है कि विदेशों में किस किस माल की जरूरत है, वे घटिया माल चाहते हैं या बढ़िया, किन दिनों में उन के पास माल की ज्यादा माँग रहती है और किन दिनों मे कम, कौन से विदेशी व्यापारी भारतीय माल को तरजीह देते हैं। इन सब की बाक़ायदा जाँच होनी चाहिए। विदेशी व्यापारियों की आवश्यकता के अनुसार हमें यहाँ फलों और सब्जियों की खेती में उन्नति करनी चाहिए और विदेशों में भारतीय माल को मगाने वाले व्यापारियों का सगठन करना चाहिए। भारत का केला ससारभर में सब से अच्छा होता है, हम बढ़िया सतरे, आम, सेब और नाशपाती पैदा करते हैं, फिर भी ये फल विदेशों से यहाँ आते हैं। हमें विदेशी व्यापारकी सस्थाओं का सगठन करना चाहिए, जिससे उपर्युक्त सब बातों का ख़याल रक्खा जासके। वे भारत और विदेशी व्यापारियों में बाक़ायदा सम्बन्ध स्थापित करें, उनकी आवश्यकतायें जानकर

वैसा ही माल यहाँ पैदा करने और वहाँ भिजवाने की व्यवस्था करें, माल में खोट करने वालों को दन्ड दें। अमेरिका आदि कई देशों में ऐसी सस्थाओं से विदेशी व्यापारकी बहुत उन्नति हुई है।

हम पहले देख चुके हैं कि कृषिजन्य पदार्थों के दाम इतने कम हैं कि किसान को लाभ होने के बजाय नुक़सान हो रहा है। क़ीमतें बहुत कम हो गई हैं और किसान का खर्च बिलकुल नहीं घटा है। व्यवसायी लोग जब देखते हैं कि उनके कारखाने घाटा देरहे हैं वे कारखाने बन्द कर देते हैं। लेकिन किसान ऐसा नहीं कर सकता। यदि वह भी घाटा देखकर खेती करना बन्द करदे तो सारा देश भूखा मर जाय। वह इतने सालों से समस्त आर्थिक हानि अपने सिर पर लादकर देश का पेट पालता आया है। जब कपडे और लोहे के मिल-मालिक अपने माल का दाम बढ़ाने के लिए तटकर लगाने की माग करते हैं, सम्पूर्ण देश में स्वदेशी के नाम पर कुछ घटिया व महँगा माल भी लेने की हृदयस्पर्शी शब्दों में अपील करते है तो किसान के माल का मूल्य बढ़ाने के लिए कुछ क्यो न किया जाय? सरकार का फर्ज है कि वह ऐसी व्यवस्था करे, जिससे कृषि जन्य पदार्थों के दाम कुछ बढ़ जायें और उनका उत्पत्ति व्यय कम हो जाये। इसके लिए विदेशी कृषि-जन्य पदार्था पर तटकर लगाये जा सकते हैं और क़ानून द्वारा कृषि-जन्य पदार्थों के दाम ऊँचे किये जा सकते हैं। जबतक किसान की आमदनी उसके खर्च से ज्यादा नहीं होती, तबतक स्पष्ट ही है कि ग्रामोद्धार, खेती विभाग आदि की बड़ी बड़ी योजनाएँ किसान को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकतीं। इग्लैण्ड में क़ानून बना कर दूध, गेहूँ, चीनी आदि पदार्थों के कम-से-कम मूल्य नियत कर दिये गये हैं। ऐसे नये तरीक़े, ऐसी नयी फ़सलें किसान को बतानी चाहिए जिनसे वह दरअसल कुछ कमा सके।

कम से-कम क़ीमत

अब किसान की पैदावार का ८५ फ़ीसदी देश में ही खप

जाता है। जो थोडा-बहुत बाहर जाता भी है, वह भी देश के अन्दरूनी बाजार द्वारा। इसलिए जबतक देश के बाजार का सुधार नहीं किया जाता तबतक किसान की हालत नहीं सुधर सकती। बम्बई के फलों के बाजार की रिपोर्ट के अनुसार सिर्फ १२ फीसदी मूल्य किसान के पास जाता है और शेष ८८ फीसदी मूल्य बीच के लोग खा जाते हैं। गेहूँ की रिपोर्ट यह है कि १) रु० में से सिर्फ ॥-)॥ किसान को मिलता है। इसका अर्थ यह कि गाहक के दिये हुए रुपये का बडा भाग किसानों को मिल जाय तो उनकी हालत सुधर सकती है।

देश के आन्तरिक व्यापार का नियन्त्रण

किसान की बेबसी व जहालत, आढतियों की बेईमानी, बाजार की असुविधा तथा पैदावार में मिलावट आदि कुछ ऐसे कारण हैं, जिनसे किसान के पास पूरा रुपया नहीं पहुँच पाता। आढती माल ज्यादा तौलकर, बातों बातों में किसान को फुसला कर या जबर्दस्ती माल में कोई खराबी बताकर उसे कम दाम देते हैं। बहुत दफा वह बीसियों तकलीफें उठाकर अपना माल मण्डी में ले जाता है, वहाँ बुरी हालत देखकर, न बेचने की इच्छा होते हुए भी, उसे इसीलिए बेचना पडता है कि माल को फिर घर वापस लाने का खर्च और झंझट वह उठाना नहीं चाहता। मण्डी में उसका माल सुरक्षित रखने की कोई सहूलियत नहीं मिलती। इसी झंझट के कारण ज्यादातर किसान अपने घर पर ही सस्ते दामों में माल बेचना ज्यादा पसन्द करते हैं। जो लोग माल में मिलावट करके बेचते हैं, वे मूल्य को और भी नीचा गिरा देते हैं। बेईमानों के आजाने पर ईमानदारों को जगह छोड़नी ही पड़ती है। इसलिए यह जरूरी है कि सरकार मण्डियों का उचित संगठन करे कि जिससे मण्डियों में किसानों के माल की बिक्री में आढ़ती आदि कोई अनुचित उपाय या बेईमानी न कर सकें,

किसानों के माल आदि सुरक्षित रखने के स्टोर आदि की सहूलियतों का इन्तजाम करे, माल की परीक्षा आदि करके ऐसा इन्तजाम करें कि बेईमान लोग घटिया बढिया माल मिला कर न बेच सकें और माल का वर्गीकरण करें जिससे बेईमानी न हो सके। किसानों को तब आफ़त का सामना करना पड़ता है, जब पैदावार तो बहुत हो और माँग थोड़ी हो। तब कीमतें बहुत कम हो जाती हैं। विदेशों में ऐसे अवसरों पर निम्न उपाय बरते जाते हैं—

क—कारखाने वालों को देशी कच्चा माल ही लेने के लिए बाधित करना।

ख—गैर जरूरी पैदावार को इस क़दर घटिया कर देना कि जिससे वह मनुष्यों के लायक न रहे और पशु उसे मजे में खा सकें। इसके लिए किसानों को कुछ मुआवजा दिया जाता है।

ग—बाजार दर पर सरकार का पैदावार खरीद कर ग़रीबों को कम दाम पर बेचना।

घ—ग़रीब लोगों को कम दाम पर पैदावार खरीदने की इजाजत देना और इसके बदले में किसानों को सहायता देना।

ङ—लोगा में खपत बढ़ाने का आन्दोलन करना।

च—कृषि-जन्य पदार्थों के उपयोग के नये-नये आविष्कार करना।

इटली की सरकार ने जब देखा कि सन की बिक्री कम होती है तब उसन उसे दूसरे ऐसे धागे में बदलने का प्रयत्न किया जो रूई के धागे का मुक़ाबिला कर सके। इसके बाद उसन बाहर से रूई का मगाना बन्द कर दिया और अपने यहाँ पैदा होने वाले सनका खूब उपयोग उठाया। यह कृत्रिम धागा और रूई आज भारतवर्ष तक में आकर खपती है। भारतवर्ष में सरकार और जूट विशेषज्ञ हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे, जबकि दूसरे देशों में जूट को नकली ऊन में बदल दिया गया। भारत सरकार

और रूई-कमेटी रूई से नकली रेशम बनाने की बजाय जापान से रूई खरीदने की सन्धि ही करती रही। हम और हमारी सरकार पुरानी लकीर से एक इंच भी नहीं हटना चाहते।

छ—विदेशी पदार्थों की जगह स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग।

ज—विभिन्न वस्तुओं के नये-नये उपयोग की जाँच के लिए कमेटी नियुक्त करना, ताकि विदेशों में उनके लिए बाजार तलाश किये जा सकें।

इनमें से कई उपाय यहाँ भी सरलता से बरते जा सकते हैं।

बहुत से देशों ने माल की शुद्धता की गारन्टी के लिए सरकारी चिन्हों की पद्धति चालू की है। सरकार अलग अलग दरजे के लिए अलग अलग सरकारी चिन्ह नियत कर देती है और किसानों या व्यापारियों को ये चिन्ह उस उस दर्जे के माल के लिए देती है। कोई घटिया माल पर बढ़िया चिन्ह नहीं लगा सकता। सबसे पहले यह तरीका डैनमार्क में लागू हुआ था। इन सरकारी चिन्हों से न केवल अपने देश में, बल्कि विदेशों में माल की शुद्धता की गारन्टी हो जाती है और लोग निश्चिन्त होकर माल खरीदते हैं। इंग्लैंड ने भी यह तरीका अपना लिया है। भारत भी इसे अपना सकता है। सरकार ने कुछ कार्य आरम्भ किया है, परन्तु वह इतनी मन्दी चाल से हो रहा है कि उसका प्रभाव होने के लिए अभी वर्षों चाहिएँ। इससे पदार्थों के दाम कुछ महंगे जरूर होंगे, लेकिन सरकार मिल-मालिकों को मूल्य न बढ़ाने के लिए प्रेरित कर सकती है। बहुत दफा एक बोर्ड वस्तुओं के दाम नियत करता है। इस बोर्ड में उत्पादकों व खरीदारों दोनों के प्रतिनिधि रहते हैं। इसमें यह जरूर देखना पड़ता है कि शासक या प्रबन्ध-कर्ता स्वयं ही कोई गड़बड़ी न शुरू कर दें। भारत सरकार ने घी, चावल आदि के लिए कुछ चिन्ह नियत किये हैं, पर अभी काम

सरकारी चिन्ह

नहीं के बराबर हुआ है।

इग्लैंड तथा अन्य देशों में जुदा-जुदा माल के व्यापार को उन्नत और नियन्त्रित करने के लिए व्यापारिक योजनाएँ चालू की गई हैं। हर एक माल के उत्पादन और बाजार की स्थितियाँ भिन्न भिन्न होती हैं। इसलिए योजनाएँ भी अलग अलग बननी चाहिए। इन योजनाओं में सभी पार्टियों का प्रतिनिधित्व रहना चाहिए।

व्यापारिक योजना

इस सम्बन्ध में हम पहले भी लिख चुके हैं। ऋण निवारण करते हुए हमें दो-तीन बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। पहली तो यह कि जहाँ हम उसे अत्याचारी महाजनों से बचावें, वहाँ उसकी साख का—उसे कर्ज मिलने की सहूलियत का भी प्रबन्ध कर दें। एक तरफ़ उसका पिछला भार हटावें और दूसरी ओर उसकी साख भी बढावें। मियाद देते समय उसे स्पष्ट कर देना चाहिए कि उसका कर्ज माफ नहीं हो रहा है, सिर्फ आर्थिक सकट देखकर एक साल के लिए लेना मुल्तवी कर रहे हैं। किसान जितना दे सके, उससे ज्यादा का भार उस पर न डाला जाय, लेकिन कम भी न डाला जाय। सरकारी सहायता भी उन्हीं लोगों को मिलनी चाहिए जो उसके सच्चे पात्र हों। जहाँ लेनदार को ऋण निवारण के सिलसिले में कुछ नुकसान उठाना पड़ेगा, वहाँ तक़ावी बाँटनेवाली सरकार को भी इस सिलसिले में नुक्सान उठाने को तैयार रहना चाहिए। अनेक प्रान्तीय सरकारें कर्जा-समझौता बोर्ड बना रही हैं। साहूकारा पर नियन्त्रण के क़ानून भी बन रहे हैं। इनसे किसानों का भार कम होगा।

ऋण निवारण

सस्ता साहित्य मण्डल • सर्वोदय साहित्य माला

के प्रकाशन

[नोट— * चिन्हित पुस्तकें अप्राप्य हैं]

१ दिव्य-जीवन ।≈)
२ जीवन साहित्य १।)
३ तामिल वेद ।।।)
४ भारत में व्यसन और व्यभिचार ।।।≈)
५ सामाजिक कुरीतियाँ* ।।।)
६ भारत के स्त्री रत्न ३)
७ अनोखा* १।≈)
८ ब्रह्मचर्य विज्ञान ।।।≈)
९ यूरोप का इतिहास २)
१० समाज विज्ञान ।।)
११ खद्दर का संपत्ति शास्त्र* ।।।≤)
१२ गोरों का प्रभुत्व* ।।।≈)
१३ चीन की आवाज* ।–)
१४ द. अ. का सत्याग्रह १।)
१५ विजयी बारडोली* २)
१६ अनीति की राह पर ।।≈)
१७ सीता की अग्निपरीक्षा ।–)
१८ कन्या शिक्षा ।)
१९ कर्मयोग ।≈)
२० कलवार की करतूत ≈)
२१ व्यावहारिक सभ्यता ।।)
२२ अँधेरे में उजाला ।।)
२३ स्वामीजी का बलिदान* ।–)
२४ हमारे जमानेकी गुलामी* ।)
२५ स्त्री और पुरुष ।।)
२६ सफ़ाई ।≈)
२७ क्या करें ? १)
२८ हाथकी कताई बुनाई* ।।–)
२९ आत्मोपदेश* ।)
३० यथार्थ आदर्श जीवन* ।।।–)
३१ जब अंग्रेज नहीं आये थे* ।)
३२ गंगा गोविंदसिंह* ।।≈)
३३ श्री रामचरित्र १।)
३४ आश्रम हरिणी ।)
३५ हिंदी मराठी कोष* २)
३६ स्वाधीनता के सिद्धान्त* ।।)
३७ महान् मातृत्व की ओर ।।।≈)
३८ शिवाजी की योग्यता ।≈)
३९ तरंगित हृदय ।।)
४० हालैण्ड की राज्यक्रांति १।।)
४१ दुखी दुनिया ।≈)
४२ जिन्दा लाश* ।।)
४३ आत्मकथा [नवीन सस्ता संस्करण] १), १।।)
" [संक्षिप्त संस्करण ।।)
४४ जब अंग्रेज आये* १।≈)
४५ जीवन विकास १।)
४६ किसानों का बिगुल* ≈)
४७ फांसी ।≈)

४८ [देखो नवजीवन माला]
४९. स्वर्ण विहान* ।=)
५० मराठों का उत्थान और पतन २।)
५१ भाई के पत्र १)
५२ स्वगत* ।=)
५३ युगधर्म* १=)
५४ स्त्री-समस्या १।।।)
५५ विदेशी कपडे का मुकाबिला* ।।=)
५६ चित्रपट ।=)
५७ राष्ट्रवाणी* ।।=)
५८ इंग्लैण्ड में महात्माजी ।।।)
५९ रोटी का सवाल १)
६० दैवी सपद् ।=)
६१ जीवन-सूत्र ।।।)
६२ हमारा कलक ।।=)
६३ बुद्बुद् ।।)
६४ सघर्ष या सहयोग ? १।।)
६५ गांधी विचार दोहन ।।।)
६६ एशिया की क्रांति* १।।।)
६७ हमारे राष्ट्र निर्माता १।।)
६८ स्वतन्त्रता की ओर १।।)
६९. आगे बढो ।।)
७० बुद्धवाणी ।।=)
७१ कांग्रेस का इतिहास २।।)
७२ हमारे राष्ट्रपति १)
७३ मेरी कहानी २।।) ।)
७४ विश्व इतिहास की झलक ८) =)
७५ हमारी पुत्रियाँ कैसी हों? ।।)
७६ नया शासन विधान ।।।)
७७ [१] हमारे गाँवों की कहानी ।।)
७८ [२] महाभारत के पात्र १।।)
७९ गाँवों का सुधार और सगठन १)
८० [३] सतवाणी ।।)
८१ विनाश या इलाज ? ।।।)
८२ [४] अंग्रेजी राज्य में हमारी दशा ।।)
८३ [५] लोक जीवन ।।)
८४ गीता-मथन १।।)
८५ [६] राजनीति प्रवेशिका ।।)
८६ [७] हमारे अधिकार और कर्तव्य ।।)
८७ गाधीवाद समाजवाद ।।।)
८८ स्वदेशी ग्रामोद्योग ।।)
८९. [८] सुगम चिकित्सा ।।)
९० [९] पिता के पत्र पुत्री के नाम ।।)
९१ महात्मा गांधी ।=)
९२ [१०] हमारे गांव और किसान ।।)
९३ ब्रह्मचर्य ।।)
९४ गाधी अभिनन्दन ग्रंथ २)
९५ हिन्दुस्तान की समस्यायें १)

[ऊपर लगी दस पुस्तकें 'लोक साहित्य माला' की हैं।]

सचित्र

❀ माउंट आबू ❀

मनोरंजक आबू-प्रदर्शक

(सुन्दर व्याख्यायुक्त)

लेखक—

ओम् प्रकाश गुप्ता

मुद्रक—वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

प्रथमवार
सन् १९४१ ई०

मूल्य ६ आना

विषय-सूची

चित्र-सूची

ऑनरेबिल मि ए सी लोथियन, सी एस आइ,
सी आई ई, आइ सी एस

ऑनरेबिल मिस्टर ए० सी० लोथियन

सी० एस० आई०, सी० आई० ई०, आई० सी० एम०

रेजिडेण्ट फॉर राजपूताना,

और

चीफ कमिश्नर अजमेर-मेरवाड़ा

का

संदेश

"मिस्टर ओम् प्रकाश गुप्ता ने संसार को आबू की सुन्दरताओं और मनोरञ्जकताओं से परिचित करने की चेष्टा की है। मैं हृदय से चाहता हूं कि उन्हें अपने प्रशंसनीय उद्देश्य में सर्व प्रकार से सफलता प्राप्त हो"।

कि हिन्दी-भापा के विद्वान इस पुस्तक की लखन-शैली तथा भापा पर विशेप ध्यान न देकर केवल उद्देश्य पूर्ति (पुस्तक-विपय) का ही प्रयोजन रक्खेंगे।

यद्यपि यह पुस्तक मेरी उपरोक्त अंग्रेजी पुस्तक 'आबू गाइड' का ही हिन्दी अनुवाद है, किन्तु फिर भी इसे पाठकों के अनुकूल बनाने के हेतु मुझे इसमें स्थान ? पर आवश्यकतानुसार भाषा तथा विपय को न्यूनाधिक करना पड़ा है। इस पुस्तक के निर्माण में कई अन्य अंग्रेजी भापा की पुस्तकों से भी सहायता ली गई है, जिसके लिये मैं उनके लेखकों का अत्यन्त आभारी हूँ।

ऑनरेबिल मिस्टर ए० सी० लोथियन, सी० एस० आई०, सी० आई० ई०, रजीडेन्ट साहब बहादुर राजपूताना तथा चीफ-कमिश्नर, अजमेर मरवाड़ा ने भी पूर्ण कृपा कर एक प्रशंसा-पत्र तथा स्वचित्र प्रदान किया है, इसके लिये मैं उनका विशेप कृतज्ञ हूँ। आबू के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहब कप्तान जे० आर० फोटन ने भी मेरे इस कार्य के प्रति पर्य्याप्त सहानुभूति दर्शाई है तथा आवश्यक सहायता भी प्रदान की है। मैं उनका भी अत्यन्त आभारी हूँ।

साथ ही इस कार्य में योग देने वाले मित्रों—खास कर मास्टर लालसिंहजी—का भी मैं कृतज्ञ हू।

ओम् प्रकाश गुप्ता

❋ आबू मनोरंजन ❋

सामान्य वर्णन और जल-वायु

आबू पहाड राजपूताने में सिरोही राज्य की दक्षिण पूर्व दिशा में स्थित है। यह अरावली श्रेणी का ही भाग कहा जाता है, किन्तु यह उसमे बिल्कुल अलग स्थित है और पहाड़ी द्वीप (Island) जैसा दिखाई पड़ता है। इसकी ऊचाई समुद्र की सतह से ४००० फीट और कहीं कहीं इससे भी अधिक है। इस पहाड़ की सबसे ऊची चोटी गुरु-शिखर समुद्र के धरातल से ५६५० फीट ऊची है। हिमालय और नीलगिरी पर्वतों के बीच में इतनी ऊची चोटी और कोई नहीं है। आबू का ऊपर का विस्तार लम्बाई में १२ मील और चौडाई में २ से ३ मील तक है।

इस पर्वत के ढलाव तरह-तरह के वृक्षों और पौदों से लदे हुए हैं। आबू पर चढ़ने वाले यात्री प्राकृतिक-सौन्दर्य के विचित्र दृश्यों की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। विशाल चट्टानें, जङ्गली पुष्पों का मनोहर दृश्य, पहाड़ के बाद घाटी और घाटी के बाद पहाड़, जिनसे कहीं-कहीं हजारों फीट नीचे मैदान नजर आते हैं। झरनों का बहाव इन सब दृश्यों को अधिक सुन्दर बना देता है। पर्वत की वास्तविक शोभा का वर्णन करना कठिन है। भारतवर्ष में शिमला के मुकाबिले राजपूताने का यही मुख्य स्थान है।

जलवायु यहां का आरोग्यवर्द्धक है। यह पहाड़ बारह मास रहने के योग्य है, क्योंकि सर्दियों और गर्मियों में न अधिक सर्दी पड़ती है न अधिक गर्मी। अधिक से अधिक गर्मी में भी यहां का ताप-क्रम ८५ डिग्री के ऊपर नहीं जाता है। वर्षा का मौसम आधे जून से
तक रहता है। चारों ओर बादलों के
कोहरा छा जाने से यह
घरों में बादल घुस आ
बड़ा अन्तर हो जाता
पहाड़ की शोभा इन
स्थान पर पहाड़ों के

की कल कल ध्वनि, पहाड की चोटी पर बैठे हुए बादल और हरे-भरे वृक्ष बहुत शोभा देते हैं।

वर्षा की औसत साल भर में लगभग ५० इंच है। वर्षा ऋतु खतम हो जाने के पश्चात् और जाड़े के शुरू होने के पूर्व यहा का मौसम अच्छा रहता है। जाड़ों में कभी-कभी महावट बडे जोर की हो जाती है जिससे सर्दी विशेष सताने लगती है।

यहा साल में दो बार सीजन होता है। पहला सीजन मार्च के अन्त या अप्रेल से लेकर १५ जुलाई तक रहता है और दूसरा शुरू अक्टूबर से आखिर नवम्बर तक; इसको छोटा सीजन कहते हैं। इन दिनों यहा का जलवायु वास्तव में आरोग्य-दायक हो जाता है। पहाड़ों की ठंढी २ हवा असाध्य रोगों को भी मिटा देती है। आबू पर आने वाले यात्री इन्हीं दिनों में यहां विशेष रहते हैं। राजपूताना और गुजरात तथा अहमदाबाद के मनुष्य यहा बहुतायत से आते है, लेकिन बम्बई वाले भी इस स्थान से खूब परिचित हैं। राजा-महाराजाओं और नवाबों का ग्रीष्म-ऋतु में यह स्थान केन्द्र बन जाता है, और पर्वत पर की छोटी-सी बस्ती एक नगर का रूप धारण कर लेती है।

राजपूताने के रेजिडेण्ट साहब बहादुर का यह मुख्य निवास-स्थान (Headquarters) और सरकारी फौजों का

स्वास्थ्य दायक स्थान (Sanitarium) है। यहा पहले पहल अंग्रेजी सिपाही सन् १८४५ ई० में भेजे गये थे। और सिरोही के महाराव साहब शिवसिंहजी से कुछ जमीन लेकर यहा सेनीटेरियम बनाया गया था। सिरोही के महाराव साहब ने सरकार अंग्रेजी को जमीन देते समय कुछ शर्तें की थीं। जिनमें मुख्य ये थीं कि आबू पर गो वध न किया जाय और गाय का माँस नहीं लाया जावे।

सन् १६१७ ई० में महाराव साहब सिरोही ने आबू ब्रिटिश सरकार को हमेशा के लिये ठेके पर दे दिया था। तभी से यह ब्रिटिश सरकार की पूर्ण आधीनता में है। दीवानी फौजदारी आदि संगीन मामलों के अतिरिक्त सारा प्रबन्ध एक म्युनिसिपल कमेटी के हाथ में है, जो आबू की वास्तविकता को कायम रखने, सफाई, शिक्षा तथा स्वास्थ्य का प्रबन्ध करती है। जिससे यहा के निवासियों और आने वाले यात्रियों को अच्छा आराम मिलता है। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहब आबू इस कमेटी के चेयरमैन और सेक्रेट्री हैं। आबू में सरकारी दफ्तर बहुतसे हैं। आबू के बाबू और गिरनार के साधू भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं।

आबू पहाड़ की ऐतिहासिक प्रसिद्धि बहुत प्राचीन है। हम यह भी स्पष्ट नहीं कह सकते कि सबसे प्रथम इस दुर्गम स्थान का पता किसने लगाया? इसकी उत्पत्ति के विषय

में ऐसी लोकोक्ति है कि बहुत दिन हुए यहा एक चौरस मैदान था। और यहा देवी देवता रहा करते थे। एक जगह एक बड़ा गड्ढ़ा भी था। वशिष्ठ नामक मुनि यहा तपस्या किया करते थे। एक दिन उनकी गाय इस गड्ढे में गिर गई। ऋषि को इस घटना से बहुत संताप हुआ और वे सरस्वती नदी के पास सहायता लेने के लिये गए। उसकी सहायता से उक्त गड्ढा देखते-देखते पानी से भर गया और मुनि की गाय तैर कर बाहर निकल आई। इस प्रकार इस गड्ढे में कई चौपायों और मनुष्यों के गिर जाने का बहुत भय रहता था। इस भय को मिटाने के लिये देवर्षि वशिष्ठ ने हिमालय पर्वत से प्रार्थना की। ऋषि की आज्ञानुसार हिमालय ने अपने छोटे पुत्र नदिवर्द्धन को इस कार्य्य के लिये भेजा। नदिवर्द्धन लगड़ा था, अतएव वह एक अर्बुद नामक सर्प द्वारा इस स्थान पर आया और सर्प-सहित उक्त गड्ढे में उतरा, जिससे गड्ढे की पूर्ति हो गई और यह पर्वत उस सर्प के नाम से 'अर्बुदाचल' कहलाया, 'आबू' इसी शब्द का अपभ्रंश है। इस प्रकार की और भी दन्त-कथायें हैं, जिनका उल्लेख विस्तारभय से हम यहा पर नहीं कर सकते।

प्राचीन काल से यह स्थान ऋषियों की तपो भूमि होने के कारण अतिपवित्र माना जाता है। पुराणों में भी अर्बुद-

गिरि का उल्लेख आया है। तपस्वी लोग एक युग अथवा बारह वर्ष इस पर्वत पर तप करके अपनी तपस्या को सफल मानते हैं। चारों धाम की यात्रा करने वाले यात्री आबू पर्वत पर आये बिना नहीं रहते। इसका माहात्म्य भी माना गया है। जैन लोग भी इस स्थान को पूज्य दृष्टि से देखते हैं, और प्रति वर्ष सहस्रों यात्री प्रसिद्ध दिलवाड़ा और अचलगढ के मन्दिरों की पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्तियों के दर्शनार्थ आते हैं। भारतवर्ष से ही नहीं, वरन् यूरोप अमेरिका और दुनिया के अन्य देशों से भारत भ्रमण के लिये आने वाले मुसाफिर यहां आते हैं और अपने मुल्कों में वापिस जाकर दिलवाडे के मन्दिरों के शिल्प की वास्तविक प्रशंसा करते हैं। इससे यह पर्वत सारे संसार में प्रसिद्ध है, और भारत का तो इसको शृंगार और गौरव कहना चाहिये। प्रसिद्ध लेखक कर्नल टॉड आबू आने वाले पहिले यूरोपियन माने जाते हैं। उन्होंने अपने राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहास में इसकी बहुत प्रशंसा की है। उनके अलावा अनेक यूरोपियन विद्वान् लेखकों ने भी इस पर्वत के बारे में अनेक ग्रन्थों में लेख लिखे हैं।

बी० बी० एण्ड सी० आई० रेल्वे के आबू रोड स्टेशन से एक पक्की और पुख्ता सड़क ठेट पहाड़ के ऊपर तक बनी हुई है, इसकी लम्बाई १७½ मील है।

यह सड़क सर्पाकार बनती आई है। यहां आने वाले यात्रियों की सुविधा के लिये गवर्नमेन्ट की तरफ से 'गणेश चौथ लिमिटेड आबू व आबूरोड' को ठेका दिया गया है जो बड़े सुख के साथ यात्रियों को लारियों व मोटर कारों द्वारा पहाड़ पर पहुचा देते हैं। लारिया दिन में दो बार नियत समय पर छूटती हैं, इस सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी के लिये इस पुस्तक के अन्त में दिये हुये परिशिष्ट को देखिये।

गुरुश्री विजयशान्ति सूरीश्वरजी एनीमल्स हॉस्पिटल

पशुओं के हॉस्पिटल (चिकित्सालय) की आबू में परम आवश्यकता थी। हिज होलीनेस योगीराज गुरु श्री विजयशान्ति सूरीश्वरजी—जो इस पर्वत मे अत्यन्त ही स्नेह रखते हैं—ने अपने अनुयायियों और प्रेमियों को इस विषय में आवश्यक उपदेश देकर और उनसे उचित सहायता प्राप्त करके यहा पशु चिकित्सालय बनवा ही दिया। अब यहा पर प्रति वर्ष सहस्रों असहाय पशुओं का कष्ट निवारण किया जाता है। इसके सहायकों में से दो भद्र पुरुषों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, प्रथम तो ऑनरेबिल सर जी० डी० ओगलवी K C I L, C S I राजपूताना के भूतपूर्व एजेंट टू दी गवर्नर जेनरल—जिन्होंने गवर्नमेंट ऑफ इन्डिया को लिख कर इस अस्पताल के निर्माण के लिये जितनी भूमि की आवश्यकता थी, मुफ्त दिलवाई। द्वितीय लिम्बडी के स्वर्गीय ठाकुर साहब श्री सर दौलतसिंहजी, जिन्होंने सबसे अधिक आर्थिक सहायता करके इस शुभ कार्य की समाप्ति के हेतु भरसक सहायता दी। यह दोनों भद्रपुरुष हिज होलीनेस गुरुदेव के बड़े प्रेमी और भक्त थे।

हिज़ होलीनेस जगत्गुरु आचार्य समर्थ
योगिराज भट्टारक पुरन्दर
श्री विजयशान्तिसूरीश्वरजी (शान्तिविजयजी) महाराज

यह हॉस्पिटल आबू कार्टरोड पर पहले मील के चिह्न के निकट ही बना हुआ है। इस में पशुओं के इलाज के लिये हर प्रकार का प्रबन्ध है। कुत्तों, घोड़ों, गायों और दूसरे पशुओं के लिये अलग अलग स्थान बने हुये हैं। निर्धनों के पशुओं का इलाज मुफ्त किया जाता है। एक अंग्रेज महिला मिसेज रिवर्स राईट—इस हॉस्पिटल की ऑनरेरी सेक्रेटरी और खजानची हैं, और वे ही इस की सब देख रेख स्वय करती हैं। यह हॉस्पिटल सन् १९३३ ई० में बनवाया गया था।

हिज होलीनेस योगीराज गुरुदेव श्री विजयशान्ति सूरीश्वरजी महाराज सब जनता से प्रेम रखते हैं, और मनुष्य-मात्र से प्रेम (Universal Love) उनका सिद्धान्त होने के कारण प्रतिवर्ष हर जाति और धर्म के हजारों यात्री केवल हिज होलीनेस के दर्शनार्थ यहा आते हैं, और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। हिज होलीनेस शान्तिप्रिय व्यक्ति हैं। आबू, दिलवाडा और अचलगढ़ में गुरुदेव के आश्रम बने हुये हैं। गुरुदेव का शान्ति-आश्रम आबू कार्टरोड पर है, जिसका वर्णन हम आगे चल कर करेंगे।

++卐++ ++卐++ ++卐++

मुख्य २ दर्शनीय स्थान

यहा पर इतने प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान हैं कि यदि प्रत्येक का ब्यौरेवार वर्णन किया जाय तो एक बडा ग्रन्थ बन जाय। इस स्थानाभाव के कारण यहा मुख्य २ स्थानों का ही वर्णन करेंगे—

नक्की ताल

यह सुन्दर ताल तीन ओर से ऊचे और हरे २ पेड़ों से आच्छादित पहाड़ों से घिरा हुआ है। चौथी ओर एक बन्ध बाध कर पानी रोक दिया गया है। इस ताल की गहराई का ठीक अनुमान नहीं है, और इसके निर्माण का भी ठीक पता नहीं है। जनश्रुति है कि इस ताल को देवताओं ने अपने नखों से खोदकर बनाया था, और इसी कारण इसका नाम नखी (नक्की) ताल पडा। हिन्दू लोग इसको पवित्र मानते हैं, और इसमें नहाने का माहात्म्य समझते हैं। इस ताल के किनार पर कई घाट भी बने हुये हैं। स्त्रियों के लिये अलग घाट हैं। इस ताल के चारों ओर सड़क बनी हुई है।

नक्की ताल

नक्की के चारों ओर पहाड़ के ढलान पर कई गुफाएं हैं, जिनमें गर्मियों के दिनों में साधू महात्मा लोग विश्राम करते हैं। गुफाओं में चम्पा-गुफा (इस गुफा के पास चम्पा का पेड़ होने के कारण यह चम्पा-गुफा कहलाती है), हाथी-गुफा और राम झरोखा प्रसिद्ध हैं। ठीक किनारे से लगा हुआ हनुमानजी का मन्दिर भी दर्शनीय है।

टोड रॉक व नन रॉक

नक्की ताल के दक्षिण में पहाड़ की टेकरी पर एक चट्टान है, जिसकी शक्ल मेंढक की तरह है, इसे "टोड रॉक" कहते हैं। नक्की से इस का दृश्य भला मालूम पड़ता है। दूसरी दर्शनीय चट्टान जो "नन रॉक" कहलाती है, राजपूताना क्लब के टेनिस कोर्ट के ठीक सिरे पर है। इस की शक्ल घूँघटदार स्त्री जैसी दिखाई पड़ती है।

रघुनाथजी का मन्दिर

लीज़्ड एरिया में बहुतसे छोटे-छोटे मन्दिर हैं, जिन में रघुनाथजी का मन्दिर सब से प्रसिद्ध है। यह मन्दिर ऊँचे २ पहाड़ों के बीच में 'रामकुण्ड' से नीचे की तरफ नक्की के किनारे पर स्थित है। इसके सामने ही

जनाने और मरदाने घाट पक्के और पुख्ता बने हुये हैं। घाट के निकट ही एक प्राचीन शिव-मन्दिर भी है। रघुनाथजी के इस मन्दिर में मुख्य मूर्ति रघुनाथजी की है। यह मूर्ति बहुत पुरानी मालूम पड़ती है, और कहते हैं कि चौदहवीं सदी में हिन्दू-धर्म के उद्धारक श्री रामानन्दजी ने इस मूर्ति की स्थापना की थी। श्री रामोपासकों का यह मुख्य और पवित्र स्थान है। हाल ही में इस मन्दिर के कर्मचारियों ने इसके चौक में भारी लागत लगाकर एक सगमरमर का शिखर बंध मन्दिर बनवाया है, यह मन्दिर तो पूरा हो गया परन्तु मूर्ति की स्थापना इस में अभी तक नहीं की गई है।

रामकुंड

रघुनाथजी के मन्दिर के ऊपर और जयपुर-कोठी के निकट एक गुफा में पानी भरा हुआ है, जिसे 'रामकुण्ड' कहते हैं। पहिले इस कुण्ड में बारहों मास पानी भरा रहा करता था, परन्तु आज कल गर्मी के दिनों में यह कुण्ड सूख भी जाता है। पहिले यहां केवल साधुओं की कुटियाँ ही थीं, किन्तु अब पक्के और पुख्ता मकान बन गये हैं, जिन में यात्री लोग आराम से ठहर सकते हैं। यहां पर श्री रामचन्द्रजी का मन्दिर भी है और एक महन्त भी

रहता है। पहाड़ों के बीच में एकान्त स्थान होने के कारण ईश्वर-भजन के लिये यह अच्छा स्थान है।

अनादरा पॉइंट

यह स्थान नक्की तालाब से आगे पश्चिम दिशा को है। पॉइंट तक पक्की सड़क बनी हुई है। यहा अनादरा गाव से एक पगडंडी आती है जो राजपूताना मालवा रेलवे के निकलने के पूर्व आबू पर आने का रास्ता थी, इसीलिये इस पॉइंट को 'आबू-गेट' अथवा 'अनादरा-गेट' कहते हैं। यहा से ३००० फीट नीचे के मैदान और मीलों तक जङ्गल दिखाई देते हैं। पास ही गणेशजी का प्राचीन और दर्शनीय मन्दिर है, जहा गणेश-चतुर्थी को मेला लगता है।

गणेशजी के मन्दिर से कुछ दूर ऊपर जाकर एक और पॉइंट आता है, जिस को 'क्रेग पॉइंट' कहते है। यहा पर एक गुफा भी बनी हुई है, जो 'गुरु गुफा' के नाम से प्रसिद्ध है। लिम्बडी कोठी से एक पगडंडी इस पॉइंट को होती हुई अनादरा पॉइंट के निकट उतरती है। यह सैर करने के लिये एक सुन्दर मार्ग (पगडंडी) है और इससे जगलों और नीचे के मैदानों तथा नदी-नालों के दृश्य बहुत सुहावने प्रतीत होते हैं।

सनसेट पॉइंट

विश्राम-भवन के बराबर की ओर जाने वाली पक्की सड़क इस स्थान पर पहुचा देती है। सूर्य के अस्त होते समय सूर्य की गति विधि और डूबता हुआ सूर्य इस स्थान से बहुत सुहावना मालूम पड़ता है। कैमरे से भी इस दृश्य का फोटू लेना कठिन है। सायकाल को प्रति दिन यहा पर भीड लगी रहती है। आराम से बैठने के लिये यहा पर सीमेन्ट और पत्थर की चौकिया बनी हुई हैं। इस स्थान से भी कई हजार फीट नीचे के खुले मैदान और दूर २ के जङ्गलो का दृश्य अत्यन्त मनोहर मालूम होता है।

यहा से एक पगडडी नीचे के भयावह जगल में उतरती है, जो दो मील पार कर के 'देव आँगन' में लेजाती है। सुना है कि कुछ ही वर्ष हुये इस स्थान मे प्रात' और सायकाल को अनेक मन्दिरों की घटिया और शख के शब्द सुने जाते थे। यहा पर खडित दशा में कई एक मन्दिर हैं, जहां सहस्रों देवी देवताओं की मूर्त्तिया हैं। भगवान् शकर की श्यम्बक नाम की एक त्रिमुखी विशाल मूर्त्ति अब भी इसी स्थान पर रक्खी है। इस प्रकार की मूर्त्ति को देखकर उसकी सुन्दरता पर मन लुभा कर मुग्ध हो जाता है।

पालनपुर पॉइंट

सिरोही-कोठी से पहाड की ओर जाने वाली सड़क से यह स्थान लगभग दो मील रहता है । यदि आकाश स्वच्छ हो तो पालनपुर का शहर यहा से बिना दूरबीन की सहायता के देख सकते हैं । यहां जाने के लिये राहनुमा जरूर साथ लेना चाहिये ।

बेलिज वॉक

सैर करने के लिये यह विचित्र पगडंडी नक्की के निकट से शुरू होकर ऊचे पहाडों और घने वृक्षों तथा जङ्गलों में होती हुई सनसेट-पॉइंट की सड़क पर आ मिलती है । रास्ता बहुत तंग, ढलाऊ और ऊबड-खाबड होने के कारण सावधानी से चलना चाहिये ।

अर्बुदा देवी

बस्ती से उत्तर दिशा में एक ऊचे पहाड की चोटी पर 'अर्बुदा देवी' का एक प्राचीन और प्रसिद्ध मन्दिर है । अर्बुदा देवी (दुर्गा) का निज मन्दिर एक विशाल चट्टान के तले है, जिस का प्रवेश-द्वार इतना तंग है कि बैठ कर भीतर जाना पड़ता है । देवी की सुन्दर प्रतिमा देखने

योग्य है। मन्दिर का भीतरी भाग बहुत ठढा, विशेष स्वच्छ और शान्ति दायक स्थान है। नीचे से मन्दिर तक पहुचने के लिये लगभग ४०० सीढ़िया पार करनी पडती हैं। मन्दिर से आबू की वस्ती बडी सुहावनी दिखाई देती है। यह स्थान अति प्राचीन माना जाता है। यहा पर ठहरने के लिये एक मकान और एक छोटी सी गुफा भी बनी हुई है। यहा साल में दो मेले, चैत्र सुदी १५ और आश्विन सुदी १५ को लगते हैं।

इस पहाड़ की तलेटी में पहिली सीढ़ी के निकट ही 'दूध बावडी' नामक एक स्थान है। ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन काल में यह बावडी ऋषि-मुनियों के लिये दूध से भरी रहती थी। बावड़ी का पानी अब भी हल्के सफेद रग का है। पास ही साधू-सन्तों के ठहरने के लिये कोठरिया बनी हुई हैं।

गोमुख (वशिष्ठ-आश्रम)

आबू कार्ट रोड पर पहिले मील के चिह्न से एक पग डडी इस स्थान को जाती है। कुछ दूर चल कर हनुमानजी का मन्दिर आता है, जहा हनुमानजी की १० फीट ऊची और विशाल प्रतिमा है, पास ही एक बावड़ी है। इस के

आगे कुछ दूर चढ़ाई पार कर के सीढ़िया आती हैं, जो लगभग ७०० की सख्या में हैं। ये सीढ़िया बहुत दिनों से बेमरम्मत पड़ी हुई है, जिस के कारण बूढे तथा निर्बल मनुष्यों का वहा आना जाना कठिन है। सीढियॉ खतम होते ही पहिले-पाहिल एक कुड आता है, जिस में सगमरमर के बने हुए 'गौ मुख' में से अविरल जल की धारा निकलती है। गर्मियों में इसका प्रवाह कुछ हल्का पड जाता है। कुछ नीचे की ओर उतरने पर 'वशिष्ठ-आश्रम' आ जाता है, जहॉ गुरु वशिष्ठ और उनके शिष्य दशरथ नन्दन राम और लक्ष्मण की दिव्य मूर्तिया हैं। यहा इनके अतिरिक्त एक मूर्ति वशिष्ठजी की धर्मपत्नी अरुन्धती की, और दूसरी नन्दनी की है, जिसका वर्णन हम पहिले ग्रन्थ के प्रारम्भ में कर चुके हैं। मुख्य मन्दिर के बाहर भी कुछ देव-देवियों की मूर्तियां रक्खी हुई हैं, जिनमें वराह अवतार, सूर्य, विष्णु, लक्ष्मी आदि की मूर्तिया भी हैं।

आश्रम में चम्पा व कटहल इत्यादि वृक्षों की सघन छाया है, और कुण्ड के पास केतकी के वृक्ष भी हैं। स्थान बहुत रमणीक है। प्रति-वर्ष आषाढी पूनम (गुरुपूर्णिमा) को यहा मेला लगता है। भोजन बनाने और रात्रि में निवास करने वालों के लिये भी अच्छे मकान बने हुए हैं। साधू-सन्यासी और निर्धनों को भोजन भी दिया जाता है।

आश्रम के निकट ही सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध 'अग्नि कुण्ड' है, जिसमें से अग्नि कुल राजपूतों की उत्पत्ति बताई जाती है। ऐसी लोकोक्ति है कि जब परशुरामजी ने सब क्षत्रियों को मार डाला तो सब लोगों को अपने रक्षकों के बिना जीना दूभर हो गया। तब तत्कालीन आबू के धर्मात्माओं ने इस प्रसिद्ध पहाड़ पर सब देवताओं को इकट्ठा किया, और इस 'अग्निकुण्ड' में एक बड़ा भारी यज्ञ करके राजपूतों के चार वंश उत्पन्न किये। इन्द्र ने परमार, विष्णु ने चौहान, ब्रह्मा ने सोलंकी और शिव ने पडिहार। इस स्थान की प्रसिद्धि के कारण सिरोही दरबार अब तक बड़ी सावधानी से इसकी देख-रेख करते हैं।

गौतम-आश्रम

'गौ मुख' से कुछ दूर नीचे घने जङ्गलों से घिरा हुआ 'गौतम आश्रम' है। यहां महर्षि गौतम, उनकी धर्मपत्नी श्री अहिल्या और विष्णु आदि की मूर्तियां हैं। रास्ता बहुत विकट होने के कारण यहां पर बहुत कम यात्री जाते हैं।

नीलकंठ महादेव

आबूरोड से ठेट दिलवाड़ा जाने वाली पिलग्रिम्स-रोड पर 'नीलकण्ठ' महादेव का मन्दिर है। कई वर्षों से यह

नया महादेवजी का मन्दिर (नीलकठ)

कु० बहादुरसिंह की छतरी
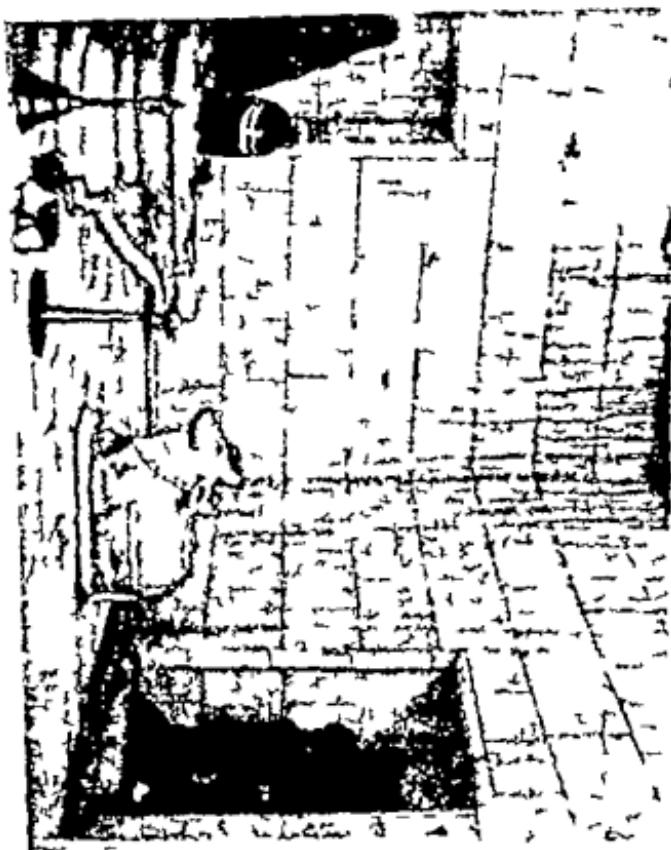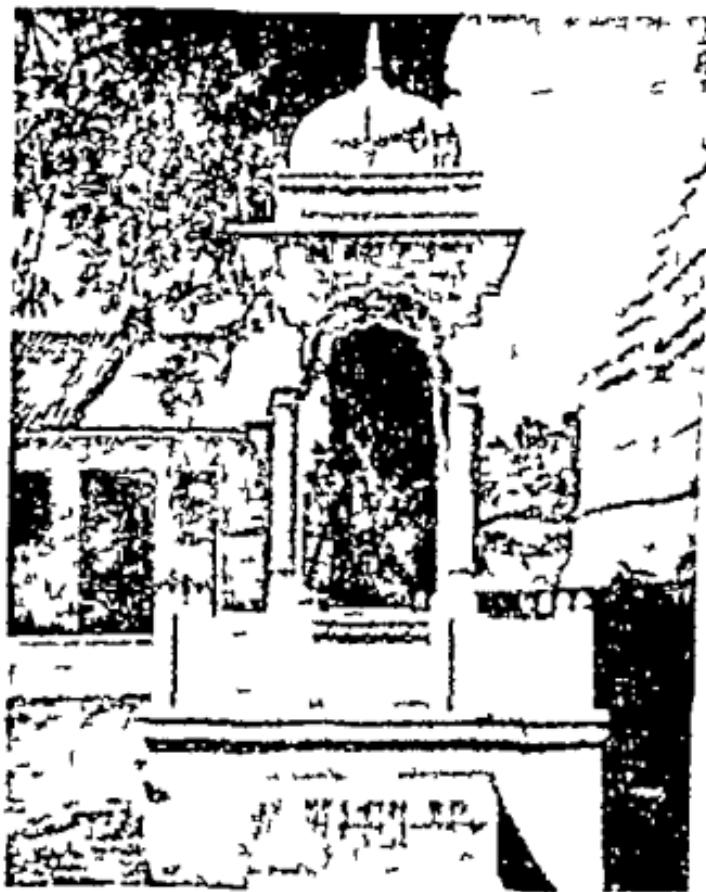
मन्दिर बे-मरम्मत पड़ा था। परन्तु कुछ दिन हुए दत्ती गाव के ठाकुर महाराज विजयसिंहजी ने इसका जीर्णोद्धार करा कर कुछ मकान भी बनवा दिये हैं। ठाकुर साहब ने अपने पुत्र कुंवर बहादुरसिंह की चिरस्मृति में (जो आबू हाईस्कूल में शिक्षा पाते थे और अकस्मात् जून १९३४ ई० में देहावसान कर गये) सगमरमर की एक छतरी भी बनवादी है, और महादेव की मूर्ति स्थापन करके पृथक् एक छोटासा मन्दिर भी बनवाया है। यह स्थान बस्ती में एकान्त में भजन करने और मनन के लिये सर्वोत्तम है।

दिलवाडा

डाकखाने से उत्तर की ओर जाने वाली सडक से १½ मील की दूरी पर 'दिलवाडा' नामक गाव आता है, जहा जगत् प्रसिद्ध जैन मन्दिर बने हुए हैं। यह मन्दिर बहुत ही प्राचीन हैं, और इनकी शोभा अवर्णनीय है। दिलवाड़ा के मन्दिरों की शिल्प कला को देखकर मनुष्य को दातों तले उगली दबानी पडती है। ताज-महल के सिवाय भारतवर्ष में इनकी कारीगिरी की जोड़ का कोई एक-आध ही स्थान होगा। सगमरमर पर खुदाई का काम देखने योग्य है। ये सब मन्दिर सगमरमर के बने हुए हैं, जो पहाड़ की चोटी पर बड़ी भारी लागत लगाकर लाया

गया होगा। केवल जैनधर्म के मानने वाले ही नहीं, बल्कि सब शिल्प विद्या-प्रेमी—चाहे वे किसी भी धर्म या जाति के हों—इनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। इन मन्दिरों में विमलशाह और वस्तुपाल-तेजपाल के जैन-मन्दिर मुख्य हैं।

विमलशाह का मन्दिर

यह मन्दिर राजा भीमदेव के मन्त्री विमलशाह ने सन् १०३१ ई० में बनवाया था। इसकी लागत १२ करोड़ रुपये बताई जाती है। कहते हैं कि विमलशाह को मन्दिर निर्माण के लिये जितनी जमीन की आवश्यकता थी उस पर उसने चांदी के सिक्के बिछवा दिये थे, और वह सिक्के परमार वंश के राजा को—जो उस समय यहां राज्य करता था—देकर यह भूमि खरीदी थी।

इस मन्दिर में जैनियों के आदि तीर्थङ्कर आदिनाथ की दिव्य मूर्ति है। मूर्ति के नेत्रों में जवाहिरात जड़े हुए हैं और गले में भी हीरे जवाहिरात का हार सुशोभित है। इस मन्दिर के सामने ही एक बड़ा सभामण्डप है। जो आस-पास के धरातल से तीन सीढ़ी ऊंचा है। मंडप में ४८ स्तम्भ लगे हुये हैं। मन्दिर के अहाते में एक ही पांति में दीवार से लगी हुई ५२ जैनालय (ताक) हैं, जिनमें

विमलशाह का मन्दिर (अन्दर का भाग)

तीर्थङ्करों की मूर्तिया हैं। अम्बिका देवी का मन्दिर इसके दक्षिण पश्चिम मे है, जो इस मन्दिर से भी प्राचीन माना जाता है। आदिनाथ की पूज्य मूर्ति के बाद दूसरा नम्बर इसी देवी का है। देवी को रग बिरगे वस्त्र पहिना रक्खे हैं। इसकी जैनाली के बाहर भैरों की मूर्ति है, जो अपने हाथ में हाल का छेदन किया हुआ मुण्ड धारण किये है। भैरों का वाहन कुत्ता भी पास ही खड़ा है। द्वार के पास ही हाथी-घर है, जिसके सामने ही विमलशाह की पत्थर की मूर्ति स्थित है। हाथी घर में १० हाथी है। प्रत्येक पर पहिले मूर्तिया आरूढ़ थीं, पर अब उतार ली गई हैं। इस मन्दिर का बाहरी भाग आकर्षक नहीं होने से अन्दर की शोभा का तनिक भी खयाल नही आ सकता। मन्दिर की कारीगिरी की विशेष शोभा छत में खुदे हुये काम से प्रतीत होती है। निर्मित देव मूर्तियां साक्षात् सी मालूम पड़ती हैं। कर्नल टॉड अपने राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहास में इस मन्दिर का वर्णन बड़ी उत्सुकता से करते है। इस अनुपम मन्दिर का कुछ भाग मुसलमानों ने तोड डाला था। सन् १३२७ ई० में लल्ल और वीजड नामक दो साहूकारों ने इसका जीर्णोद्धार करवाया। जीर्णोद्धार में जितना काम बना है वह सबका सब अलग और भद्दा दिखाई देता है।

तीर्थङ्करों की मूर्तिया है। अम्बिका देवी का मन्दिर इसके दक्षिण पश्चिम में है, जो इस मन्दिर से भी प्राचीन माना जाता है। आदिनाथ की पूज्य मूर्ति के बाद दूसरा नम्बर इसी देवी का है। देवी को रग विरगे वस्त्र पहिना रक्खे हैं। इसकी जैनाली के बाहर भैरों की मूर्ति है, जो अपने हाथ में हाल का छेदन किया हुआ मुण्ड धारण किये है। भैरों का वाहन कुत्ता भी पास ही खड़ा है। द्वार के पास ही हाथी-घर है, जिसके सामने ही विमलशाह की पत्थर की मूर्ति स्थित है। हाथी घर में १० हाथी है। प्रत्येक पर पहिले मूर्तिया आरूढ़ थीं, पर अब उतार ली गई हैं। इस मन्दिर का बाहरी भाग आकर्षक नहीं होने से अन्दर की शोभा का तनिक भी खयाल नहीं आ सकता। मन्दिर की कारीगिरी की विशेष शोभा छत में खुदे हुये काम से प्रतीत होती है। निर्मित देव मूर्तिया साक्षात् सी मालूम पडती हैं। कर्नल टॉड अपने राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहास में इस मन्दिर का वर्णन बड़ी उत्सुकता से करते है। इस अनुपम मन्दिर का कुछ भाग मुसलमानों ने तोड़ डाला था। सन् १३२७ ई० में लल्ल और बीजड नामक दो साहूकारों ने इसका जीर्णोद्धार करवाया। जीर्णोद्धार में जितना काम बना है वह सबका सब अलग और भद्दा दिखाई देता है।

वस्तुपाल-तेजपाल का मन्दिर

दूसरा प्रसिद्ध मन्दिर नेमीनाथ का मन्दिर है, जो विमलशाह के मन्दिर से २०० वर्ष बाद सन् १२३१ ई० में वस्तुपाल और उसके छोटे भाई तेजपाल ने मिलकर बनवाया था। इस मन्दिर में जैनों के बाईसवें तीर्थङ्कर श्री नेमीनाथजी की मूर्ति है। इसकी बनावट उक्त मन्दिर ही के समान है। इस मन्दिर के आगे गुम्बजदार सभामण्डप और दाए बाए छोटे-छोटे जिनालय तथा पीठ की ओर हाथी-घर है। जिनालयों में कई मूर्तिया हैं।

इस मन्दिर की छत में जैन धर्म के कई चित्रों के दृश्य खुदे हुये हैं। 'रास माला' के लेखक फार्बस साहब ने लिखा है कि—"इन मन्दिरों की खुदाई के काम में स्वाभाविक निर्जीव पदार्थों के चित्र बनाये हैं। इतना ही नहीं, किन्तु सांसारिक जीवन के दृश्य, व्यापार तथा नौकाशास्त्र-सम्बन्धी विषय एवं रणक्षेत्र के युद्धों के चित्र भी खुदे हुये हैं"। टॉड साहब ने उपरोक्त विमलशाह के मन्दिर से इसकी समानता की है। वह लिखते हैं कि बनावट और कारीगिरी में यह ठीक वैसा ही है, परन्तु सब मिलाकर उससे अच्छा है। सुन्दर खुदे हुये स्तम्भ वैसी ही बनावट के हैं, जैसे कि अल्तमश की बनवाई हुई दिल्ली और अजमेर

की मसजिदों तथा चित्तौडगढ़ के कीर्ति स्तम्भ में बने हुये हैं। मन्दिर की छत, द्वार, स्तम्भ, तोरण और गुम्बज तथा जिनालयों की खुदाई और शोभा को देखकर परियों की कहानी के क़िले का चित्र दिखाई देने लगता है और इनकी सुन्दरता का दृश्य देखते २ चित्त उन्मत्त हो जाता है। प्रत्येक छोटी से छोटी वस्तु पर इतनी चतुराई से काम किया गया है कि उसका वर्णन लेखनी में नहीं आ सकता। यह सब बातें देखने से ही बनती है। कर्नल टॉड ने लिखा है कि गुंबज का चित्र तैयार करने में लेखनी थक जाती है, और अत्यन्त परिश्रम करने वाले चित्रकार की कलम को भी महान् श्रम पडेगा।

इस मन्दिर के दोनों ओर दो ताकें हैं, जिन्हें देवरानी जेठानी की आलिया कहते हैं। यह आले (ताक) उन दो भाइयों (जिन्होंने यह मन्दिर बनवाया है) की स्त्रियों ने अपनी सम्पत्ति से बनवाये थे। दोनों ताकों में उनके निर्माण कराने वालियों की मूर्तियाँ हैं। प्रत्येक ताक की लागत सवा लाख रुपये बताई जाती है, जो खुदाई की विचित्रता से साफ प्रकट होती है।

इन दोनों मन्दिरों के पास ही तीन मन्दिर और हैं, जो चौमुखीजी, शान्तिनाथजी और बधाशाह के कहे जाते

हैं। चौमुखीजी के मन्दिर में ऊची से ऊची जगह पर भी खुदाई का काम हो रहा है। लोगो का कहना है कि यह मन्दिर ऊपर वर्णन किये दो मन्दिरों के निर्माण-कर्त्ता शिल्पी लोगों ने अवकाश के समय अपनी ओर से बनाया था। यहा एक दिगम्बर जैन-मन्दिर भी है।

इन मन्दिरो की शिल्प-कला और विचित्र खुदाई को देखने के उत्सुक दिन के १२ बजे से शाम के ६ बजे तक जा सकते हैं। १२ बजे से पूर्व का समय जैनधर्मावलम्बी लोगों की पूजा अर्चना का है। दर्शक अपने साथ खाद्य-सामग्री, अस्त्र शस्त्र, जूते आदि उप-वस्तुएं मन्दिर में नहीं ले जा सकते। मन्दिर में मादक वस्तुओं के ग्रहण करने का निषेध है। सभी वर्ण और सभी धर्म वाले मन्दिर को देख सकते हैं। योरोपियन लोग मजिस्ट्रेट साहब से पास लेकर प्रवेश हो सकते हैं।

कुँवारी कन्या

दिलवाड़े से दक्षिण दिशा में पास ही हिन्दू-मन्दिरों के खण्डहर पाये जाते हैं, जिनमें अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। किसी किसी में से तो मूर्तियाँ ही गायब हैं। एक मन्दिर जो 'रालम रसिया' के नाम से प्रसिद्ध है, साधारण स्थिति में अब भी विद्यमान है, जिसमें एक

खण्डित छत्र के नीचे गणेशजी की मूर्ति के वरावर वाले भाग में 'वालम रमिया' की विशाल मूर्ति है। छत्र के सामने ही मन्दिर में एक देवी-प्रतिमा है जिसे 'कुँवारी कन्या' कहते है। कन्या का मुँह एक छोटीसी ऋषि मूर्ति के सामने है।

इस मन्दिर के विषय मे राजपूताना गज़ेटिअर में ऐसी कथा का उल्लेख है कि यहा वाल्मीकि नाम के एक ऋषि रहा करते थे, जो एक कन्या पर मुग्ध थे, और उससे विवाह करने पर उतारू हो रहे थे, लेकिन कन्या की माता किसी कारणवश इस विवाह मे अप्रसन्न थी। उसने कहा कि यदि ऋषि आज सायकाल से कल प्रात.काल मुर्गे बोलने के पूर्व तक रात्रि २ ही में इस पर्वत से नीचे तक सुगम रास्ता वनादें तो मैं अपनी पुत्री का विवाह सहर्ष ऋषि के साथ कर दूगी। वाल्मीकि करामाती पुरुष थे। वे इस वात पर राज़ी हो गये, और उन्होंने राह वनाने का कार्य आरम्भ कर दिया। कार्य मुर्गे वोलने के पूर्व ही समाप्त होने को था कि कन्या की माता ने—जो पूर्व ही इस विवाह-सम्बन्ध से अप्रसन्न थी—मुर्गे का-सा शब्द कर दिया और ऋषि की आशा पर पानी फेर दिया। वे निराश होकर अपनी कुटी में चले गये। वाद में जब उन्हें कन्या की माता का यह कपट-पूर्ण व्यवहार मालूम हुआ तो ऋषि वहुत दुखी हुये और कन्या और उसकी माता को श्राप देकर वे पत्थर की वना

दीं। माता की मूर्ति तोड़कर पत्थरों के ढेर के तले दबा दी; और कन्या की मूर्ति इस मन्दिर में स्थापित की। इसी को 'कुँआरी कन्या' कहते हैं। ऋषि भी विष का प्याला पीकर सदा के लिये सो गये। यात्री लोग पूजा करने से पूर्व उस माता के पत्थरों के ढेर पर पत्थर मारते हैं, और कन्या की माता को विश्वासघातिनी आदि अश्लील शब्दों से सम्बोधित करते हैं। 'बालम रसिया' मन्दिर के पास ही एक छोटासा नाला, सुन्दर बावड़ी और अनेक शिव-मूर्तियां तथा हनुमानजी की एक दिव्य मूर्ति है।

दिलवाड़े के आस-पास और आबू के कई एक खेतों के किनारों पर ऐसे कुएँ हैं जिनका पानी अरट (एक प्रकार का चक्कर) द्वारा निकाला जाता है। कुएं से पानी निकालने की यह प्राचीन रीति सम्राट् अकबर के जमाने से है।

ट्रेवरताल

दिलवाड़े से आगे जाकर दो सड़कें फटती हैं, एक अचलगढ़ को जाती है और दूसरी इस ताल को। 'ट्रेवरताल' को सिरोही के महाराव साहब ने राजपूताने के एजेन्ट टू दी गवर्नर जेनरल कर्नल ट्रेवर साहब की पुण्य स्मृति में ई० स० १८६४-६५ में बनवाया था। ताल की लागत ३४०६६) रुपये बताई जाती है। इस ताल का दृश्य देखने योग्य

है। स्थान रमणीक और एकान्त वन में आ जाने से अधिक आनन्द दायक है। यह ताल पक्का बना हुआ है और काफी गहरा है। यहा पर बहुतसे यूरोपियन नहाने और हवा खाने आते हैं।

अचलेश्वर महादेव

आबू से करीब ५ मील के फासले पर अचलगढ़ का प्राचीन तथा प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ पहुँचते ही प्रथम यह मन्दिर आता है। इस मन्दिर में शिव लिङ्ग तथा शिव-प्रतिमा नहीं है, केवल एक खड्ड है, जिसे ब्रह्मखड्ड कहते हैं। उसी में शिवजी के पैर का अगूठा स्थित है। कहते है कि यह ब्रह्मखड्ड पाताल तक गया है और काशी विश्वनाथ से शिवजी ने अपना पैर लम्बा किया है, उसका अगूठा इस स्थान पर आया है। दर्शन करनेवाले यात्रियों को पुजारी लोग हाथ में दीपक लेकर इस खड्ड में दर्शन कराते हैं। मन्दिर में सामने ही अचलेश्वर महादेव की स्त्री मीरा की मूर्ति है, जो देखने में बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है। यहां एक विशाल और पीतल की धातु से बना हुआ नन्दी भी है। नन्दी पर कुछ चोट के चिह्न दिखाई देते हैं। जिसके विषय में कहा जाता है कि अहमदाबाद के बादशाह मुहम्मद बेगरा ने माल खजाना ढुढवाने के लिये इस

नन्दी को तुड़वाना चाहा था, इससे शिवजी महाराज बहुत अप्रसन्न हुए और बादशाह के पीछे मधुमक्खियों की लाखों सेना लगा दी। बादशाह अपना सब माल असबाब छोड़कर भाग गये। नन्दी पर सन् १४०७ ई० का एक लेख भी खुदा हुआ है। जैसा सब बड़े मन्दिरों में होता है, इस मन्दिर के अहाते में भी अनेक छोटे २ मन्दिर बने हुए हैं, जिनमें शिवलिंग और अद्भुत २ देव मूर्तियां विराजमान हैं। यहा तौलने की एक तराजू बनी हुई है, जिसमे प्राचीन काल में राजे महाराजे तथा धनाढ्य लोग चादी, सोना, आभूषण आदि का तुला दान किया करते थे। इसी स्थान पर लोहे का एक बड़ा त्रिशूल राणा लाखा का अर्पण किया हुआ रक्खा है और मन्दिर के सामने एक लोहे की गदा भी पड़ी हुई है।

अचलेश्वर महादेव के निकट ही एक कुण्ड है, जिसका विस्तार ६०० फीट लम्बा और २४० फीट चौड़ा है। इस कुण्ड का नाम 'मन्दाकिनी कुण्ड' है। इसके जल को गंगा के समान पवित्र मानते हैं। यह कुण्ड अब बहुत ही जीर्ण होगया है। इसके चारों कोनों पर चार ऋषियों की छोटी २ कुटियां बनी हुई हैं। कहते हैं कि प्राचीन काल में यह कुण्ड घी से भरा रहता था। जिसे पीने के लिये तीन भैंसे राक्षस का रूप धारण करके आया करते

थे। परमार राजा आदिपाल--जिसकी धनुष धारण किये मूर्ति यहा अब भी मौजूद है--ने इन भैंसों को एक ही बाण से मार डाला, जो पत्थर के होकर अब भी खडे हैं।

अचलगढ़ तक टैक्सी मोटर, बैलगाड़ी और रिक्शे सुगमता से आ जा सक्ते हैं। बैलगाड़ियों और पैदल आने जाने वाले यात्रियों की रक्षा के लिये पुलिस का प्रबन्ध है। अचलगढ़ से एक सीधी राह नीचे तक गई है। ओरिया गाव भी इसी के निकट है, जहा ठहरने के लिए एक डाक बगला है।

अचलगढ़

अचलेश्वर महादेव से कुछ दूर ऊपर चढ़कर अचलगढ़ का पुराना क़िला आता है, जो कि परमार राजा ने, सन् ६०० ई० के लगभग, बनवाया था। यहाँ दो जैन-मन्दिर और मेवाड के महाराणा कुम्भा तथा उनके पुत्र उदयसिंह की मूर्तियाँ हैं। 'सावन भादों' नाम के जल-कुण्ड--जहा बारह मास पानी भरा रहता है--देखने योग्य स्थान हैं। सबसे पूर्व मुख्य दो-मजिला मन्दिर आदिनाथ भगवान् का है। इन्हीं दोनों मजिलों में चार-चार बडी ? मूर्तिया हैं। मन्दिर के किसी भी द्वार या पीछे के रोशनदान से देखने से एक ही प्रकार की मूर्ति दिखाई देती है। कुल

१४ मूर्तियां हैं, जो सोने की बनी हुई कही जाती हैं, और जिनका वजन १४४४ मन बतलाया जाता है। इसके लिये अनुमान लगाया जाता है कि वास्तव में यह मूर्तियां केवल सोने की ही नहीं बल्कि सर्व धातुएं मिलाकर बनाई गई हैं। दूसरी मंजिल की छत पर चढ़कर देखने से पहाड़ी दृश्य नजर आता है। आबूरोड से अजमेर की ओर जाने वाली रेल की पटरी तथा पहाड़ पर आने वाली सड़क यहां से साफ दिखाई देती है। प्राकृतिक शोभा का ठीक ठीक अनुमान यहां जाकर देखने से ही किया जा सकता है।

'सावन भादों' कुण्ड के पास चौमुंडा देवी का मन्दिर है, जिसके पूर्व में मेवाड़ के महाराणा कुम्भा का बनवाया हुआ गढ़ है, जो सन् १४५२ ई० में बनवाया था। गढ़ बिल्कुल जीर्णावस्था में है, और इस भाग के सबसे ऊंचे स्थान पर बना हुआ है। गढ़ के नीचे एक दो मंजिली गुफा बनी हुई है। जो सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की गुफा बताई जाती है। कहा जाता है कि वे स्वयं यहां निवास किया करते थे।

उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त यहां निम्नलिखित स्थान भी देखने योग्य हैं,—

भर्तृहरि-गुफा

'मन्दाकिनी कुण्ड' से कुछ दूरी पर यह गुफा पक्के मकान के रूप में बनी हुई है।

रेवती-कुण्ड

यह कुण्ड मन्दाकिनी कुण्ड के पीछे है और इसमें सदा जल भरा रहता है।

भृगु-आश्रम

यह आश्रम अचलगढ़ से एक मील की दूरी पर है। यहां पर एक कुण्ड (गोमती कुण्ड), एक महादेवजी का मन्दिर और मठ आदि हैं। यह भी बड़ा आनन्द दायक स्थान है।

शान्तिनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर अचलगढ के नीचे सड़क के पास ही एक छोटी पहाड़ी पर बना हुआ है, इसमें शान्तिनाथ भगवान् की सुन्दर मूर्ति विराजमान है।

राजा मानसिंह की छत्री तथा उनकी पांच रानियों सहित मूर्तियां, मन्दाकिनी कुण्ड के पास महाराणा कुम्भ-

करण का बनवाया हुआ मन्दिर, आदिनाथ भगवान् के दो मंजिले मन्दिर के पास हिज होलीनेस गुरु श्रीविजयशांति-सूरीश्वरजी का शान्ति-आश्रम (आनन्द-आश्रम) इत्यादि देखने योग्य स्थान हैं। विस्तारभय से हम प्रत्येक का व्यौरेवार वर्णन नहीं कर सकते।

ओरिया

यह छोटासा गांव अचलगढ़ से लगभग आधा मील उत्तर में है। गुरु-शिखर जाने वाले यात्रियों को दूध-दही यहां अच्छा मिल सकता है। यहां एक शिवालय और कुछ जैन मन्दिर भी हैं।

गुरु-शिखर

आबू पर्वत की सबसे ऊँची चोटी जो समुद्र की सतह से ५६५० फीट ऊँची है, 'गुरु शिखर' के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान आबू से क़रीब ७ मील की दूरी पर है। ओरिया और उससे आगे कुछ दूर तक सड़क है, आगे सकड़ी पगडंडी कभी पहाड़ पर, कभी नालों में होती हुई इस स्थान को जाती है। भगवान् दत्तात्रेय ने यहां पर निवास किया था। उनके चरण चिह्न अब भी इस प्रसिद्ध चोटी पर एक छोटे से मंदिर में बने हुए हैं। हिन्दू धर्म के उद्धारक

श्री रामानन्द के भी यहा चरण चिह्न हैं। बड़े २ मंदिरों के समान यहां पर भी एक बहुत बड़ा घण्टा लटक रहा है, जिसकी आवाज़ दूर २ तक जाती है। इस घण्टे पर सन् १४११ ई० का खुदा हुआ एक गुजराती लेख भी है। इस स्थान से दूर २ के स्थान दिखाई देते हैं। यहा खड़े होकर जब चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हैं तो यह स्थान अपनी अलौकिक शोभा से दर्शक का मन मुग्ध कर देता है। दूर २ तक घने वन और हरे-भरे वृक्षों से लदे पर्वत तथा तेज और ठढी हवा के झोंके बड़े आनन्द दायक प्रतीत होते हैं। चढ़ाई अधिक होने से मार्ग कुछ कठिन जान पड़ता है पर उत्सुक और दर्शनाभिलाषी यात्रियों के लिये यह स्थान कुछ कठिन नहीं है। आबू पर आकर इस स्थान को अवश्य देखना चाहिये। वृद्ध एव निर्बल व्यक्तियों के वश का यह रोग नहीं है। अचलगढ़ की भांति गुरु शिखर से भी यात्रियों की रक्षा के लिये एक हथियारबन्द पुलिस का सिपाही प्रतिदिन सुबह शाम ओरिया तक आता जाता है। ओरिया से किसी राहनुमा को साथ लेने से आराम मिलता है। निर्दिष्ट स्थान पर एक धर्मशाला भी है। यहा के महन्त यात्रियों की सुविधा का बहुत खयाल रखते हैं। साधु सन्यासी और निधन व्यक्तियों को यहा मुफ्त भोजन मिलता है। एक सुन्दर कुँआ तथा छोटा बगीचा भी है।

हम पहिले लिख चुके हैं कि आबू में प्राचीन स्थान अनगिनती हैं, उन सबका वर्णन सम्भव नहीं। आबूरोड जाने वाली सड़क पर भी कुछ प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान हैं, इनमें से कुछ का हम यहां वर्णन करते हैं—

हृशीकेश

आबूरोड के स्टेशन से पहाड़ी की तलहटी में यह स्थान ४ माइल पर है। यहां पर एक प्राचीन विष्णु मंदिर बना हुआ है। कहते हैं कि यह मन्दिर राजा अम्बरीष ने —जिसकी राजधानी अमरावती में थी—बनवाया था और श्रीकृष्णजी ने मथुरा से द्वारिका जाते हुये यहां विश्राम किया था। मन्दिर के आस पास बहुतसे खण्डहर पड़े हुए हैं, जो अमरावती नगरी ही के कहे जाते हैं। यहां प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ला एकादशी को बड़ा मेला लगता है।

चन्द्रावती

चन्द्रावती नामक प्रसिद्ध और प्राचीन नगरी के खण्डहर—जो आबू के परमार राजाओं की राजधानी थी तथा जिसका विस्तार १२ मील का कहा जाता है—आबूरोड स्टेशन से ४ मील दक्षिण-पश्चिम में और बनास नदी के बायें किनारे पर अब भी विद्यमान हैं। इस धनाढ्य नगरी को

दुश्मनों के आक्रमणों और समय के परिवर्तन ने खाक में मिला दिया। ऐसी प्रसिद्धि है कि इस नगरी में ९०० मंदिर और द्वार थे, जिनके तोरण, मूर्तियां और स्तम्भ आदि लोग उखाड़ कर ले गए और दूर २ शहरों की इमारतों के काम में ले लिये, बचे खुचे मन्दिरों का राजपूताना-मालवा रेलवे बनने के समय ठेकेदारों ने तोड़कर उनके पत्थर अपने काम में ले लिये।

शान्ति-आश्रम

यह हिज होलीनेस गुरु श्री विजयशान्तिसूरीश्वरजी का आश्रम है। आबू कार्टरोड पर आबू से १३ वें मील के चिह्न के पास है। आबूरोड तथा आबू से आश्रम तक मोटर लारियां आती जाती हैं और किराया भी सरकार की तरफ से नियत है। यह आश्रम हिज होलीनेस के भक्तों ने बनवाया है। यहां मकान के आकार में एक बड़ी गुफा तैयार की गई है। यह आश्रम घने जङ्गलों और पहाड़ियों से घिरा हुआ होने के कारण शान्ति और आनन्द दायक है।
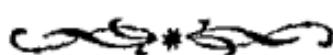
दर्शनीय कोठियां और बंगले

जयपुर कोठी

यह कोठी एक ऊंची पहाड़ी पर बनाई गई है, और दूर २ से दिखाई देती है। चांदनी रात में इसका प्रतिबिम्ब नकी तालाब में बहुत सुन्दर दिखाई देता है।

जयविलास पैलेस (महल)

यह महल अलवर के महाराजा जयसिंह ने सन् १९२६ ई० में काफी धन लगाकर १३३ एकड़ की विस्तृत भूमि में बनवाया था। आबू से जाने वाली पिलग्रिम्सरोड पर यह स्थान है। महल के अहाते में एक सुन्दर तालाब, बगीचा और जंगली जीवों के रहने के योग्य गुफायें, शिकार के लिये ओदियां आदि बनी हुई हैं। महल की बनावट बिल्कुल नये ढंग की है, और अन्दर से महल खूब सजा हुआ है।

जयविलास महल

दर्शनीय कोठियां और बगले

जयपुर कोठी

यह कोठी एक ऊंची पहाड़ी पर बनाई गई है, और दूर २ से दिखाई देती है। चांदनी रात में इसका प्रतिबिम्ब नकी तालाब में बहुत सुन्दर दिखाई देता है।

जयविलास पैलेस (महल)

यह महल अलवर के महाराजा जयसिंह ने सन् १९२६ ई० में काफी धन लगाकर १२३ एकड़ की विस्तृत भूमि में बनवाया था। आबू से जाने वाली पिलग्रिम्सरोड पर यह स्थान है। महल के अहाते में एक सुन्दर तालाब, बगीचा और जंगली जीवों के रहने के योग्य गुफायें, शिकार के लिये ओदियां आदि बनी हुई हैं। महल की बनावट बिल्कुल नये ढंग की है, और अन्दर से महल खूब सजा हुआ है।

जयविलास महल
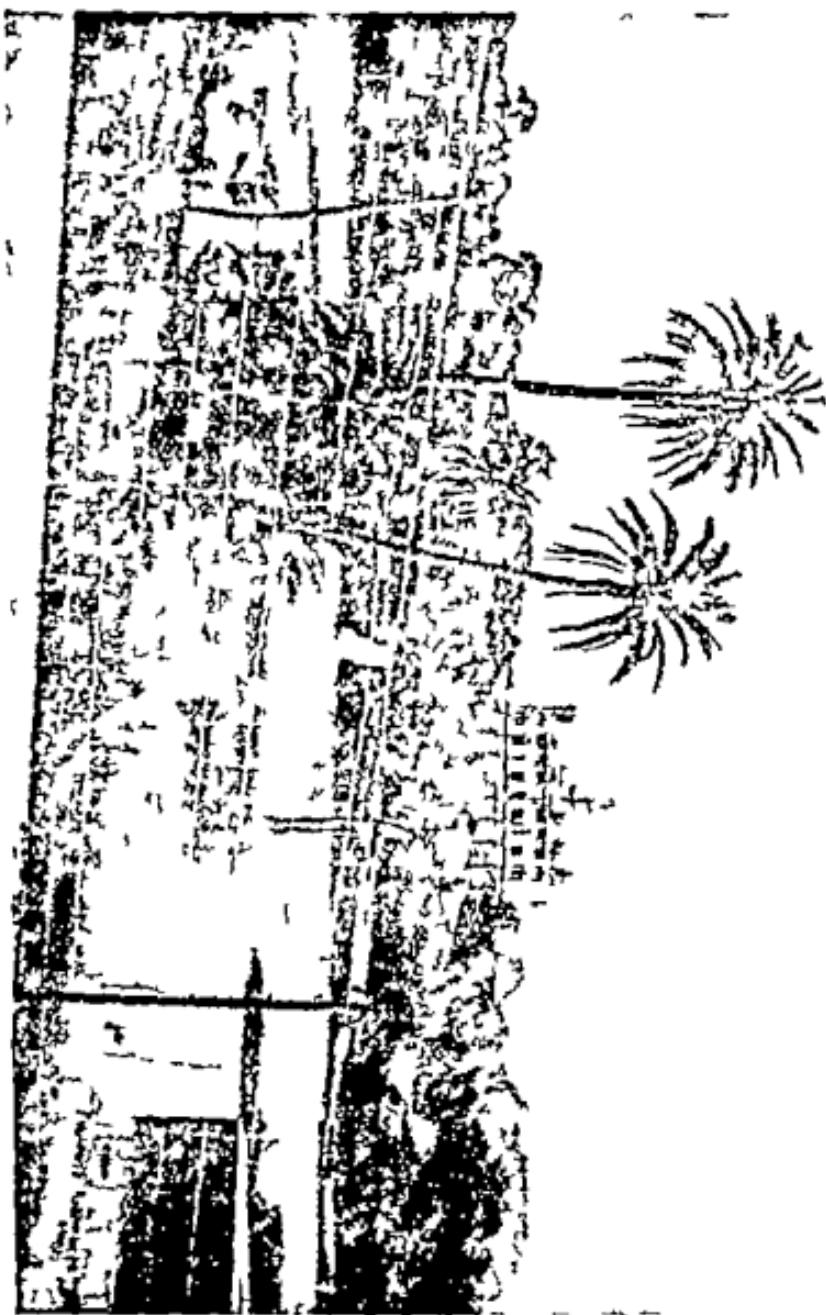
पालनपुर हाउस

पालनपुर हाउस

यह विशाल और सुन्दर इमारत कुछ वर्षों पूर्व एक प्रथम श्रेणी की होटल थी। सन् १९२६ ई० में पालनपुर के नवाब साहब ने इसे खरीद लिया और उन्होंने इसमें बहुत रद्दोबदल कराई, जिससे इस इमारत की शोभा और भी बढ़ गई है। दूर से यह मकान बहुत ही सुन्दर नजर आता है। आबू के राजा-महाराजाओं के सबसे अच्छे मकानों में इसकी भी गणना है। यह स्थान पहाड़ की एक ऊंची टेकरी पर है, और इसके चारों ओर अत्यन्त मनोहर और आनन्दप्रद दृश्य प्रस्तुत हैं। यह राजपूताना क्लब के सामने बना हुआ है।

आबू की स्वास्थ्यदायक जलवायु और गर्मियों की शीतलता, ऊंचाई तथा प्राकृतिक सुन्दर दृश्यों ने राजपूताने तथा अन्य प्रान्तों के राजाओं तथा धनाढ्य लोगों को यहां कोठियां तथा बंगले बनवाने के लिये बाधित कर दिया है। प्रतिवर्ष कोई न कोई स्थान नया बन ही जाता है। वास्तव में इन्हीं गुणों के कारण गर्मियों के दिनों में यह स्थान स्वर्ग सा बन जाता है।

रेजीडेन्सी

बाजार के उत्तर-पश्चिम में ऊंचे स्थान पर रेजीडेन्सी है। राजपूताने के रेजीडेन्ट साहब के रहने की यही सुन्दर

जगह है। रेजीडेन्सी के अहाते के फाटक पर एक सतरी सगीन लिये हर समय पहरा देता रहता है। सामने ही विजीटिंग रूम है। रेजीडेन्ट साहब बहादुर की कोठी पर सुन्दर तिरगा झडा (यूनियन जेक) लहराता रहता है। जो ब्रिटिश साम्राज्य की कीर्ति-ध्वजा है।

राजपूताना-क्लब

राजपूताना होटल से कुछ दूर आगे चलकर यह सुन्दर इमारत आती है। इसके पास ही टेनिस, हॉकी और फुटबाल खेलने के लिये मैदान बने हुये हैं। इस सस्था के मेम्बर राजा, महाराजा, यूरोपियन तथा धनाढय हिन्दुस्तानी ही बन सकते हैं। सस्था उच्च श्रेणी की है। विविध विषयों के ग्रन्थ-सग्रह के अतिरिक्त यहा हर प्रकार के इगलिश खेलों का भी सुप्रबन्ध है। हाल ही में इसके सरदारों ने एक बहुत बडा गाफ खेलने का मैदान आबू के पूर्व की ओर बनवाया है, जो एक आदर्श गाफ माना जाता है, और भारतवर्ष के इस भाग का प्रथम गाफ-स्थान है।

सेनिटेरियम

वि० स० १६०२ (ई० स० १८४५) में पहिले पहल अग्रेजी सिपाही आबू पर भेजे गये थे। उनके रहने

राजपूताना क्लब
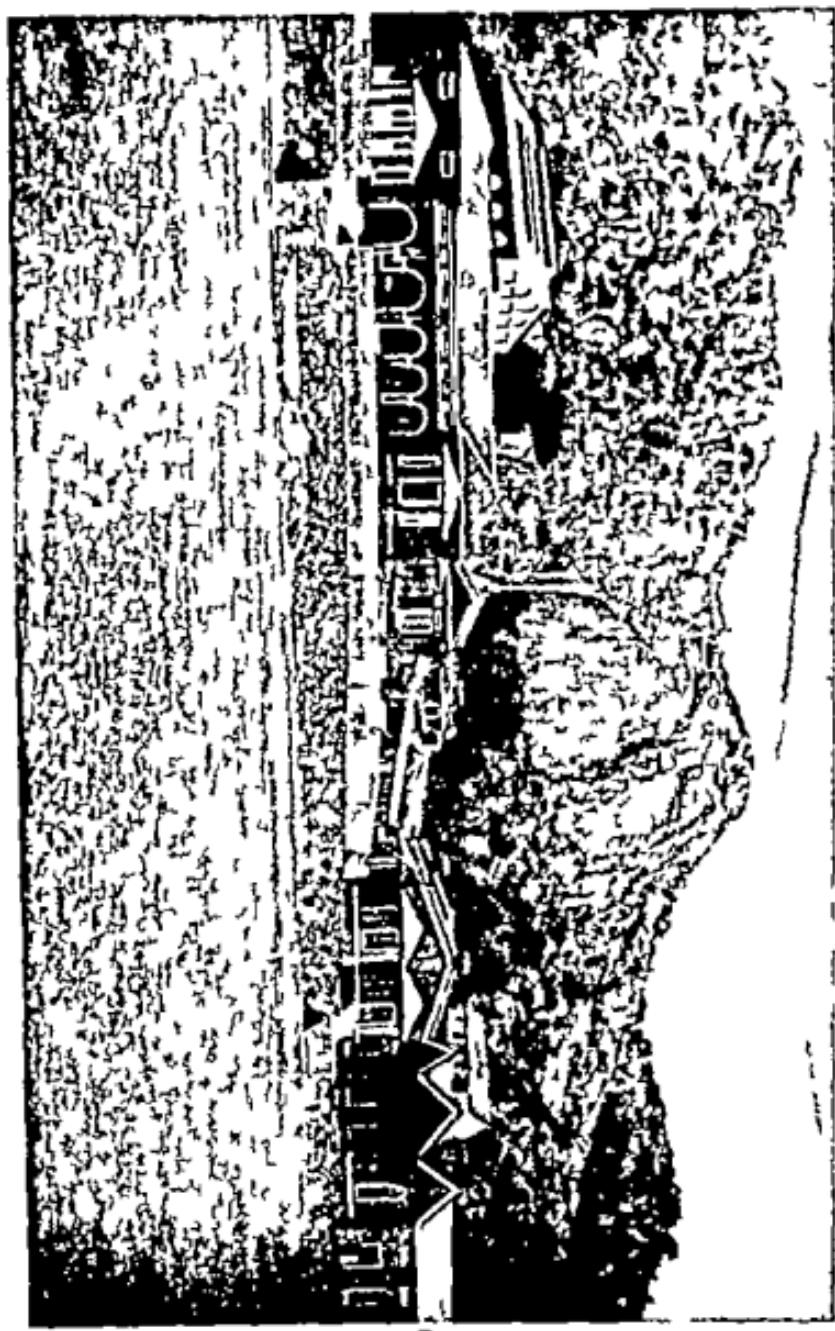
के लिये बैरक पहिले नकी ताल के पास बनवाई गई
परन्तु वह स्थान नम और मलेरियल होने के कारण पारि
कर दिया गया। ग़दर के पश्चात् बारिकें गुनडामक
की पहाडी पर, जहां अब बनी हुई हैं, बनवाई गई।
सेनिटेरियम के मकान डाक बंगले से जयविलास
फैले हुए हैं।

नोटिस।

दी कोह आबू मोटर सर्विस।

पहली फरवरी सन् १६३६ ई० से किराया औक़ात आमद व रवानगी वगैरह सफर कोह आबू मोटर सर्विस हस्बजैल होंगे —

१—लारियां—

आबूरोड से कोह आबू आने के लिए		
नाम मुकाम	चलने का वक्त	पहुचने का वक्त
पहली रवानगी	७ बजे सुबह	६ बजे सुबह।
दूसरी रवानगी	४ बज कर ३० मिनट शाम	६ बज कर ३० मिनट शाम।

कोह आबू से आबूरोड जाने के लिए।		
नाम मुकाम	चलने का वक्त	
पहली रवानगी	११ बजे सु	
दूसरी रवानगी	६ बजे शाम	

२—रिज़र्वड मोटरकार और लारियां—

जिस वक्त मुसाफिर चाहे—६ बजे सुबह से शाम के ५ बज कर पैंतालीस मिनट तक तथा ५ बज कर पैंतालीस मिनट शाम से सुबह के ६ बजे के दरमियान सफर करने के लिए मजिस्ट्रेट साहब बहादुर सिर्फ खास जरूरत के वक्त इजाजत देंगे और दो रुपिया ज्यादा किराया देना पड़ेगा।

नोटः—मोटरकारों को ५ बजे सुबह से ६ बजे रात तक टोल की चौकी से आगे जाने के लिये खास इजाजत की जरूरत नहीं है।

३—किराया—

(अ) आबूरोड से कोह आबू या कोह आबू से आबूरोड।

पहला दर्जा रु० १-१०-० दूसरा दर्जा रु०-१-०-०
तीसरा दर्जा रु० ०-१०-०

(ब) किराया टिकट वापसी मियादी एक हफता

पहला दर्जा रु० २-०-० दूसरा दर्जा रु० १-१२-०
तीसरा दर्जा रु० १-२-०

(ज) मोटर टरमिनस आबू से मन्दिर दिलवाड़ा तक या मन्दिर दिलवाड़ा से मोटर टरमिनस तक दो आना ६ पाई

फी आदमी, पूरी लारी का कम से कम किराया दो रुपया चार आना है।

(द) रिजर्वड कार—

किराया १०) रु०—चार सवारियों या कम के लिये। किराया वापसी मियादी एक हफ्ता १६) रु०।

(स) ४—कार जो रिज़र्वड न हो—

तीन रुपया आठ आना फी सवारी (जब तक कि तीन सवारिया उसमें न हो जायें रवाना न होगी और डाक की लारी से आध घन्टा बाद रवाना होगी)।

(य) ५—रिजर्वड लारियाँ—

१५) रु० किराया—(एक पहला दर्जा, चार दूसरा दर्जा और १२ तीसरे दर्जे की सवारियों की जगह होगी)।

(र) ६—असबाब—(अलावा ठेकेदार की मरजी पर)

कार में चार आना ट्रक या दूसरी गाड़ी में दो आना ६ पाई फी दस सेर।

असबाब का ट्रक १०) रु० जिसमें ज्यादा से ज्यादा ४० मन सामान ले जा सकते हैं।

किराया—

नोट—(१) ३ साल से कम उम्र के बच्चों का किराया नहीं लगेगा। और ३ साल से १२ साल की उम्र के बच्चों का आधा किराया अदा करना पड़ेगा। १२ साल से ज्यादा उम्र वालों का पूरा किराया लिया जायगा।

(२) अगर कोई मुसाफिर अपनी रिजर्वड की हुई जगह से काम न ले तो उसको आधा किराया अदा करना पड़ेगा। बशर्ते कि उसने जिस वक्त के लिये जगह रिजर्वड की है उस वक्त से १२ घंटे पहले नोटिस न दिया हो। वापसी टिकट के बगैर इस्तेमाल किये हुये हिस्से के एवज एक तरफा किराया और वापसी किराये में जो फर्क है उसका आधा वापस कर दिया जायगा।

(३) एक मुसाफिर का टिकट दूसरे के काम में नहीं आ सकता। जो मुसाफिर दूसरे के टिकट से या बिना टिकट सफर करता हुआ पकड़ा जायगा उससे दुगना किराया वसूल किया जायगा और वह मुस्तौजिब सजा का होगा।

४—आम शरायत—

(१) मुसाफिर मोटर गाड़ियों में १५ सेर सामान मय बिस्तर वगैरह के बे किराया ले जा सकते हैं। रिज़र्वड

और अनरिजर्वड गाड़ियों में ३० सेर असबाब फी बैठक के हिसाब से जो खाली हो अपने हमराह ले जा सकते हैं। बशर्ते कि उन्होंने इस बैठक का किराया अदा किया हो।

(२) मुसाफिरों और सामान का किराया पेशगी वसूल किया जायगा।

(३) मजकूरा बाला शर्तों या मुन्दरजा जैल पैरा (६) किसी के भी यह माने नहीं हैं कि ठेकेदार इन वक्तों के अलावा, जो मुकर्रर हैं, किसी और वक्त मुकर्ररा किराया लेकर मुसाफिर को ले जाने के लिये मजबूर हैं लेकिन जहां तक हो सकेगा उन्हें हर वक्त रिजर्वड कार या लारियां देनी होंगी बशर्ते कि नोटिस दफा ? का मंशा पूरा होता हो।

(४) मेल मोटर लारी टरमिनस से आगे नहीं जायगी।

(५) वे मुसाफिर जो अन रिजर्वड गाड़ियों में सफर करेंगे वह अपने साथ कुत्ते और बिल्लियां न ले जा सकेंगे। लेकिन अगर दूसरे मुसाफिरों को इस पर एतराज न होगा तो इस हालत में उनसे फी कुत्ता या बिल्ली एक रुपया किराया लिया जायगा।

(६) मुसाफिरों को किसी हालत में भी गाड़ी चलाने की इजाजत न दी जायगी। और शाफर जब कि कार या लारी चल रही हो मुसाफिरों से बात चीत न करेगा।

(७) जहा तक हो सकेगा ठेकेदार मुसाफिरों की ज़रूरत को जल्द से जल्द पूरा करेंगे। और हर दर्जे की लारी जिसकी इच्छा की जायगी, बशर्ते कि इसका बहम पहुंचाना मुमकिन हो, मुहय्या करेंगे। लेकिन अगर वह किसी माकूल उज्र के सबब से जिस दर्जे की जगह की इच्छा की गई हो मुहय्या न कर सकें तो ज़िम्मेवार न होंगे। अगर उन्हें उस टरमिनस पर जहा से मुसाफ़िर रवाना होंगे हस्बज़ैल नोटिस न दिया जायगा।

(अ) अगर जगह शाम को चाहिये तो सुबह की लारी के रवाना होने से पहले नोटिस देना चाहिये।

(ब) अगर जगह सुबह को चाहिये तो शाम की लारी के रवाना होने से पहले नोटिस देना चाहिये।

नोट—मुक़र्ररा किराया का निस्फ पेशगी अदा करने ही पर क़वायद मज़कूरा बाला के मुताबिक़ जगह रिज़र्वड की जा सकती है। यह निस्फ किराया वापस नहीं किया जायगा अगर रिज़र्वड कराने वाला शख़्स बाक़ी किराया देकर अपना टिकट न ख़रीदे और उस वक़्त पर, जो कि रिज़र्वेशन रसीद में लिखा है, सवार न हो या ज़मीमा (ब) की दफ़ा १६ के मुताबिक १२ घन्टे पहले नोटिस न दे।

(८) ठेकेदार तमाम मुसाफिरों को इस शर्त पर ले जायगा कि यह किसी किस्म के नुकसान का, ख्वाह वह जिस्मानी हो या माली । जो मुसाफिरों को दौराने सफर में पहुचे, जिम्मेवार न होगा । अलावा इसके अगर गाड़ी किसी वजह से ठीक वक्त पर रवाना न हो सके या ठीक वक्त पर न पहुच सके और इससे मुसाफिरों का कोई नुक्सान हो जाय तो उसका भी वह जिम्मेवार न होगा ।

(६) मुसाफिर जो मोटर टरमिनस से अपने घर तक मोटर में जाना चाहे उनको ।) आने फी सवारी ज्यादा देना होगा । कम अज कम किराया फी गाड़ी ।।) आने फी मील होगा । रिज़र्वड कार में सफर करने वालों से यह रकम वसूल न की जायगी ।

तम्बीह—अगर किसी को मोटर सर्विस के खिलाफ कोई शिकायत हो जो ठेकेदार से तय नहीं कर सकता तो उसे चाहिये कि मजिस्ट्रेट साहब बहादुर माउन्ट आबू से अर्ज करे ।